भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य बड़ा विस्तृत है । उसने मानव-जीवन के लिए आवश्यक किसी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है । जो लोग समझते हैं कि पुराणों में केवल धार्मिक कथायें, ऋषि-मुनि और राजाओं का इतिहास, पूजापाठ की विधियों और तीर्थों का वर्णन मात्र है, वे वास्तव में भूलते अनजान हैं । कितने ही पुराणोंमें औषधि विज्ञान, साहित्य और कला सम्बन्धी विवेचन, गृह निर्माण शास्त्र, सामुद्रिक, संगीत, रत्न-विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, स्वप्न-विचार आदि विविध विषयों की पर्याप्त चर्चा की गई है । 'अग्नि पुराण' में तो विविध विषयक ज्ञान इतना अधिक संग्रह किया गया है कि लोग उसको प्राचीनकाल का 'विश्वकोश' कहते हैं । उसमें लगभग २००-२५० विषयों का परिचय दिया गया है । इस दृष्टि से 'नारद पुराण' भी प्रसिद्ध है जिसमें अनेक प्रकार की उप-योगी विद्याओं का गम्भीर रूपसे विवेचन किया गया है । 'गरुड़ पुराण' में चिकित्सा शास्त्र और रत्न-विज्ञान की बहुत अधिक जानकारी भरी हुई है । 'पुराणों' की इन्हीं विशेषताओं को देखकर प्राचीन साहित्य के एक बहुत बड़े ज्ञाता ने लिखा था—

"पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है । इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता, भारतीय जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता । इनमें आध्यात्मिक, आधि-दैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है । लोक जीवनके सभी पक्ष (पहलू) इनमें अच्छी तरह प्रतिपादित हैं । ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं, मन व मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना अथवा योजना नहीं, मनुष्य-जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो । जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझने में बहुत कठिनाई

होती है, वे सर्व रोचक ढङ्ग से सरल भाषा में, आख्यान आदि के रूप में इनमें वर्णित हुए हैं।" पर सच पूछा जाय तो पुराणों का यही गुण कुछ 'आलोचकों' की निगाह में उनका 'दोष' बन गया है। खण्डन की प्रवृत्ति वाले लेखक और सरसरी निगाह से पढ़ने वाले पाठक उनकी अद्भुत और चमत्कार पूर्ण कथाओं को पकड़कर ढूँढकर शोर मचाने लगते हैं—"देखो, पुराणों में कैसी गपाष्टकें भरी पड़ी हैं। कहीं ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहें और जिनके दोनों रूप में सन्तान भी हो जाय। कहीं सौ-सौ और दो-दो सौ फुट लम्बे मनुष्य भी हुआ करते हैं।"

पर कदाचित् वे यह नहीं जानते कि वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार पृथ्वी पर आरम्भ का एक युग ऐसा भी था जिसमें सन्तानें नर-मादा द्वारा नहीं होती थीं, वरन् किसी भी जीव से दूसरा जीव किसी स्वाभाविक प्रणाली से उत्पन्न हो जाता था। निश्चय ही वह स्थिति करोड़ों वर्ष पहले थी, जबकि मानव-प्राणी तो दूर गाय, भैंस और घोड़े-हाथी जैसे पशु भी नहीं थे। पर कुछ भी हो उस समय पृथ्वी पर उन्हीं जीवों का अस्तित्व था, चाहे वे मछली के रूप में हों और चाहे किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़ों, छिपकली जैसे प्राणी आदि के रूप में। इस वैज्ञानिक तथ्य को पुराने जमाने के साधारण मनुष्यों को जब ज्ञान-विज्ञान की चर्चा बहुत ही कम फैली थी, समझा सकना असम्भव था। इस दशा में यदि किसी पुराणकार ने 'इला' नामक राजपुत्र की कहानी गढ़कर और उसका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक व्यक्ति या वंश से जोड़कर समझा दिया तो इसमें क्या हानि हो गई? विद्वान् उनका यथार्थ भेद जानते हैं और पौराणिक कथाओं के श्रोता केवल 'पुण्य' के विचार से उन रोचक वर्णनों को सुनते हैं और कुछ लोग उनसे सत्कर्म करने की कुछ शिक्षा भी ग्रहण कर लेते हैं। पर 'अर्द्ध-दग्ध' जीवों के लिए वे परेशानी का कारण बन जाती हैं, और वे इधर-उधर से दो चार प्रसंगों को लेकर उन्हें

अधूरे रूप में वर्णन करने लगते हैं, और पुराणों के खिलाफ अट-पटी छोटी-मोटी बातें कहकर अपने को 'विद्वान्' समझने का सन्तोष कर लेते हैं।

पौराणिक साहित्य का विस्तार और महत्व—

पर हम पाठकों को बतलाना चाहते हैं कि 'पुराण' वास्तव में ऐसी तिरस्कार योग्य नहीं हैं जैसा ये स्वयम्भू विद्वान् उनको सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। ऊपर जो पुराणों के महत्व का उद्धरण दिया है वह भी तमाम आयु वेदों का परिशीलन करने वाले एक विद्वान का है और वे वेदों तथा पुराणों का समन्वय करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' अर्थात् पुराणकारों ने मूल वैदिक तथ्यों को सर्व साधारण को समझाने की दृष्टि से ही उनका विस्तार करके नाना प्रकार की कथाओं की रचना की है। इतना ही नहीं पुराणों का दावा तो इससे बहुत अधिक है। 'स्कन्द पुराण' के 'रेवाखंड' में कहा गया है—

आत्मापुराणं वेदानां पृथगङ्गानितानि षट्।
यच्चदृष्टंहि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल॥
उभाभ्यां यत्तु दृष्टंहि तत्पुराणेषु गीयते।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम्॥

'पुराण वेदों की आत्मा हैं। छः वेदांग उनसे पृथक हैं। जो कुछ वेदों में देखा गया स्मृतियों में भी देखा गया। और वेद तथा स्मृति दोनों में जो कुछ देखा गया वह सब पुराणों में पाया जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुराणों को ब्रह्माजी ने सब शास्त्रों से पहले कहा है।''

हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जब वेदों को लोकमान्य तिलक जैसे विद्वान् कम से कम दस हजार वर्ष पुराना बतलाते थे, तब पुराणों का रचना काल दो हजार वर्ष के भीतर माना जाता है।

यही बात इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों की भाषा की तुलना करने से प्रकट होती है। पर 'स्कन्द पुराण' के लेखक का कथन केवल वर्तमान समय में पाये जाने वाले हस्तलिखित तथा छपे हुए अठारह पुराणों के सम्बन्ध में नहीं है, वरन् पौराणिक शैली के समस्त साहित्य से है, चाहे वह लिखा हो अथवा जबानी कहा और सुना जाता हो। इस कथन पर विचार करने से अन्त में हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि वास्तव में वेद जैसी गम्भीर रचनाओं से पहले 'पुराण' जैसी लोक कथाओं का प्रचलन होना स्वाभाविक ही मानना चाहिये। सभी देशों और सभी जातियों में इस तरह का 'लोक-साहित्य' ही पहिले उत्पन्न और प्रचलित होता है और तत्पश्चात् वही उन्नत और परिष्कृत होते हुए गम्भीर और शास्त्रीय साहित्य के रूप में परिणित हो जाता है। इसी तथ्य को लक्ष्य में रख कर किसी विद्वान् ने कहा था कि "संसार का सबसे पहला साहित्यकार कोई कहानी कहने वाला ही होगा।

अब रह गई पुराणों में वर्णित धार्मिक विवरणों को अन्ध-विश्वासों का रूप देकर उनके आधार पर लोगों की अन्धश्रद्धा को जागृत करना और उसके द्वारा दान तथा पूजा पाठ के नाम पर मनमाना धन वसूल करना। इसके लिये पुराणों को दोष देना व्यर्थ है। यह कार्य तो प्रत्येक देश के धर्मजीवी (पण्डा-पुजारी) करते आये हैं। चालाक और धूर्त व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में अपनी स्वार्थ सिद्धि का मार्ग निकाल ही लेते हैं। ऐसे ही लोगों ने पुराणों में तीर्थों तथा दानों की अति प्रशंसा करदी और उसमें 'रत्न पर्वत दान' कल्पवृक्ष दान 'सप्त समुद्र दान' जैसी अद्भुत बातों का विधान भी सम्मिलित कर दिया। इस दोष का उत्तर-दायित्व एक विशेष मनोवृत्ति के व्यक्तियों पर है जो सदा से मौजूद हैं और जब तक एक बड़ी 'ज्ञान-क्रान्ति' न हो जायगी तब तक बने रहेंगे।

पुराणों का परिवर्तित स्वरूप—

पुराणों का विवरण लिखते हुये 'मत्स्यपुराण' तथा अन्य पुराणों

में भी यह कहा गया है कि पहले एक ही पुराण था, फिर व्यास जी ने उसे लोगों की सुविधा के लिए अठारह पुराणों के रूप में प्रस्तुत किया। पर यह संख्या अठारह पर ही समाप्त नहीं होगई। अठारह 'महापुराणों' के पश्चात् अठारह 'उप-पुराण' भी तैयार हो गये और उनके बाद भी लोगों ने 'लघु पुराणों' का निर्माण किया। वास्तव में अब 'पुराण' शब्द सब प्रकार के धार्मिक कथा-ग्रन्थों के लिए काम आने लगा है। इसीलिए इस आधुनिक युग में किसी लेखक ने 'गाँधी-पुराण' भी लिख कर तैयार कर दिया है।

पर इन बातों से 'पुराणों' का महत्त्व कम नहीं हो जाता। यदि हम पुराणों के प्रचलित संस्करणों का भी अध्ययन करें तो तरह-तरह की कथाओं के बीच में अध्यात्म, ब्रह्मज्ञान, विज्ञान, चरित्र, नीति आदि के सर्वोत्तम तत्व मिले-जुले दिखाई पड़ते हैं। कहने के लिए तो पुराण मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, स्नान-ध्यान आदि के मुख्य प्रचारक हैं, पर साथ ही उनमें से अधिकांश में सृष्टि के मूल स्वरूप का जैसा वर्णन पाया जाता है वह आधुनिक विज्ञान की पहुँच से कहीं अधिक ऊँचा है। उनमें सृष्टि विज्ञान और प्रलय (सर्ग और प्रति-सर्ग) का वर्णन करते हुए सदैव यही प्रति-पादित किया है कि इस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का आदि-एक अव्यक्त और निराकार तत्व से हुआ है, जिसका कोई आदि अन्त नहीं है और न जिसके विस्तार की कोई सीमा है। समस्त सूक्ष्म और स्थूल पञ्चभूत, समस्त देवता और सांसारिक प्राणी उसी में से उत्पन्न होते हैं और कुछ समय तक पृथक रूप में दिखाई पड़कर अन्त में उसी में लय हो जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण आदि समस्त देवता उसी एक मूलशक्ति के विभिन्न रूप और नाम हैं।

यद्यपि उस अव्यक्त और निराकार शक्ति की उपासना का वास्तविक मार्ग योग और ध्यान है, पर यह बहुत ही थोड़े लोगों के लिये सम्भव हो पाता है। शेष सामान्य स्तर के व्यक्ति किसी व्यक्त और

निराकार शक्ति का ध्यान कर सकने में असमर्थ होते हैं । ऐसे ही लोगों की संख्या १०० में से ९० होती है । इसलिये उनकी सुविधा की दृष्टि से साकार मूर्तियों की योजना की गई है और उनकी प्रतिष्ठा के लिये मन्दिरों का निर्माण और तीर्थों की स्थापना आवश्यक हुई । जिन पुराणों में किसी साधारण मन्दिर में मूर्ति दर्शन करने या गङ्गा अथवा नर्मदा जैसी नदी में एक बार स्नान करने से करोड़ों वर्ष तक स्वर्ग सुख भोगने का आश्वासन दिलाया गया है, उन्हीं में सृष्टि की वास्तविकता के उपरोक्त तर्क और विज्ञान के अनुकूल रूप का भी विवेचन किया गया है ।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आरम्भ में पुराणों का उद्देश्य जनसाधारण के बीच धार्मिक तत्वों का प्रचार करना ही था । यह भी असम्भव नहीं है कि पुराणों की परम्परा का श्री गणेश करने वाले वेदव्यास ही हों । इस अनुमान का कारण यह है कि व्यासजी का 'महाभारत' भी एक प्रकार का पुराण ही है, यद्यपि उसमें धार्मिक बातों के साथ राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों का विवेचन भी बहुत अधिक परिमाण में मिलता है, जिससे उसे 'इतिहास' कहा जाने लगा है । हम हमारे कथन का आशय यह नहीं कि व्यासजी ने पुराणों की जो रूप रेखा बनाई वही अभी तक स्थिर है । भाषा और लिपि में हजार पाँच सौ वर्ष में इतना अन्तर पड़ जाता है कि अधिकांश ग्रन्थों का नया संस्करण करने की आवश्यकता पड़ जाती है । फिर पुराणों में तो यह भी लिखा है कि व्यासजी ने एक ही पुराण संहिता बनाई और उसका विस्तार उनके शिष्य और फिर उनके भी शिष्यों ने किया—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदः ॥
प्रख्यातो व्यास शिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षणः ।
पुराण संहिता तस्मै ददौ व्यासो महामतिः ॥

सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुः शांशपायनः ।
अकृतव्रण सावर्णी षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ॥
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः ।
रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूल संहिता ॥

अर्थात्—"फिर पुराणों के ज्ञाता व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान गाथा और कल्पशुद्धि से युक्त 'पुराण-संहिता' की रचना की । इस पुराण संहिता का अध्ययन व्यासजी ने अपने सुप्रसिद्ध शिष्य रोमहर्षण सूत को कराया । रोम हर्षण के छः शिष्य हुए—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि । इनमें से काश्यप गोत्रीय अकृतव्रण सावर्णि और शांशपायन ने पृथक-पृथक तीन संहितायें रचीं । उन तीनों का मूल आधार रोमहर्षण द्वारा रचित एक संहिता थी ।

इसके पश्चात् भी इन सबकी नानाविध शिष्य मंडली में भी अनेक विद्वान अपने देश-काल के अनुसार उन संहिताओं की वृद्धि करते रहे, उनमें नये-नये पौराणिक आख्यान और उपाख्यान रचकर सम्मिलित करते रहे । ये सब कथावाचक शिष्य 'सूतजी' या 'व्यासजी' कहलाते थे । इनमें सभी प्रकार के व्यक्ति थे । कुछ विशेष रूप से धर्मपरायण और परमार्थी थे तो कुछ में स्वार्थ परायणता और सांसारिकताकी मात्रा अधिक थी । यदि ऐसे कथावाचकों ने तीर्थ-यात्रा, स्नान-दान और व्रतोत्सव आदि कर्मों को यथाशक्ति बढ़ कर अपने श्रोताओं को अधिकाधिक 'दान' देने की प्रेरणा की हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । जब हम अठारहों पुराणों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं और उनकी विषय सूचियों का विवेचन करते हैं, तो हमको यह प्रतीत होने लगता है कि सब पुराण एक ही दृष्टिकोण से नहीं रचे गये हैं । किसी में धर्म-शासन की प्रधानता है, किसी ने जप-तप द्वारा आध्यात्मिकता का महत्व विशेष बतलाया है और किसी ने हर तरह के दान-पुण्य पर ही अधिक जोर दिया है । 'मत्स्यपुराण' में तीसरी श्रेणी के वर्णन बहुत

अधिक संख्या में थे । यद्यपि हमने वर्तमान संस्करण में उनमें से अधिकांश को छोड़ दिया है, तो भी नमूने के तौर पर जिन 'व्रत' और 'दानों' का वर्णन आ गया है उससे पाठक हमारे कथन की यथार्थता का अनुमान कर सकेंगे ।

पुराणों की परमार्थ और अध्यात्म भावना—

पर इस एक बात से ही हम पुराणों की भलाई-बुराई का निर्णय नहीं कर सकते । हम इस बात को पूरी तरह नहीं समझ सकते कि जिस समय—अब से एक-डेढ़ हजार वर्ष पहले पुराण-साहित्य का इस प्रकार विस्तार किया गया, देश और समाज की क्या परिस्थिति थी । सम्राट अशोक से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक के शासन काल के बीच देश की क्या राजनीतिक और सामाजिक स्थिति थी, इसका पता इतिहास ग्रन्थों से बहुत कम लगता है । पर पुराणों के विवरणों को समझने में यदि कल्पनादृष्टि से काम लिया जाय तो यह प्रतीत होता है कि इस हजार-बारह सौ वर्ष के युग में एक देशव्यापी क्रांति होकर नये समाज का संगठन हो रहा था । बौद्ध धर्म की प्रबलता ने प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था को तोड़-फोड़ दिया था, उसी के भग्नावशेषों पर हमारे धर्माचार्य पुनः हिन्दू-धर्म-भवन के पुनर्निर्माण का प्रयत्न कर रहे थे । इस बीच में देश की अस्त-व्यस्त राजनीतिक अवस्था को देखकर यवन, हूण, शक, सिथियन आदि विदेशी जातियों ने आक्रमण भी किया था । उन आक्रमणकारियों में से लाखों व्यक्ति यहीं बस भी गये और देश के किसी भू भाग पर उन्होंने बहुत वर्षों तक शासन भी किया । ऐसी परिस्थिति में जो पुराण ग्रन्थ रचे गये अथवा प्रचलित किये गये उनमें पूर्ण रूप से विशुद्ध वैदिक आदर्शों को स्थिर रखना कैसे सम्भव हो सकता था ?

यूनानी-सम्राट सिकन्दर के आक्रमण तथा बुद्ध धर्म की प्रभुता होने से पूर्व, देश की वैदिक संस्कृति अक्षुण्ण थी । उसमें जो परिवर्तन होते थे वे आन्तरिक कारणों के आधार पर ही होते थे । पर विदेशियोंके

आक्रमण और उनमें से लाखों, करोड़ों व्यक्तियों के भारतीय समाज में मिल जाने के पश्चात् परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई और उसके बाद जो धार्मिक संगठन बनाया गया और धार्मिक नियम प्रचलित किये गये उनमें देश काल की बदली हुई परिस्थिति का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। संसार के अन्य धर्म तथा जातियाँ तो इस प्रकार के आक्रमणों से सर्वथा ही नष्ट हो गये। जैसे यूनान, रोम, और ईरान की प्राचीन संस्कृति और धर्म का नाम ही इतिहास में शेष रह गया है। पर यह वैदिक धर्म की ही विशेषता थी कि विदेशी आक्रमणों और बुद्ध धर्म द्वारा उत्पन्न गृहकलह के भयंकर आघात को सह कर भी उसने अपनी 'सत्ता' की रक्षा करली। हमारे तत्कालीन धर्माचार्यों ने नवीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बाह्य पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड की विधियों में परिवर्तन किया, वैदिक यज्ञों का स्थान मन्दिर और तीर्थों की भक्तिमार्गीय उपासना-पद्धति ने ग्रहण किया, पर साथ ही वैदिक सिद्धान्तों और आदर्शों को उनमें बराबर समाविष्ट किया गया, प्रत्येक विधि-विधान में उन्हीं की घोषणा की गई। साथ ही समस्त पौराणिक-धर्म कलेवर का उद्देश्य भी वैदिक आध्यात्मिक सिद्धान्त ही रखे गये। इस तथ्य का विवेचन हमको "वायु-पुराण" के अन्तिम अध्याय "व्यास संशय वर्णन" में मिलता है। उसमें पुराणों में वर्णित लौकिक धर्म विधियों का उल्लेख करते हुए अन्त में मानव-आत्मा के आध्यात्मिक लक्ष्य को ही प्रधानता दी गई है। आगे स्पष्ट कहा गया है—

"हे सूतजी! आप तो भगवान के सच्चे भक्त हैं। व्यास जी की कृपा से आपने धर्म शास्त्रों का पूर्णतः अध्ययन कर लिया है। हे निष्पाप आपने अठारहों पुराणों और इतिहासों का आदि से अन्त तक अच्छी तरह वर्णन किया है। इन पुराणों में आपने बहुत से धर्मों का निरूपण किया है। उसमें गृहस्थ, त्यागी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र आदि के धर्म कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय

और वैश्य द्विजातियों तथा इनसे उत्पन्न जो अन्य संकर जातियाँ-गंगा आदि प्रमुख नदियों और यज्ञ, व्रत, तप, दान, यम-नियम, योगाभ्यास, सांख्य-सिद्धान्त, भक्ति-मार्ग, ज्ञानमार्ग आदि सबका वर्णन किया है। कर्मों और उपासना द्वारा चित्त की शुद्धि और धर्म प्राप्ति के सम्बन्ध में भी आपने बतलाया है। आपने ब्राह्म, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर (सूर्योपासक) तथा अर्हत् (जैन बौद्ध आदि)—इन छः प्रकार के दर्शनों का भी परिचय दिया है। इन सब तथा अन्य प्रकार के विषयों का पुराणों में आपने विवेचन किया है। अब हम आपसे कहना चाहते हैं कि इनसे आगे भी क्या अन्य कोई उत्तम विषय जानने को शेष रह जाता है?' प्रश्नकर्ता मुनियों ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा—

> न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायेच्च भवान् ।
> अत्र नः संशयं छिन्धि पूर्णः पौराणिको यतः ॥

अर्थात्—"यदि व्यासजी ने किसी विषय का वर्णन न किया हो अथवा आपने ही कुछ गोपन कर लिया हो—न बतलाया हो तो अब उसे भी कहकर हमारे संशय को दूर कीजिए।"

सूतजी ने कहा—"हे शौनक! आप ध्यान पूर्वक सुनो, मैं आपके 'सुदुर्लभ' (महत्वपूर्ण) प्रश्न का उत्तर देता हूँ। पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदों के अर्थ से समन्वित पौराणिक कथा की रचना करके फिर चित्त में विचार किया कि मैंने वर्णों तथा आश्रमों के पालन करने वालों के धर्म का भली भाँति वर्णन कर दिया है और वेद से अविरोध रखते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति-मार्गों का भी निरूपण कर दिया है। सूत्रों की व्याख्या करते हुये जीव, ईश्वर और ब्रह्म का भेद भी प्रकट किया है और श्रुति (वेदों) के सिद्धान्तानुसार परब्रह्म का स्वरूप भी बतलाया है। एक मात्र परम ब्रह्म ही अविनाशी तत्त्व है और उसी को प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचारी से लेकर संन्यासी तक सबने

साधकों के व्यक्ति 'रस' (प्रेमाचरण) किया करते हैं । मैं वेदों के इस सिद्धान्त को भी जानता हूँ कि यह समस्त विश्व ब्रह्म से पृथक नहीं है, बल्कि उसी से इस प्रकार उत्पन्न होता और मिटता रहता है जैसे बहते हुए फेनिल जल में बुलबुले उठते और टूटते रहते हैं । पर किसी-किसी स्थान पर यही सुनने में आता है कि परम ब्रह्म के ऊपर भी 'गोलोक' में भगवान् कृष्ण दीप्यमान होते हैं । इसका रहस्य जानना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।'

जब व्यास जी बहुत कुछ ऊहापोह करने पर भी इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर न पा सके तो उन्होंने निश्चय किया कि इसका निर्णय केवल तप द्वारा हो सकता है । तब वे सुमेरु पर्वत की एक गुफा में जा बैठे और दीर्घकाल तक समाधि अवस्था में ध्यान करते रहे । अन्त में उनके सम्मुख वेद मूर्तिमान रूप में प्रकट हुए और उन्होंने कहा—

हे व्यास ! आप महान ज्ञानी हैं, शरीर धारण करने पर भी आप 'विष्णु स्वरूप' हैं । आप अकल्पना होकर भी संसारी प्राणियों के उद्धार की इच्छा से यह सब कर रहे हैं । हमारा ठीक अर्थ वही है जो आपने प्रकट किया है । पुराणों, इतिहासों और सूत्र ग्रन्थों में उसे आपने अनेक प्रकार से प्रकट किया है (ऐसा पाठ भेद से लिखा गया है) । तो भी हम आपके प्रश्न का उत्तर देते हैं कि परब्रह्म ही अविनाशी तत्व है और वही कारणों का भी कारण है । यह आत्मस्वरूप पुष्प की गन्ध की भांति सर्वत्र स्थिर रहता है । महाप्रलय हो जाने पर उस अक्षर-ब्रह्म से परे केवल 'रस' रहता है । पर हम शब्दात्मक होने से उस शब्दातीत तत्व का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं ।''

इस प्रकार पुराणों में सामान्य बुद्धि के मनुष्यों के लिये मन्दिर, तीर्थ आदि का माहात्म्य वर्णन से लेकर पूर्ण आत्मज्ञानियों के लिए अक्षर-ब्रह्म और 'रस' (भगवत्प्राप्ति और निष्प्रेम) का भी निरूपण कर

विषय बताया है। इनमें धर्म-शासन के जो अनेक मार्ग बतलाये हैं उसका एक कारण तो सम्प्रदाय भेद है और दूसरा कारण उपासक की योग्यता और शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति उपनिषदों में वर्णित आत्म-तत्त्व और ब्रह्म-ज्ञान तथा माया-सिद्धान्त को हृदयङ्गम नहीं कर सकता। इसलिए पुराणकारों ने उसे अनेक प्रकार से सरल रूपों में वर्णित किया है जिससे प्रेरणा लेकर हर श्रेणी और योग्यता के व्यक्ति न्यूनाधिक अंशों में धर्माचरण करते रहें। धर्माचरण ही व्यक्ति और समाज के उत्थान तथा कल्याण का मुख्य साधन है, और इसे यथाशक्ति करते रहना मानव मात्र का कर्त्तव्य है।

'मत्स्य' पुराण की विशेषताएं :—

इस प्रकार के पुराण-साहित्य में "मत्स्यपुराण" का स्थान उल्लेखनीय है। एक तरफ तो इसमें व्रत, पर्व, तीर्थ आदि में अधिकाधिक दान देने की प्रेरणा की है और दूसरी तरफ राजधर्म, शासन व्यवस्था, गृह निर्माण, मूर्तिकला, शान्ति विधान, शकुन-शास्त्र आदि जीवनोपयोगी विषयों का भी विशद रूप में विवेचन किया है। भारतीय-साहित्य में नारी जाति की गरिमा का परिचय देने वाला प्रसिद्ध 'सावित्री उपाख्यान' मुख्य रूप से इसी में विस्तारपूर्वक दिया गया है। वाराणसी, हिमाचल नर्मदा आदि की प्राकृतिक शोभा का काव्यमय वर्णन साहित्य दृष्टि से उच्चकोटि का माना जा सकता है। और भी कितने ही विषय ऐसे हैं जो इस पुराण की उत्कृष्टता तथा उपादेयता को प्रमाणित करते हैं। यद्यपि अब परिस्थितियों के बदल जाने से अधिकांश पाठक उनकी उपयोगिता बहुत कम अनुभव कर सकेंगे, पर अब से कुछ ही वर्ष पहले ही हमारे देश का एक बड़ा भाग उन्हीं का अनुसरण करने वाला था।

राजधर्म वर्णन—

मत्स्य पुराण का 'राजकृत्य' और 'राजधर्म' वर्णन विशेष रूप से महत्व रखता है। इसमें केवल प्रजा-पालन करने और दण्ड-मुण्ड का ही

जिक्र नहीं किया गया है, वरन् व्यापक तौर पर इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान दिया गया है। यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिक-युग में ये बातें बहुत अधिक बदल गई हैं—तलवार तथा तीरों के युद्ध के बजाय वायुयानों से बम वर्षा और राकेटों से युद्ध होने का जमाना आ गया है तो भी अब से दो चार सौ वर्ष पहले तक भारतीय नरेशों के लिये राज्य व्यवस्था और शासन संचालन के ये नियम और विधियाँ ही उपयोग में आती थीं। प्राचीनकाल में राज्य का पूरा अस्तित्व एक मात्र राजा पर ही रहता था। यदि उसे किसी भी उपाय से नष्ट कर दिया जाय तो सारी राजव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती थी। इसलिए अन्य बातों के साथ राजा को अपनी सुरक्षा के लिये भी सदैव सजग रहना पड़ता था। इसी सम्बन्ध में 'मत्स्य पुराण' का निम्न वर्णन दृष्टव्य है।

"राजा को सर्वदा कौए के समान शंका युक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किये राजा को कभी भोजन और शयन नहीं करना चाहिये। इसी भाँति पहले से ही परीक्षा करके वस्त्र, पुष्प, अलंकार तथा अन्य वस्तुओं को उपयोग में लाना चाहिये। कभी भीड़भाड़ में न घुसना चाहिये और न अज्ञात जलाशय में उतरना चाहिये। इन सबकी परीक्षा पहले विश्वासी पुरुषों द्वारा करा लेनी चाहिये। राजा को उचित है कि अनजान हाथी और घोड़े पर कभी सवार न हो और न किसी अज्ञात स्त्री के सम्पर्क में आवे। देवोत्सव के स्थान में उसे निवास करना नहीं चाहिये। अपने राज्य तथा दूसरे राज्यों में भी उसको जाने हुये विचक्षण बुद्धि वाले, कष्ट सहिष्णु और संकट से न घबराने वाले, गुप्तचरों (जासूसों) को नियुक्त करना चाहिए जो उसे सब प्रकार के रहस्यों की सूचना देते रहें। फिर भी राजा को किसी एक ही गुप्तचर के कथन पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। जब दो-चार गुप्तचरों की रिपोर्ट से उस बात का समर्थन हो जाय तब उस पर भरोसा करे।"

इस वर्णन में आश्चर्य या अविश्वास करने की कोई बात नहीं

है। अन्य लोगों के संघर्ष करने वाले पुरुषों का लक्ष्य अपहरण करने वाले शासकों की स्थिति ऐसे खतरे में ही रहती है। पुरानी बातों को छोड़ दीजिये वर्तमान समय में भी जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर को अपनी रक्षा के लिये अपनी शकल सूरत से मिलते हुए और वैसी ही पोशाक तथा रंग ढंग वाले कई व्यक्ति अपने निवास स्थान में रखने पड़ते थे, जिससे कोई जल्दी ही असली हिटलर को पहिचान कर आक्रमण न कर सके। इसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था बालकन प्रदेश के और भी कई शासक रखते थे, जहाँ षड्यन्त्रकारियों और गुप्त घातकों का अधिक जोर था। अब भी ऐसे कई शासकों के प्राण-नाश के लिए तरह-तरह की चालाकियों से काम लिया जाता है। रूस के जार को मारने के लिये षड्यन्त्रकारियों ने बड़ी गहरी खाई तैयार की थी जिसके भीतर बारूद-बारूद का भंडार जमा हुआ था। इस खाई को गुप्त रूप से राजमहल (विन्टर पैलेस) के निकट करने से लगवा दिया गया। एक नियत समय पर जब उसका पलीता लगाया तो उसकी चोट से बम फट गया और महल का एक भाग उड़ गया। जब इस अणु-युग में ऐसी घटनायें सम्भव है तो प्राचीनकाल के एकतन्त्र नरेशों को सावधान रहने की कितनी अधिक आवश्यकता थी, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

प्राचीन काल की सैनिक व्यवस्था—

यह तो हुआ अपनी शारीरिक रक्षा का वर्णन। अब राज्य की रक्षा के लिये इससे कहीं अधिक तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। 'मत्स्य-पुराण' के अनुसार दुर्ग या किले छः प्रकार के होते हैं—धनुदुर्ग-महीदुर्ग नरदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, जलदुर्ग, और गिरिदुर्ग। इनमें से अपनी परिस्थिति के अनुसार किसी एक प्रकार का किला बनवाकर उसमें रक्षा की सब प्रकार की सामग्री इकट्ठी करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य सामग्री की जो सूची दी है, उससे हम प्राचीन काल के युद्धों के स्वरूप का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं—

"दुर्ग में सभी प्रकार के आयुधों का संग्रह करना अत्यावश्यक है। इसके लिए राजा को धनुष, तीर, तलवार, तोमर, कवच, लट्ठ, फरसा, परिघ, पत्थर, मुद्गर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्रास, भाला, ऋष्टि, चक्र, चर्म आदि का संग्रह करना आवश्यक है। कुदाल, छुरा, बेंत, घास-फूस और अग्नि की भी व्यवस्था रहे। ईंधन और तेल का पूरा संग्रह होना चाहिये।"

युद्धकाल में सेना के लिये अन्न और घायलों की चिकित्सा के लिये औषधियों का संग्रह भी आवश्यक है। इसका वर्णन करते हुए कहा है—"जौ, गेहूँ, मूँग, उड़द, चावल आदि सब प्रकार के अन्न इकट्ठे किये जायें। सन, मूँज, लाख, सुहागा, लोहा, सोना, चाँदी, रत्न, वस्त्र आदि सभी आवश्यक वस्तु, जो यहाँ कही गई हैं और नहीं भी कही गई हैं, राजा द्वारा संचित की जानी चाहिये। सब प्रकार की वनस्पतियाँ तथा औषधियाँ जैसे—जीवकर्षभ, काकोली, आमलकी, शालपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, सारिवा, बला, धारा, वयस्थी, वृष्या, बहुली, कण्टकारिका, शृंगी, शृंगाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, दर्भ, रेणुका, मधुपर्णी, विदारीकन्द, महाक्षीरा, महातपा, सहदेवी, मन्दूक, एरण्ड, पर्णी, शतावरी, फल्गु, सर्वगन्धिका, सुगन्धि कुटका, बबरी, इत्यादि इलायची, वीरणा, इक्षु, इक्षुविकार (सिरका), जिह्वा अन्नरोधक, मधूक, शतपुष्पा, मधुशिग्रु, मधूक, पीपल, तक्र, भल्लातका, कतुकला, वाकिना, राजकोशातकी, राजसर्षप (सरसों), धान्याक, अरणटा, कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुबेराक्षी, काकजिह्वा, धत्तूरिका, मधुप, गुल्मधावक, पुनर्नवा, कसेरु, कास कालमोरी, बल्वा, शालूक, केसर, सबलुप धान्य, शमीधान्य, क्षीर, क्षौद्र, लवण, तैल, वसा, मज्जा, घृत, नीम, शिशिर, सुरा, आसव, मधु, कषाय आदि सभी का संग्रह किया जाय।"

यह सूची बहुत बड़ी—इससे लगभग चार-पाँच गुनी है। इनमें केवल थोड़े से नाम चुन कर दे दिये हैं, जिससे पाठक अनुमान कर सकें कि उस समय भी चिकित्सकों को जड़ी-बूटियों का पर्याप्त ज्ञान था। आजकल भी युद्धभेदी सेनाओं के साथ बड़े-बड़े अस्पताल रखे जाते हैं जिनमें सैकड़ों डाक्टर और नर्सें काम करती हैं। उनमें औषधियों का भी बड़ा भण्डार रहता है, जिसमें हजारों तरह के इन्जेक्शन, कैपसूल, टैबलेट, टिंचर, एसिड आदि होते हैं। पहले जमाने की वनस्पतियाँ अपने असली रूप में ही अधिकतर काम में लाई जाती थीं, अब इनको वैज्ञानिक प्रक्रियासे सारकणमें बदल कर इन्जेक्शन, टेबलेट आदि के रूप में बना दिया जाता है। साथ ही घावों की चिकित्सा के लिए भी, तेल, चर्बी, मक्खन, चन्दन, हल्दी आदि का प्रयोग भी किया जाता था।

योग्य राज्य कर्मचारियों का चुनाव :—

पर इन सब बातों से भी अधिक महत्वपूर्ण है योग्य राज्य-अधिकारियों और कर्मचारियों का चुनाव। इस प्रकरण के आरम्भमें ही यह कहा गया है कि "चाहे कोई छोटा कार्य भी क्यों न हो पर उसे किसी अकेले व्यक्ति द्वारा पूरा किया जा सकना बड़ा कठिन होता है। फिर राज्य शासन तो परम विशाल और गहुत्व का कार्य है। अतएव नृपति को स्वयं ही ऐसे कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए जो शूरवीर, उत्तम जाति के, बलशाली और श्री सम्पन्न हों। इस सम्बन्धमें राजा को यह ध्यान रखना चाहिये कि सहायक रूप और अच्छे गुणों से सम्पन्न सज्जन, क्षमाशील, सहिष्णु, उत्साही, धर्म के ज्ञाता और प्रिय वचन बोलने वाले हों।

'सेनापति राजा का परम सहायक होता है। वह कुलीन, शीलस्वभाव से युक्त, धनुर्विद्या का महान् ज्ञाता, हाथियों और घोड़ों की शिक्षा में प्रवीण, शकुन-शास्त्र को जानने वाला, चिकित्सा के सम्बन्धमें

ज्ञान रखने वाला, कृतज्ञ, कर्मशूर, सहिष्णु, सत्य प्रिय, गूढ़ तत्वों के विधान का ज्ञाता हो। ऐसे विशिष्ट गुणों से युक्त व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाना चाहिए। राजा का दूत ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो दूसरों के चित्त के भावों को ठीक तरह समझता रहे। वह अपने स्वामी के कथन के आशय को ठीक ढङ्ग से प्रकट करने वाला, देश भाषा का विद्वान् बातूनी साहसी और देश-काल की परिस्थिति को समझने वाला होना चाहिये, राजा के अङ्गरक्षक हर तरह से सुरक्षित, बहादुर, दृढ़ राजभक्त और धैर्यवान् हों। संधि और विग्रह का निर्णय करने वाला अभिकर्ता (विदेश सचिव) नीति शास्त्रों का पंडित, देशभाषाओं का विद्वान्, षड्गुण का ज्ञाता और परम व्यवहार कुशल होना चाहिए। आय व्यय विभाग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो देश की उपज से अच्छी तरह परिचित हो। रसोई घर का अध्यक्ष पाकशास्त्र के साथ ही चिकित्सा-शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञाता हो।"

'मत्स्यपुराण' में राजा के कर्तव्यों और राज्य व्यवस्था का जो वर्णन किया है उससे विदित होता है कि पुराने जमाने में भी राजाओं का जीवन वैसा सुखद और ऐश आराम का न था, जैसा आजकल लोग कल्पना किया करते हैं। निस्सन्देह उनके सर पर रत्नजटित मुकुट होता था वह सोने के सिंहासन पर बैठता था और उसके महल में बीसियों रानियाँ और सैकड़ों दास-दासी होते थे, पर उसे सदा प्राणों का खटका भी बना रहता था। जो राजा इन कर्तव्यों की अवहेलना करते थे और राग-रंग में डूब कर कुशासन करने लगते थे वे प्रायः दूसरे राजाओं के आक्रमण से नष्ट-भ्रष्ट होजाते थे। इसलिए उस समय शासकों को और नहीं तो अपनी सुरक्षा के ख्याल से ही प्रजापालन और न्यायमुक्त व्यवहार का ध्यान रखना पड़ता था, जिससे उनकी स्थिति सुदृढ़ बनी रहे और वे बाह्य आक्रमणों का मुकाबला सफलता पूर्वक कर सकें।

पुरुषार्थ की प्रधानता—

हमारे उपरोक्त मन्तव्य की पुष्टि पुराणकार ने भी एक अन्य प्रकार से की है। उसने 'राज-धर्म' के प्रसंग में एक अध्याय में यह प्रश्न उठाया है कि "दैव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा है?" इसके उत्तर में मत्स्य भगवान् द्वारा कहलाया गया है कि "दैव नाम वाला जो फल प्राप्त होता है वह भी अपना पूर्व कर्म ही होता है, इसलिए विद्वानों की सम्मति में पुरुषार्थ ही सर्व प्रधान है। यदि दैव प्रतिकूल भी होता है, तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाता है। जो श्रेष्ठ आचार वाले और सदैव उत्थान का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति होते हैं पुरुषार्थ से प्रतिकूल दैव को बदल डालते हैं यह सत्य है कि कुछ उदाहरणों में अनेक व्यक्तियों को बिना पुरुषार्थ को अच्छा फल, सौभाग्य युक्त स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिसे पूर्व जन्मों के प्रारब्ध का परिणाम माना जाता है। पर यदि वर्तमान में भी पुरुषार्थ और सत्कर्म न किये जायें तो वह स्थिति प्रायः थोड़े ही समय रहती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि दैव, पुरुषार्थ और काल (परिस्थितियाँ) ये तीनों मिलकर ही मनुष्य को फल देने वाले हुआ करते हैं। पर इनमें भी पुरुषार्थ को ही प्रधान समझना चाहिये, क्योंकि कहा गया है—

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम्॥

अर्थात्—"जो व्यक्ति आलसी होते हैं अथवा जो केवल दैव (भाग्य) के ही भरोसे रहते हैं, वे धनोपार्जन में सफल नहीं हो सकते। इसीलिए सर्व प्रयत्न पूर्वक उत्तम धर्म (पुरुषार्थ) का पालन करना चाहिए।" जो लोग समझते हैं कि पुराने धर्म ग्रन्थों ने भाग्य को ही प्रधान बताकर भारतवासियों को 'भाग्यवादी' बना दिया है उनको 'मत्स्य पुराण' के उपरोक्त कथन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

भारतीय गृह निर्माण कला—

मत्स्य पुराणान्तर्गत निर्माण सम्बन्धी वर्णन से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में भी इस विद्या की काफी खोज की गई थी। जो लोग भारत को 'अर्धसभ्य' कहते हैं और जिनका ख्याल है कि उस जमाने में यहाँ के मनुष्य जंगली प्रदेशों के निवासियों की तरह केवल झोंपड़ों अथवा कच्ची मिट्टी के छप्पर वाले मकानों में ही रहते थे, उनका कथन 'मत्स्य पुराण' के वर्णन से असत्य सिद्ध हो जाता है। इससे मालूम होता है कि 'गृह निर्माण-कला' का आरम्भ और प्रचार बहुत पहले हो चुका था। अध्याय के आरम्भ में ही प्राचीन भारत के उन अठारह 'वास्तु विज्ञान आचार्यों' (इन्जीनियरों) के नाम दिये गये हैं जिन्होंने इस विषय में विशेष मनन और प्रयत्न करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी——

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ॥
ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पति ॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तु शास्त्रोपदेशकः ।
संक्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्य रूपिणा ॥

अर्थात्—"भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति—ये अठारह प्रसिद्ध 'वास्तु शास्त्र' के उपदेशक हैं और उन्हीं की विधियों का वर्णन संक्षेप में 'मत्स्य भगवान्' ने मनु जी को सुनाया।"

मालूम होता है उस समय इन नामों अथवा उपनामों वाले मनीषियों द्वारा रचित 'वास्तु विज्ञान' सम्बन्धी ग्रन्थ प्राप्त होंगे और उन्हीं में से एकाधिक ग्रन्थ के आधार पर संक्षेप में 'मत्स्य पुराण' ने इस कला का

परिचय दिया है। हो सकता है ब्रह्मा, विश्वकर्मा, कुमार आदि को नाम इस विषय में भी देवताओं की प्रधानता दिखाने के लिए शामिल कर दिया हो, तो भी प्राचीन समय में कितने ही उच्चकोटि के विद्वानों ने इस विषय पर भी लिखा था, इसमें सन्देह नहीं। अब भी उनमें से 'मानसार' आदि दो-एक ग्रन्थ देखने में आते हैं जिनकी जानकार लोगों से बड़ी प्रशंसा सुनने में आती है। 'मय' तो 'दैत्य' जाति वालों का प्रसिद्ध शिल्प शास्त्र ज्ञाता प्रसिद्ध है। महाभारतके अनुसार महाराज युधिष्ठिर के लिये इन्द्रप्रस्थ की अपूर्व राज-सभा उसी ने बनाई थी। संभव है जिस प्रकार आर्य जाति में शिल्प विज्ञान के ज्ञाता को 'विश्वकर्मा' की पदवी दी गई, उसी प्रकार आर्यों की विरोधी दैत्य जाति में शिल्प—कला के प्रमुख ज्ञाता को 'मय' के नाम से पुकारा जाता हो, और पीछेवों को संयोगवश उसी जाति का कोई शिल्प विद्या विशारद मिल गया हो। कुछ भी हो 'मत्स्य पुराण' में सामान्य गृह, महल, भवन, प्रासाद, स्तम्भ, वल्लि, मंडप, वेदी, आदि के कितने भेद बतलाये हैं और विस्तार पूर्वक उनकी विशेषताओं का वर्णन किया है, उससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि उस जमाने में भी इस कला की काफी खोज-बीन की गई थी और तदनुसार अनेक छोटे-बड़े गृहों का निर्माण भी किया जाता था। विभिन्न प्रकार की आकृति के गृहों का वर्णन करते हुए पुराणकार ने लिखा है—

"सबसे उत्तम गृह वह होता है जिसमें चारों तरफ दरवाजे और दालान होते हैं। उनका नाम 'सर्वतोभद्र' कहा जाता है और देवालय तथा राजा के निवास के लिये वही प्रशस्त होता है। जिसमें तीन तरफ द्वार और दालान होते हैं पर पश्चिम की तरफ द्वार नहीं होता वह 'नन्द्यावर्त' कहलाता है। जिस भवन में दक्षिण की तरफ द्वार नहीं होता वह 'वर्द्धमान' कहा जाता है। पूर्व की तरफ बिना दरवाजे वाला 'स्वस्तिक' नाम से प्रसिद्ध है। उत्तर की तरफ द्वार से रहित 'रुचक' कहा जाता है।"

"राजा के निवास गृह पाँच प्रकार के होते हैं। जो सर्वोत्तम माना गया है उसकी लम्बाई एक सौ आठ हाथ (५४ गज) होती है। इस घर की जो अन्य चार श्रेणियाँ होती हैं उनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक दूसरे से आठ हाथ कम होती जाती है। इसी प्रकार युवराज के प्रथम श्रेणी के महल की लम्बाई ८० हाथ होती है और बाद की चार श्रेणियों वाले गृहों की लम्बाई क्रम से छः-छः हाथ कम होती चली जाती है। इसी तरह सेनापति के उत्तम गृह की लम्बाई चौंसठ हाथ, मन्त्रियों के घरों की साठ हाथ, सरदारों और सामन्तों के घरों की चवालीस हाथ होती है। शिल्प विभाग, व्यवस्था और मनोरञ्जन के अधिकारियों के घर अट्ठाईस हाथ लम्बे होने चाहिये। राजा के यहाँ नियुक्त वैद्य, ज्योतिषी, सभा के प्रबन्धक, पुरोहित के मकान चालीस हाथ लम्बाई के होते हैं। इन सबकी चौड़ाई दर्जे के अनुसार लम्बाई से एक तिहाई, चौथाई या छठवाँ भाग होती है।"

वर्तमान समय में भी अधिकांश व्यक्ति घर के शुभ-अशुभ होने में बहुत विचार किया करते हैं, और नये घर में 'गृह-प्रवेश' का बड़ा महत्व माना जाता है। 'मत्स्य पुराण' में इस सम्बन्ध में बहुत अधिक विधि-विधान दिये गये हैं, और गृह-निर्माण तथा गृह-प्रवेश किन मुहूर्तों में किया जाय इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है।

प्राकृतिक शोभा वर्णन—

यद्यपि प्राचीन काल में जितने संस्कृत ग्रन्थ लिखे गये थे वे सभी पद्य में हैं, वैद्यक, ज्योतिष, शिल्प, कानून आदि सभी विषयों को भी कारणवश पद्यों में लिखा गया है, पर यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की रचनाओं में उच्च साहित्यिक गुण नहीं आ सकते। उनमें मुख्य रूप से उपयोगिता पर ही ध्यान रखा जाता है, काव्य-सौन्दर्य को गौण माना जाता है। पर 'मत्स्य पुराण' में अनेक स्थलों पर प्राकृतिक दृश्यों या की

वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से भी उसके लेखक की विद्वता को प्रकट करता है। वैसे साधारण रूप से भी इस पुराण की भाषा कितने ही अन्य पुराणों और उपपुराणों अधिक परिष्कृत जान पड़ती है, पर कवि की विशेषता राजवंश, ऋषिवंश, पूजा उपासना की विधि, प्रायश्चित्त के विधान आदि विषयों का वर्णन करने में नहीं आंकी जा सकती। इनमें तो उपयोगिता की दृष्टि से तुकबन्दी की जैसी ही रचना करना पड़ती है।

पर जहाँ कहीं प्राकृतिक शोभा के वर्णन का अवसर आ जाता है वहाँ कवि की कल्पना और प्रतिभा ऊँची उड़ान लेने लगती है और योग्य कवि अपनी विशेषता को प्रकट कर सकता है। 'मत्स्य पुराण' में हिमालय पर्वत, कैलाश, नर्मदा, वाराणसी की शोभा का जो वर्णन किया है उसकी गणना भाषा और भाव की दृष्टि से अपेक्षाकृत उत्तम कविता में की जा सकती है। यद्यपि इस प्रकार की पौराणिक रचनाओं की तुलना कालिदास, भवभूति, माघ आदि जैसे कवियों की रचनाओं से नहीं की जा सकती, जिनका मुख्य उद्देश्य कविता की उत्कृष्टता को ही दिखलाना होता है और जो कवि-कर्म को अपने जीवन का चरम ध्येय मानते हैं। पुराण रचयिता इसके बजाय अपना मुख्य उद्देश्य लोगों को सरल भाषा में धर्मोपदेश देना और विविध प्रकार के विधि विधानों का यथार्थ वर्णन करना समझते हैं, और उसी वस्तु की करते हैं। इसलिये साहित्यिक गरिमा किन्हीं पुराणों में विशेष स्थलों पर ही दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिये हम 'मत्स्य पुराण' के हिमालय-वर्णन का कुछ अंश नीचे देते हैं—

"परम पुण्यमयी सरिता का अवलोकन करता और उसके समीप विश्राम करता हुआ पथिक जब महागिरि हिमालय के निकट पहुँचता है तो उसका वर्णन करके चकित होता है। इस हिमवान पर्वत के भूरे रंग वाले उच्च शिखर आकाश को छूते प्रतीत होते हैं। वे इतने ऊँचे हैं कि पक्षी भी वहाँ नहीं पहुँच सकते। यहाँ नदियों के जल से उत्पन्न होने

वाले महानाद के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता। ये सरितायें परम मनोरम और शीतल जल से परिपूर्ण हैं। देवदारु के वृक्षों का जो वन पर्वत के निम्न भागों में लगा है वही मानो उसका हरित अधोवस्त्र है, और ऊपर के भाग में जो मेघ घिरे रहते हैं वही उत्तरीय (ऊपर ओढ़ने वाला वस्त्र) है। सबसे ऊपर जो श्वेत वर्ण का बादल दिखाई पड़ता है वही उसकी पगड़ी है, जिस पर सूर्य और चन्द्रमा मुकुट के समान भान पड़ते हैं। इस प्रकार यह महागिरि एक नृपति की भाँति ही जान पड़ता है। उसका सर्वाङ्ग चन्दन की भाँति श्वेत हिम से चर्चित रहता है और कहीं-कहीं सुवर्ण आदि धातुओं की आभा आभूषणों का उद्देश्य भी पूरा कर देती है। अनेक स्थानों पर हरितमा युक्त घास और झाड़ियाँ ऐसी घनी हैं कि उनमें हवा का भी प्रवेश नहीं होता है और कहीं रङ्ग बिरंगे सुन्दर फूलों का बगीचा-सा लगा है। ऐसा यह महा पर्वत "तपस्वि शरणं शैलं कामिनामपिदुर्लभम्" तपस्वियों के लिये उत्तम आश्रय-स्थल काम-सेवन करने वालों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है।"

सावित्री उपाख्यान—

सावित्री उपाख्यान पति व्रत धर्म की महिमा के लिये भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, और इसके आधार पर यहाँ के कवियों ने अनेक उत्कृष्ट कोटि की रचनायें प्रस्तुत की हैं। भारत ही नहीं इस उपाख्यान ने विदेशों के विद्वानों तक को आकृष्ट किया है और इसको लेकर अंग्रेजी में भी सुन्दर काव्य लिखे गये हैं। इस उपाख्यान का मुख्य उद्देश्य नारियों के सम्मुख पतिव्रत का आदर्श उपस्थित करना ही है जैसा कि इस कथानक के आरम्भ में कहा गया है—

"इसके उपरान्त अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा (मनु) ने देवेश मत्स्य से पूछा—"भगवन्! पतिव्रत नारियों में कौन-सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पतिव्रत के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर

किया था ? मनुष्यों को इस सम्बन्ध में किसके परम शुभ नाम का कीर्तन करना चाहिये ? 'मत्स्य भगवान ने कहा—"निःसन्देह पतिव्रता का माहात्म्य इतना अधिक है कि मृत्यु का अधीश्वर यमराज भी ऐसी नारियों की अवमानना नहीं कर सकता । अब मैं तुमको एक ऐसी ही पापनाशक कथा सुनाता हूँ जिसमें एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता ने अपने स्वामी को मृत्यु के पाश से भी छुड़ा लिया था ।"

इस वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि संभवतः यह 'सावित्री उपाख्यान' कवि-कल्पना-प्रसूत ही हो और 'धर्म के अनुयायी' की महिमा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही इसकी रचना की गई हो । फिर भी संसार में ऐसी नारियाँ हुई हैं जिन्होंने वास्तव में अपने पति को 'यमराज' के घर से लौटाया है । इतिहास में एकाध ऐसी वीरांगना का वर्णन मिलता है, जिसका पति युद्ध में विषाक्त बाण लगने से मरने लगा, पर उसने तत्काल अपने मुँह से दूषित रक्त को चूस कर बाहर निकाल दिया और अपने प्राणों की चिन्ता न करके प्रिय पति के प्राणों की रक्षा की । इसी घटना का वर्णन करते हुए ब्रजभाषा के एक आधुनिक कवि ने लिखा था—

सहृदय प्यारी,
मृत्यु पराजित होत प्रेम सों निश्चय जानन हारी ।।
वीरासन ह्वै भूपति पति को लै भुज लता सहारे ।
व्रण सों विष चूस्यो जगाय जिन मधुराधर अरुणारे ।।

कुछ भी हो 'सावित्री उपाख्यान' एक ऐसी महान् पतिव्रता की कल्पना है जिसने आज तक लाखों नारियों को प्रेरणा देकर उनको पति की सच्ची सहधर्मिणी बनाया है । यमराज के सम्मुख उसके द्वारा प्रकट किये ये उद्गार आज भी पति की अनुगामिनी स्त्रियों के कानों में गूँजते रहते हैं—

मत्स्य पुराण

१—मत्स्यावतार वर्णन

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः ।
भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः ।
पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति ।१
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवानः
तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम् ।२
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।३
अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः ।
त्रिगुणायत्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ।४
सूतमेकान्तमासीनं नैमिषारण्यवासिनः ।
मुनयो दीर्घसत्रान्ते पप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम् ।५
प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च ।
कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः ।६
कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ ।
तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः ।७

हे भगवान् भव के चरण कमल । विघ्नों के नाश करने के लिये होवें जिन्होंने अपने परम प्रचण्ड ताण्डव नृत्य के आटोप में दिग्गजों अर्थात् दिशाओं के अधिपतियों के गजों को भी प्रक्षिप्त कर दिया था अर्थात् उठाकर फेंक दिया था ।१। पाताल लोक से उत्पतन शील

जिसके पुच्छ के अभिघात से ऊपर की ओर ब्रह्माण्ड के खण्डों के उच्छलि-
लन से किये हुए स्पर्श से तारकों की पंक्तियाँ आकर गिरा करती हैं
उन्हीं भगवान् विष्णु के मत्स्याकार में यह समस्त पुण्योदकमय अंशु-
मान हो गया है उनके मुख से उद्गीरितों की ध्वनि आपकी श्रुतियों की
अर्थों का अपहरण करे ।२। भगवान् नारायण और नरों में सर्वश्रेष्ठ
नरदेवी सरस्वती महाप्राज्ञ महर्षि व्यासदेव को नमस्कार करके इसके
अनन्तर 'भगवान् की जय हो' —ऐसा मुख से उच्चारण करना चाहिये
।३। जो अजन्मा भी है वह भी त्रिगुण क्रिया के योग से नारायण कहे
गये हैं। उन तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) से युक्त तीनों (साम, यजु
और ऋक्) वेदों वाले भगवान् स्वयम्भू की सेवा में नमस्कार अर्पित
है ।४। एकान्त स्थल में समासीन सूतजी से नैमिषारण्य के निवास करने
वाले मुनियों ने अपने दीर्घसत्र की अवसान वेला में दीर्घ संहिता के
विषय में पूछा था ।५। धर्म से संयुत परम ललित पुराणों की कथाओं
के प्रवृत्त होने पर शौनक आदि ऋषियों ने बारम्बार अभिनन्दन था।६।
महर्षियों ने सूतजी से कहा था—हे अनघ ! हम लोगों की कृपा करके
आपने जो पुराण सुनाये हैं ।७।

कथं ससर्ज भगवान् लोकनाथश्चराचरम् ।
कस्माच्च भगवान्विष्णुर्मत्स्यरूपत्वमाश्रितः ।८
भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वञ्च गद्यते ।
कस्य हेतोः कपालित्वं जगाम वृषभध्वजः ।९
सर्वमेतत्समाचक्ष्व सूत ! विस्तरशः क्रमात् ।
त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिह जायते ।१०
पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः ।
मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः ।११
पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः ।

पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः ॥१२
मलयस्यैकदेशे तु सर्वात्मगुणसंयुतः ।
समदुःखसुखो वीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम् ॥१३
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते ।
वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः ॥१४

लोकों के स्वामी भगवान् ने इस चराचर सम्पूर्ण सृष्टि का जिस प्रकार से सृजन किया था और जिस कारण से भगवान् विष्णु ने मत्स्य का स्वरूप धारण किया था ।८। भगवान् भव की भी भैरव स्वरूपता दुरादिष्ट होना कहा जाया करता है अर्थात् त्रिपुरासुर के हनन करने वाले और भैरव स्वरूप धारण करने वाले भव को कहा करते हैं किन्तु ऐसा कौन-सा कारण है जिसके होने से भगवान वृषभध्वज प्रभु कपाली हो हो गये हैं ।९। हे सूतजी यह सभी कुछ आप विस्तार पूर्वक क्रम से हमको बतलाने का अनुग्रह करें । आपकी परम श्रेयस्करी मधुर कथनावली ही ऐसी है जो अमृत के समान ही है कि इससे हमको कभी तृप्ति नहीं होती है ।१०। श्री सूतजी ने कहा हे द्विजगण ! इस समय में पुण्य में परम पुण्यमय आयु की वृद्धि करने वाला और नीति पवित्र सम्पूर्ण मत्स्य पुराण का ही आप लोग श्रवण करिये जिसको भगवान् गदाधर ने स्वयं कहा था।११। प्राचीनकालमें मनु नामधारी एक राजा था जो वीर्य वाला और बहुत ही अधिक तपस्वी था । उसने अपने पुत्र पर समस्त राज्यका भार सौंपकर वह क्षमाशील रविनन्दन योगाभ्यासी हो गया था ।१२। मलय देशके एक भाग में वह सम्पूर्ण आत्मा के गुणों से संयुत होकर तथा सुख और दुःख दोनों को समान भाव से मानकर वीर उत्तम योग को प्राप्त हो गया था।१३। जिस समय में एकसौ दश सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे तब वह भगवान कमलासन परम प्रसन्न हो गये थे और वरदान देने वाले बन गये थे । उन्होंने मनु के समीप में साक्षात् समुपस्थित होकर कहा था, वर मांगो तत्काल मांग लो ।१४।

एवमुक्तोऽब्रवीद्राजा प्रणम्य स पितामहम् ।
एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥१५
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥१६
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
पुष्पवृष्टिः सुमहती खात्पपात सुरार्पिता ॥१७
कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् ।
पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥१८
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः ।
रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥१९
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः ।
सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥२०
स तमादाय मणिकं प्राक्षिपज्जलचारिणम् ।
तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥२१

जब राजा ने इस तरह ब्रह्माजी के द्वारा कहा गया तो उसने पितामह के चरणों में प्रणाम किया था और फिर राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैं आपसे केवल एक ही सर्वोत्तम वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ।१५। जिस समय में इस सम्पूर्ण भूतों के समुदाय का तथा समस्त स्थावर और चर सृष्टि का प्रलयकाल उपस्थित होवे उस प्रलयसमय में मैं इनकी रक्षा करने के कार्य में समर्थ हो जाऊँ ।१६। इस याचना को सुनकर विश्वात्मा ने कहा—एवमस्तु ! अर्थात् ऐसा होवे । यह कहने के बाद में ही वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे । उसी समय में अन्तरिक्ष से देवगण के द्वारा की गई बड़ी भारी पुष्पों की वर्षा होने लगी थी ।१७। इसके अनन्तर किसी समय में वह मनु आश्रम में अपने पितृगण के लिये तर्पण कर रहे थे तो उनके हाथों में एक शफरी (मछली) जल के साथ ही आ गई थी ।१८। उन दयालु महीपति ने उस

शफरी के स्वरूप को देखकर उसी की रक्षा करने का यत्न किया था और उसने उसे कमण्डल में रख दिया था ।१९। एक ही अर्ध रात्रि के समय में वह सोलह अंगुल के विस्तार वाला हो गया था और वह मत्स्य कण से सम्पन्न होकर उस राजा से 'मेरी रक्षा करो'—यह बोला ।२०। उस राजा ने उस जलचारी को लेकर एक मणिक में डाल दिया था । वहाँ पर भी वह एक ही रात्रि में तीन हाथ का होकर बढ़ गया था ।२१।

पुनः प्राह्वार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् ।
स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणागतः ।२२
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनन्दनः ।
यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ।२३
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात्पुनर्योजनसम्मिताम् ।
तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहिपाहि नृपोत्तम ।२४
ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्द्धत ।
यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ।२५
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः ।
तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेतरः ।२६
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक्कथं भवेत् ।
योजनायुतविंशत्याकस्य तुल्यं भवेद्वपुः ।२७
ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव ।
हृषीकेश ! जगन्नाथ ! जगद्धाम ! नमोऽस्तु ते ।२८

उस मत्स्य ने फिर उस सूर्य के पुत्र नृपति से बड़े ही आर्तनाद में कहा था कि मेरी रक्षा करो—रक्षा करो—मैं तो इस समय में आपकी शरणागति में आ गया हूँ ।२२। इसके पश्चात् उस रवि के पुत्र राजा ने उस मत्स्य को कुये में डाल दिया था । जब वह मत्स्य कुये में भी नहीं समाया था तो उस मत्स्य को एक सरोवर में प्रक्षिप्त कर दिया

था। पर भी वह बढ़कर बड़ा होकर एक योजन के विस्तार वाला हो गया था और वहाँ पर भी वह फिर अधिक दीन होकर राजा से बोला था—हे नृपश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा करो-रक्षा करो।२३-२४। इसके अनन्तर उस मनु के द्वारा वह गङ्गा में प्रक्षिप्त कर दिया गया था किन्तु वह वहाँ पर भी बढ़ गया था। ऐसा जिस समय में देखा तो उसी समयमें राजा ने उस मत्स्य को समुद्र में डाल दिया था। तब वह सम्पूर्ण समुद्र में व्याप्त होकर समुपस्थित हो गया था तो उस राजा मनु ने अत्यन्त भयभीत होकर उससे कहा था—तुम असुरेश्वर कौन हो ! २५-२६। अथवा आप साक्षात् भगवान् वासुदेव ही हैं ? अन्य इस प्रकार का किस तरह हो सकता है। आपका यह शरीर का आकार अतुल विंशति योजन वाला हो गया है।२७। हे केशव ! मैं अब आपको जान गया हूँ कि आप इस विशाल मत्स्यके स्वरूपमें समुपस्थित होकर मुझे खेद दे रहे हैं। हे हृषीकेश ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगद्धाम ! आपको सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है।२८।

एवमुक्तः स भगवान्मत्स्यरूपी जनार्दनः ।
साधु साध्विति चोवाच सम्यग् ज्ञातस्त्वयाऽनघ ।२९
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते ।
भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ।३०
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता ।
महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ।३१
स्वेदाण्डजोद्भिजा ये वै ये च जीवा जरायुजाः ।
अस्यां निधाय सर्वांस्ताननाथान् पाहि सुव्रत ।३२
युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौर्नृप ।
शृङ्गेऽस्मिन्मम राजेन्द्र ! तदेमां संयमिष्यसि ।३३
ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते ।३४

एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान्नृप ।
मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ।३५

इस प्रकार से राजा ने जब मत्स्य से निवेदन किया तो उस समय में मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् जनार्दन ने कहा—बहुत अच्छा बहुत ही ठीक ! हे अनघ ! तुमने मुझको अच्छी तरह से पहिचान लिया है ।२९। हे मेदिनी के स्वामिन् ! अब बहुत ही थोड़े से समय में यह पृथ्वी जल में मग्न हो जायगी । जिसमें ये समस्त पर्वत वन और कानन सभी यह मेदिनी के साथ जल में डूब जावेंगे ।३०। हे महीपते ! यह नौका समस्त देवों के निकाय से निर्मित हुई और महान् जीवों के निकाय की रक्षा के लिये ही इसका निर्माण उत्तम है ।३१। हे सुव्रत ! जो भी स्वेदज-अण्डज-जरायुज और उद्भिज्ज जीव हैं उन सब अनाथों को इसी नौका में रखकर आप उनकी रक्षा कीजिएगा ।३२। जिस समय में युगान्त की वायु से अभिहत यह नौका होवे तब हे नृप ! हे राजेन्द्र ! इसको मेरे शृङ्ग से संयोजित कर देना ।३३। हे पृथिवीपते ! इसके उपरान्त जिस समय में समस्त स्थावर और चर के लय का अन्त हो उस वक्त आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के प्रजापति होंगे ।३४। इस प्रकार से कृतयुग के आदि काल में सर्वज्ञ और धृतिमान् नृप और देवों के द्वारा पूज्य मन्वन्तर का भी अधिप होगा ।३५।

२—मत्स्य-मनुसंवाद वर्णन

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम् ।
भगवन् ! कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्यन्तरक्षयः ।१
सत्त्वानि च कथं नाथ ! रक्षिष्ये मधुसूदन !
त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भवितामम ।२

अद्य प्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले ।
यावद्वर्षशतं साग्रं दुर्भिक्षमशुभावहम् ।३
ततोऽल्पसत्त्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः ।
सप्तसप्तेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्षिणः ।४
और्वानलोऽपि विकृतिङ्गमिष्यति युगक्षये ।
विषाग्निश्चापि पातालात्सङ्कर्षणमुखच्युतः ।
भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः ।५
त्रिजगन्निर्दहन् क्षोभं समेष्यति महामुने ।
एवं दग्धा मही सर्वा यदा स्याद्भस्मसन्निभा ।६
आकाशमूष्मणा तप्तम्भविष्यति परन्तप ।
ततः सदेवनक्षत्रं जगद्यास्यति संक्षयम् ।७

श्री सूतजी ने कहा—इन मत्स्यावतारी भगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा मनु ने मधुसूदन प्रभु से पूछा था—हे भगवन् ! यह अन्तर (प्रलय) कितने वर्षों में होगा ! ।१। हे मधुसूदन ! हे नाथ ! इन जीवों की रक्षा किस प्रकार से करोगे ! फिर आपके साथ में मेरा योग कैसे होगा ? ।२। मत्स्य भगवान् ने कहा—आज ही से लेकर इस महीतल में अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होगी । जिस समय तक सौ वर्ष पूरे होंगे तब तक यहाँ पर परम अशुभ का देने वाला अकाल हो जायगा ।३। इसके अनन्तर पूर्ण प्रतप्त अङ्गार के वर्षा के समान वर्षा वाले तप्त सात सूर्य मात्र दारुण रश्मियाँ हो जायगी जो छोटे-छोटे जन्तुओं के क्षय को कर देने वाली हैं ।४। युग के क्षय में और्वानल भी विकृतिको प्राप्त हो जायेगा । पाताल लोकसे भगवान् संकर्षण के मुख से च्युत विषाग्नि भी विकृतिस्वरूप धारण करेगा और महादेव जी के ललाट से उत्थित तीसरे नेत्र का अनल भी महान् विकृत रूप धारण करेगा ।५। हे महामुने ! इन तीनों लोकों को निर्दाह करते हुए परम क्षोभ को प्राप्त हो जायगा । इस तरह से यह सम्पूर्ण पृथ्वी

भस्म हो करके जिस समय में भस्म के सदृश हो जायगी उस समय में हे परन्तप ! यह समस्त आकाश मण्डल ऊष्मा से एकदम तप्त हो जायगा। इसके अनन्तर देवगण और नक्षत्रों के सहित यह सम्पूर्ण जगत् संक्षय को प्राप्त हो जायगा। ।६-७

संवर्त्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डो बलाहकः ।
विद्युत्पताकः शोणस्तु सप्तैते लयवारिदाः ।८
अग्निप्रस्वेदसम्भूतां प्लावयिष्यन्ति मेदिनीम् ।
समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः ।९
एतदेकार्णवं सर्वं करिष्यन्ति जगत्त्रयम् ।
वेदनावमिमां गृह्य सत्त्वबीजानि सर्वशः ।१०
आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत ।
संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः ।११
एकः स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परन्तप !
सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः ।१२
नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः ।
भवो वेदाः पुराणञ्च विद्याभिः सर्वतोवृतम् ।१३
त्वया सार्द्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये ।
एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये । १४

संवर्त—भीमनाद—द्रोण—चण्ड—बलाहक—विद्युत्पताक और शोण ये सात संसार का लय करने वाले मेघ हैं ।८। अग्नि के प्रस्वेद से समुद्भूत इस मेदिनी को ये मेघ प्लावित कर देंगे । समुद्र भी इस क्षोभ को प्राप्त होकर एक रूप वाले व्यवस्थित हो जायेंगे । यह त्रैलोक्य ही सम्पूर्ण को एक सागरमय कर देंगे अर्थात् चारों ओर त्रैलोक्य में समुद्र के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देगा । उस समय में इस वेद नौका का ग्रहण करके सभी ओर से सत्त्व बीजों को इसमें समारोपित करके हे सुव्रत ! मेरे द्वारा दिए रज्जु के योग से इस नाव का संयमित

करके मेरे ही शृङ्ग में मेरे प्रभाव से सुरक्षित होगा।८-११। हे नराधिप! समस्त देवों के दग्ध हो जाने पर भी एक मैं उस समय में भी स्थित रहूँगा। वह सोम और सूर्य समावहन करने वाले चारों लोकों से समन्वित ब्रह्माणी होगी ।१२। नर्मदा परम पुण्यमयी नदी है और मार्कण्डेय महान् ऋषि हैं। सब वेद और पुराण तथा विद्याओं से सर्वतः युत यह निखिल आपके साथ प्रलय संक्षय में स्थित रहेगा जबकि यह चाक्षुषान्तर संक्षय एकार्णव भाव रहेगा ।१३-१४।

वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।१५
मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम् ।
अभ्यसन् यावदाभूतसम्प्लवं पूर्वसूचितम् ।१६
काले यथोक्ते संजाते वासुदेवमुखोद्गते ।
शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः ।१७
भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत् ।
भूतान् सर्वान् समाकृष्य योगेनारोप्य धर्मवित् ।१८
भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत् ।
उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।१९
आभूतसंप्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना ।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा ।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ।२०
यद्भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहं द्विजाः ।
तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम् ।२१

हे महीपते! आपके सर्ग के आदिकाल में मैं वेदों को प्रवृत्त करूँगा। इतना कहकर वह भगवान वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। १५। महीपति मनु भी भगवान वासुदेव के प्रसाद से समुत्पन्न योग में समास्थित हो गये थे जिसका अभ्यास पूर्व में सूचित जब तक भूत संप्लव रहा तब तक करते रहे थे ।१६। भगवान् वासुदेव के मुख द्वारा

उत्पन्न जैसा भी कहा गया था उसी काल के समुपस्थित होने पर मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले जनार्दन प्रभु प्रादुर्भूत हो गये थे।१८। एक शृङ्ग रज्जु (रस्सा) के स्वरूप में मनु के पार्श्व में प्राप्त हो गया था। धर्म के वेत्ता उस मनु ने समस्त भूतों का समाकर्षण करके योग के द्वारा नावारोपित कर लिया था।१९। उस नौका को भुजङ्ग की रज्जु से मत्स्य के शृङ्ग में योजित कर दिया था। फिर भगवान् जनार्दन की शय्या में प्रणिपात करके उस नौका के ऊपर स्वयं उपस्थित हो गया था।२०। उस आभूत संप्लव के समाप्त हो जाने पर योगशायी मत्स्य रूपी मनु के द्वारा पूछे जाने पर यह पुराण कहा गया था। उसे ही इस समय मैं कहूँगा। हे श्रेष्ठ ऋषिगण! आप सब लोग उसका श्रवण कीजिए।२०। हे द्विजवृन्द! आप लोगों ने पहिले मुझसे सृष्टि आदि का वृत्तान्त पूछा था। वही इस समय में जब कि यह सम्पूर्ण जगत् एक अर्णव स्वरूप में था मनु ने भगवान् केशव से पूछा था।२१।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव वंशान्मन्वन्तराणि च ।
वंश्यानुचरितं चैव भुवनस्य च विस्तरम् ।२२
दानधर्मविधिं चैव श्राद्धकल्पं च शाश्वतम् ।
वर्णाश्रमविभागं च तथेष्टापूर्तसंज्ञितम् ।२३
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद्विद्यते भुवि ।
तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मं व्याख्यातुमर्हसि ।२४
महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तमोमयम् ।
प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम् ।२५
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नु चरिष्णु च ।
ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्मणाम् ।२६
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत्तमोनुदः ।
योऽतीन्द्रियः परोऽव्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातनः ।

नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्बभौ ।२७

यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत् ।

अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ।२८

मनु ने कहा—हे भगवन् ! इस विश्व की उत्पत्ति तथा इसका प्रलय—राजाओं आदि के वंश तथा मन्वन्तर—वंशों में होने वाला अनुचरित और इस भुवन का विस्तार, दान, धर्म का विधान—शाश्वत श्राद्धकल्प चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों का विभाग तथा इष्टापूर्त संज्ञा वाला कार्य, देवगणों की प्रतिष्ठा आदि एवं अन्य जो कुछ भी इस भूमण्डल में विद्यमान है वह सभी कुछ विस्तारपूर्वक तथा धर्म्म की पूर्ण व्याख्या का कथन करने को आप परम योग्य हैं उसे अब कहिये ।२२-२४। मत्स्य भगवान् ने कहा—यह तमोमय महाप्रलय का अन्त काल है। यह प्रसुप्त की भाँति तर्क न करने के योग्य अविज्ञात और लक्षण शून्य ही होता है ।२५। यह स्थावर और चर जगत् अविज्ञेय और अविज्ञात सा रहता है। इसके अनन्तर पुण्य कर्म्मों का प्रभव-अव्यक्त स्वयम्भू तम का नाश करने वाले इस समस्त जगत् को प्रकट करते हुए प्रादुर्भूत हुए थे। जो इन्द्रियों की पहुँच से अतीत अव्यक्त थे पर, अणु, ज्यायान् और सनातन थे। इनका शुभ नाम नारायण प्रसिद्ध था, यह एक ही थे और स्वयं ही उद्भूत हुए थे ।२६-२७। जिनने अपने शरीर से अभिध्यान करके इस विविध भाँति के जगत् की रचना करने की इच्छा वाले थे। इसीलिये सृजन किया था और आदि में जल में बीजों का भी सृजन किया था ।२८।

तदेवाण्डं समभवद्धेमरूप्यमयं महत्

संवत्सरसहस्रेण सूर्य्यायुतसमप्रभम् ।२९

प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसम्भवः ।

प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत्पुनः ।३० ।

तदन्तर्भगवानेष सूर्य्यः समभवत् पुरा ।

आदित्यश्चाभिभूतत्वात् ब्रह्मा च ब्रह्माण्डकल्पभृत् ।३१
दिवं भूमिं समकरोत्तदण्डकपालद्वयम् ।
स चाकरोद्दिशः सर्व्वामध्ये व्योम च शाश्वतम् ।३२
जरायुर्मेरुमुख्याश्च शैलास्तस्याभवंस्तदा ।
यदुल्बन्तदभून्मेघास्तडित्सङ्घातमण्डलम् ।३३
नद्योऽण्डनाम्नः सम्भूताः पितरो मनवस्तथा ।
सप्त येऽमी समुद्राश्च तेऽपि चान्तर्जलोद्भवाः ।
लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः ।३४
स सिसृक्षुरभूद्देवः प्रजापतिररिन्दम ।
तत्तेजसश्च तत्रैव मार्तण्डः समजायत ।३५
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः ।
रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः ।
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः ।३६
येन सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
तमवेहि रजोरूपं महत्सत्त्वमुदाहृतम् ।३७

वही अण्डहैम रूपमय महान हो गया था और एक सहस्र मन्वन्तर में वह दश सहस्र सूर्यों की प्रभा के समान प्रभा वाला हो गया था ।२९। महान् तेज से युक्त आत्म सम्भव अर्थात् स्वयम्भू प्रभु अन्तर में स्वयं ही प्रविष्ट होकर प्रकाश से भी उसकी व्याप्ति के द्वारा फिर वह विष्णुत्व को प्राप्त हो गया था ।३०। उसके अन्दर में गये हुये वह भगवान् पहिले सूर्य हुए थे ब्रह्मा आदि भूत होने के कारण से ब्रह्मा नाम करते हुए आविर्भूत हुए ।३१। उस अण्ड के दो खण्डों से दिव और भूमि को किया था और उसने सभी दिशाओं को बनाया था तथा मध्य में शाश्वत व्योम की रचना की थी ।३२। उस समय में उसके जरायु और मुख्य शैल हुये थे । जो उल्वण था वहाँ मेघ और विद्युत्

के संघात का प्रकटन हो गया था ।२३। उस अण्ड में से नदियाँ तथा पितृगण और मनु पैदा हुए थे । जो ये सात समुद्र हैं वे भी अन्तर में जल से उद्भव-प्राप्त करने वाले हो गये थे । जिनका लवण सागर इक्षु समुद्र और सुरा सागर आदि कहा गया है वे सब अनेक रत्नों से समन्वित हो गये थे ।२४। हे अरिन्दम ! सृजन करने की इच्छा वाले वह देव प्रजापति हो गये थे उनके तेज से वहीं पर वह मार्तण्ड समुत्पन्न हो गया था ।२५। अण्ड के मृत होने पर जिससे वह समुत्पन्न होता है इसी कारण से यह मार्तण्ड कहा गया है । उस महान् आत्मा वाले का यह रजोगुणमय स्वरूप है । लोकों के पितामह वह भगवान् चार मुखों वाले हो गये थे ।२६। इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है जिसने देव-असुर और मानव सभी हैं उनको रजोगुण के रूप वाला समझ लो और महत्स्वरूप उदाहृत किया गया है ।२७।

३—सृष्टि-प्रकरण

चतुर्मुखत्वमगमत्कस्माल्लोकपितामहः ।
कथं नु लोकानसृजत् ब्रह्मविदाम्वरः ।१
तपश्चचार प्रथममराणां पितामहः ।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः ।२
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।३
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।
मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः ।४
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः ।
मनसः पूर्वसृष्टार्थं जाता यत्तेन मानसाः ।५

मरीचिरभवत्पूर्वंततोऽत्रिर्भगवानृषिः ।
अङ्गिरास्तदभवत्पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम् ।६

ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत ।
प्रचेताश्च ततः पुत्रो वशिष्ठश्चाभवत् पुनः ।७

मनु ने कहा—लोकों के पितामह के आपने चार मुख बतलाये हैं सो इनके ये चार मुख कैसे हो गये थे ? ब्रह्म के वेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजी ने इन सब लोकों का सृजन किस प्रकार से किया था ? कृपा कर आप हमको यह बतलाइये ।१। भगवान् मत्स्य ने कहा था—देवों के पितामह ने सबसे प्रथम तो तपश्चर्या की थी । इसके अनन्तर सब वेदों का आविर्भाव हुआ था जो अपने अङ्ग शास्त्र उपाङ्ग तथा पद एवं क्रम से संयुत थे ।२। ब्रह्माजी के द्वारा प्रथम समस्त शास्त्रों के पुराण कहे गये हैं जो नित्य-पुण्य शब्दमय और सौ करोड़ विस्तार वाला है ।२। इसके उपरान्त ब्रह्माजी के मुखों से वेद निकले थे जो मीमांसा-न्याय विद्या से संयुत और आठ प्रमाणों से समन्वित थे ।३। ब्रह्माजी उस समय में सर्वदा वेदों के ही अभ्यास करने में निरत रहा करते थे । ऐसी दशा में जब उनको प्रजा के समुत्पन्न करने की कामना हुई तो उनके मानस सृष्टि समुत्पन्न हुई थी । क्योंकि सर्व प्रथम मन से ही सृजन हुआ था इसीलिये वे मानस समुद्भूत होने वाले कहलाये हैं ।४-५। सबसे पहिले ब्रह्माजी की मानस सृष्टि में मरीचि महर्षि उत्पन्न हुए थे । इसके पश्चात् भगवान् अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी । फिर अङ्गिरा ऋषि और इनके पश्चात् पुलस्त्य महर्षि का उद्भव हुआ था ।६। इसके अनन्तर पुलह नाम वाले समुत्पन्न हुये और इनके पीछे क्रतु की समुत्पत्ति हुई थी । फिर प्रचेता और इनके पश्चात् पुत्र वशिष्ठ ने जन्म ग्रहण किया था ।७।

पुत्रो भृगुरभूत्तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत् ।
दशेमान्मानसान्ब्रह्मा मुनीन् पुत्रानजीजनत् ।८

किया था कि बुद्धि में मोह की उत्पत्ति हुई थी । अहङ्कार की कोप कहा गया है तो फिर वह बुद्धि नाम वाली क्या कही जाती है अर्थात् वह बुद्धि किस स्वरूप वाली है ? ।१३।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता ।१४
केचित् प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः ।
एतदेव प्रजासृष्टिं करोति विकरोति च ।१५
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
एका मूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।१६
स विकारात् प्रधानात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते ।
महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा ।१७
अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्धनः ।
इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु ।
प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु ।१८
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम् ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चेतीन्द्रियसंग्रहः ।१९
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः ।२०
मन एकादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम् ।
इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ।२१
श्रयन्ति यस्मात्तन्मात्रा शरीरं तेन संस्मृतम् ।
शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः ।२२

भगवान् मत्स्य ने कहा—सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन गुण बतलाये गये हैं। इन तीनों गुणों की जो समान अवस्था होती है अर्थात् सभी समान स्वरूप में (किसी से भी कोई घट-बढ़ कर नहीं रहते हैं ऐसी दशा में) स्थित रहते हैं उसी को 'प्रकृति' इस नाम से परि-कीर्तित किया गया है।१४। इसी प्रकृति को कुछलोग 'प्रधान'—इस नाम

ते कहते हैं और दूसरे लोग इसीको अव्यक्त कहा करते हैं। यही प्रकृति प्रवृत्त या अव्यक्त इस सृष्टि को किया करती है तथा इसका विघटन भी कर दिया करती है।१५। जब ये ही तीन गुण क्षोभ को प्राप्त होते हैं तो इनसे तीन देव समुत्पन्न होकर तीन स्वरूपों में माने जाते हैं। सिद्धान्ततः यह एक ही मूर्ति है और उस एक के ही ये तीन भाग हो जाया करते हैं जो ब्रह्मा-विष्णु और महेश इन तीन शुभ नामों वाले होते हैं।१६। यह विकार युक्त प्रधान से महत्तत्त्व समुत्पन्न होता है। इसकी 'महान्' यह ख्याति इसीलिये है कि यह सदा लोकों का होता है।१७। मान के बढ़ाने वाला अहङ्कार समुत्पन्न होता है। इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। जिनके विषय में बतलायेंगे तथा पाँच अन्य कर्मेन्द्रियाँ होती हैं।१८। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के नाम श्रोत्र-त्वक् नेत्र-जिह्वा और नासिका ये हैं। पायु-उपस्थ हस्त-पाद वाक्— ये पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम हैं, यही दसों इन्द्रियों का संग्रह है।१९। इन सभी इन्द्रियों के भिन्न-२ अपने विषयों के रूप से ही बतलाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध हैं। कर्मेन्द्रियों के विषय क्रमशः उत्सर्ग, आनन्द, दान, गति और आलाप ये इनकी क्रियायें हैं।२०। मन ग्यारहवीं सर्वोपरि इन्द्रिय है। इसमें कर्म और बुद्धि दोनों ही गुणों का समावेश होता है। इन्द्रियों के अवयव बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। मनीषीगण उनकी मूर्ति का समाश्रय ग्रहण करते हैं। इसी कारण से उसको शरीर तन्मात्रा कहा गया है। शरीर के ही योग से यह जीवात्मा भी बुधों के द्वारा शरीरी कहा जाया करता है।२१-२२।

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया।
आकाशं शब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम्॥२३
आकाशात्तु विकुर्वाणाद्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्।
वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः॥२४
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्।

तेजोविकारादभवद्वारि राजंश्चतुर्गुणम् ॥२५

रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम् ।

भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत्पञ्चगुणान्विता ॥२६

प्रायो गन्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी ।

एभिः सम्पादितं भुङ्क्ते पुरुषः पञ्चविंशकः ॥२७

सृजन करने की इच्छा में प्रेरणा प्राप्त हुआ मन सृष्टि किया करता है। यह आकाश शब्द तन्मात्रा से ही समुत्पन्न होता है और यह आकाश का शब्द ही विशेष गुण होता है।२३। आकाश की विकृति से वायु की समुत्पत्ति होती है और इस वायु के शब्द और स्पर्श ये ही विशेष गुण हुआ करते हैं। वायु के स्पर्श तन्मात्रा से रूप गुण के स्वरूप वाला तेज समुद्भूत हुआ करता है। इस तेज में शब्द के अतिरिक्त स्पर्श और रूप के भी दो गुण और होते हैं। ऐसे यह तीन गुणों वाला होता है। तेज के विकार से जल की उत्पत्ति होती है। इस जल में ये चार गुण होते हैं।२४-२५। यह रस की तन्मात्रा से समुद्भूत होता है अतएव यह प्रायः रस गुण से समन्वित होता है। भूमि की तन्मात्रा से उत्पन्न होती है और इसमें रूप, रस, स्पर्श, शब्द गन्ध ये पाँच गुण होते हैं।२६। अतः यह गन्ध गुण वाली ही होती है और बड़ी गरीयसी बुद्धि भी है। इनके द्वारा सम्पादित को यह पञ्चविंशक पुरुष भोगता है।२७।

ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः ।

एवं षड्विंशकः प्रोक्तः शरीरेऽस्मिन्मानवे ॥२८

सांख्यं संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते ।

एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्वेधा अजीजनत् ॥२९

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ।

ततः सञ्जपतस्तस्य भित्वा देहमकल्मषम् ॥३०

यावद्वर्षशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ।

ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ।३१
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम् ।
तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते ।३२
वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः ।
स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे ।३३
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः ।
औत्तमिप्रमुखास्तद्वद् येषां त्वं सप्तमोऽधुना ।३४

गुणों के द्वारा यह जीवात्मा भी बन्धन को प्रकृति के वश में रहने वाला कहा जाता है। इस प्रकार से इन मानवीय शरीरमें छब्बीसवाँ पुरुष या वह पच्चीसवाँ इस नाम से कहा जाया करता है।२८। तत्वों की संख्या के स्वरूप वाला होने ही से कपिल आदि के द्वारा यह सांख्य शास्त्र या दर्शन कहा जाता है जिन्होंने इस जगत् को एक तत्व के स्वरूप वाला समुत्पन्न किया है।२९। लोकों की सृष्टि के लिये सावित्री को अपने कुक्षि में करके ही पश्चात् समास्थित होते हैं। इसके उपरान्त भली-भाँति जाप करते हुए उनके गर्भस्थ सहित शरीर का भेदन करके ही सावित्री प्रकट हुई थीं।३०। जिस प्रकारसे कोई प्राकृत मनुष्य होता है उसी भाँति विश्व ही सर्व तप के बहुत महान् काल में उसका अर्थात् सावित्री का मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था।३१। इसका स्वायम्भुव मनु—यह शुभ नाम प्रसिद्ध था यह महान् विराट था—ऐसा हमने सुना है। इसके रूप गुण सामान्य से यह अधि पुरुष कहा जाता है।३२। जहाँ पर वे बहुत से शंसित व्रतवाले वैराज समुत्पन्न हुये थे तथा दूसरे सात-सात महाभाग वाले स्वायम्भुव थे।३३। स्वारोचिष आदि ये सब ब्रह्मा के ही तुल्य स्वरूप वाले थे। उसी तरह औत्तमि प्रमुख भी थे अर्थात् जिनमें औत्तमि प्रधान था वे भी थे जिनमें आप इस समय में सातवें होते हैं।३४।

४—सरस्वती चरित

स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पत्नीमवाप रूपाढ्यामनन्तीं नाम नामतः ॥१
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत् ।
धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृता नाम भामिनी ॥२
उत्तानपादात्तनयान् प्राप मन्थरगामिनी ।
अपस्पतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा ॥३
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ।
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तपः पुरा ॥४
दिव्यमाप ततः स्थानमचलं ब्रह्मणो वरात् ।
तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥५
धन्या नाम मनोः कन्यां ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत् ।
अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्सा सुषुवे सुतान् ॥६
कृपं रिपुं जयं वृत्तं वृकं च वृकतेजसम् ।
चक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यां वीरिण्यां स रिपुञ्जयः ॥७

मत्स्य भगवान् ने कहा—परम धीमान् स्वायम्भुव मनु ने अति दुश्चर तपश्चर्या करके परम रूप लावण्यवती अनन्ती नाम वाली पत्नी बनाई थी ।१। महाराज मनु ने उस अपनी पत्नी में प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र समुत्पन्न किये थे । धर्म की एक अति चतुर सूनृता नाम वाली भामिनी थी । उसने भी मन्थर गमन करने वाली ने उत्तान पाद से पुत्रों की प्राप्ति की थी । उन पुत्रों के नाम अपस्पति, अपस्यन्त कीर्तिमान् और ध्रुव थे ।२-३। प्रजापति उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सूनृता में इनको जन्म ग्रहण कराया था । उनमें जो ध्रुव नाम वाला पुत्र था उसने प्राचीन काल में तीन सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी ।४। फिर उसने इसी तप के फलस्वरूप ब्रह्माजी के वरदान से परम दिव्य और अचल स्थान प्राप्त किया था । उसी ध्रुव को आगे करके

उल्लिखित किया करते थे ।६। जिसका नाम शाम्भवी मनु की कन्या ने ध्रुव से शिष्ट को जन्म दिया था। शिष्टात्मा अग्नि की कन्या सुच्छाया ने पुत्रों को समुत्पन्न किया था ।७। कृप, रिपु, वृत्त, वृक, वृकतेजस, चक्षुष बड़े तेजस्वी थे और वह रिपुञ्जय वीरिणी में उत्पन्न हुये थे ।

वीरणस्यात्मजायान्तु चक्षुर्मनुमजीजनत् ।
मनुर्वैराजकन्यायां नड्वलायां स चाक्षुषः ।८
जनयामास तनयान्दश शूरानकल्मषान् ।
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्छुचिः ।९
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः ।
अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत ।१०
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान् ।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।११
पितृकन्या सुनीथा तु वेनमङ्गादजीजनत् ।
वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्कराद्भूत् ।
पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत् ।१२
अन्तर्धानस्तु मारीचं शिखण्डिन्यामजीजनत् ।
हविर्धानस्तु षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शार्ङ्गं यमं शुक्लं बलं शुभम् ।१३
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः ।
हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तिताः ।१४

वीरण की आत्मजा में मनु ने चक्षु को प्रसूत किया था और वैराज की कन्या नड्वला में चाक्षुष मनु ने कल्मष से रहित महान् शूरवीर दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था। उन दशों के नाम— ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न, अपराजित और अभिमन्यु दशम था जो नड्वला से उत्पन्न

हुआ था ।१०। उससे आग्नेयी ने सुन्दर प्रजा वाले पुत्रों को प्रसूत किया था जिन पुत्रों के नाम अग्नि, सुमन, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और गय थे ।११। पितृ कन्या जिसका शुभ नाम सुनीथा थी अङ्ग से वेन को जन्म दिया था । राजा वेन बहुत ही अधिक अन्यायी हुआ था । अतएव ऋषियों ने उसको शाप देकर फिर उसके शरीर का मंथन किया था । उसके दाँये हाथ के मंथन करने पर पृथु नाम वाला महान् तेजस्वी का जन्म हुआ था उस पृथु ने भी दो पुत्रों को प्रसूत किया था ।१२। इसने शिखण्डिनी में अन्तर्धान और मारीच नाम वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था । धिषणा आग्नेयी ने हविर्धान से पुत्रों को प्रसूत किया था जिनके नाम प्राचीन बर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन थे ।१३। प्राचीन बर्हि भगवान् एक महान् प्रजापति हुये थे । उनने हविष्मति बहुत सी प्रजायें सम्प्रवर्तित की थीं ।१४।

सवर्णायान्तु सामुद्र्यां दशाधत्त सुतान्प्रभुः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।१५
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभूवुर्लोकसमन्ततः ।
देवादेशाच्च तानग्निरदहद्रविनन्दन ! ।१६
सोमकन्याऽभवत्पत्नी मारिषा नाम विश्रुता ।
तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्र्यमजीजनत् ।१७
दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः ।
अजीजनत्सोमकन्या नन्दीं चन्द्रवतीं तथा ।१८
सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः ।
आसीत्तु विस्तरं वक्ष्ये लोके यः पुत्रनिष्ठितः ।१९
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः ।
वलीमुखाः शङ्कुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा ।२०
अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा ।
श्वसूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्रमुखास्तथा ।२१

प्रभु ने गन्धर्व मातृकों से कुछ पुत्रों को जन्म प्रदान किया था। वे सभी धर्मेन्नक नाम से प्रसिद्ध हुए थे।१५। उनके गण के सुरभित पुत्र मोक्ष में गये और सुशोभित हुये थे। हे रविनन्दन! देवों के आदेश से अग्नि ने उनको उत्पन्न किया था।१६। मारिषा इस पुत्र नाम से प्रसिद्ध उसकी पत्नी हुई थी उसमें एक अवयव अर्थात् परमोत्तम दक्ष नाम वाले पुत्र को उसने प्रसूत किया था।१७। दक्ष के अनन्तर सभी और बहुत से वृक्ष और औषधियों सोम कन्या ने समुत्पन्न की थीं तथा सभी चन्द्रवती को भी जन्म दिया था।१८। सोम के अंश जम... के भी अपनी पत्नी हुये थे उनका विस्तार बनाकर जो लोक में सुप्रतिष्ठित हुआ था।१९। कुछ तो दो पद वाले और कुछ बहुत पद वाले नर हुये थे। कर्णोमुख, शंकु कर्ण तथा कर्ण प्रावरण कुछ अश्व और रीछ के मुख वाले तथा कुछ सिंह के समान मुख वाले हुये थे। कतिपय कुत्ता और शूकर के तुल्य मुख वाले और कुछ ऊँट के समान मुख वाले हुये थे। ।२०-२१।

जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकशः ।
समुत्पाद्य मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत् ।२२
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिः सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः ।
देवासुर मनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत् ।२३

उस धर्मात्मा ने सब अनेकों म्लेच्छों को भी जन्म दिया था। उस दक्ष ने मन से सृजन करके पीछे स्त्रियों को जन्म दिया था।२२। उसने उन में से दश तो धर्म को दी थीं—तेरह कश्यप को प्रदान की थीं और सत्ताईस नक्षत्र संज्ञा वाली सोम को दी थीं। उन्हीं स्त्रियों से देव, असुर और मनुष्य प्रभृति का यह सम्पूर्ण जगत् हुआ था।२३।

५—दक्ष प्रजापति से मैथुनी सृष्टि

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ! ब्रूहि यथातथम् ॥१
सङ्कल्पाद्दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।
दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा ॥२
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः ! ॥३
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान् ।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ।
दक्षः पञ्चसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत् ॥४
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
नारदः प्राह हर्यश्वान् दक्षपुत्रान्समागतान् ॥५
भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च ।
ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः ॥६
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः ॥७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! अब कृपा करके देवों की—दानवों की—गन्धर्व-उरग और राक्षसों की जो उत्पत्ति हुई थी उसको यथारूप से विस्तारपूर्वक बतलाइये ।१। सूतजी ने कहा—आरम्भ में तो केवल मन के संकल्प से दर्शन से और स्पर्श से ही पूर्व पुरुषों की सृष्टि कही है प्राचेतस दक्ष के बाद में ही मैथुन से होने वाली सृष्टि हुई थी ।२। स्वयम्भू प्रभु ने पहिले दक्ष को आज्ञा प्रदान की थी कि प्रजा का सृजन करो । हे द्विजगण ! आदिकाल में जिस प्रकार से सृजन किया था उस का आप लोग अब श्रवण करो ।३। जिस समय में देव-ऋषि-और पन्नगों का उसने सृजन किया था तो उससे लोक में कोई भी वृद्धि नहीं हुई थी तब उस प्रजापति दक्ष ने पाञ्चजनी में मैथुन के योग से सहस्र

पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ।६। विविध भाँति की प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा करने की इच्छा करने वाले महाभाग ने उनको देख करके ना रहने समागत हर्यश्व दक्ष के पुत्र से कहा था ।५। हे ऋषि सत्तमो ! सर्वत्र इस भूमण्डल का प्रमाण ऊर्ध्व भाग में और अधोभाग में भली भाँति जानकर फिर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करो ।६। उन्होंने भी उन से इस वचन को सुनकर सभी दिशाओं में प्रयाण किया था और तब से वे गए हुए हैं आज तक भी वापिस नहीं लौटे हैं जिस तरह नदियाँ समुद्र में जाकर फिर वापिस नहीं लौटा करती हैं ।७।

हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः ।
वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।८
शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः ।
नारदोऽनुगतान्प्राह पुनस्तान् पूर्ववत्सतान् ।
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातॄनथो पुनः ।९
आगत्य चाथ सृष्टिं च करिष्यथ विशेषतः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृन् यथा पुरा ।१०
ततः प्रभृति न भ्राता कनीयान्मार्गमिच्छति ।
अन्विष्यन्दुःखमाप्नोति न तेन तत्परिवर्जयेत् ।११
ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः ।
वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ।१२
प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये (मिनः) ।१३
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासान्नामानि विस्तरात् ।१४

उन हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने पुनः वीरिणी में प्रभु ने एक सहस्र पुत्रों का सृजन किया था ।८। वे विप्र शबल इस नाम वाले थे और सभी सृष्टि के हेतु स्वरूप एकत्रित हुए थे । फिर उन

अनुगत पुत्रों ने पूर्व की भाँति ही नारद ने कहा था कि इस सृष्टि का सर्वत्र प्रमाण को जानकर कि यह कितनी विस्तृत है तथा अपने प्रथमगत भाइयों को भी जानकर फिर यहाँ आकर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करोगे। देवर्षि नारद जी के कथन पर वे सभी उसी मार्ग पर चले गये थे, जिससे पहिले उनके बड़े भाई लोग गये थे।९-१०। तभी से लेकर भाई के छोटे भाई उस मार्ग की इच्छा नहीं करता है। अन्वेषण करते हुए दुःख को प्राप्त होता है अतएव इसी कारण से उसका परिवर्जन कर देना चाहिए।११। इसके अनन्तर उनके भी विनष्ट हो जाने पर प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी में साठ कन्याओं का सृजन किया था अर्थात् उनको जन्म दिया था।१२। उन्हीं साठ कन्याओं में से दक्ष ने दश कन्याएँ तो धर्म को दी थीं—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की, सत्ताईस सोम को प्रदान की थीं—चार अरिष्टनेमि को दी थीं। अब उनके नाम विस्तारपूर्वक बतलाये जाते हैं।१३-१४।

शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः ।
मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुन्धती ॥१५
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोधत ॥१६
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥१७
भानोस्तु भानवस्तद्वन् मुहूर्ताया मुहूर्तकाः ।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा ॥१८
पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत ।
संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिं निबोधत ॥१९
ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतोदिशम् ।
वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गं निबोधत ॥२०
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥२१

अब आप लोग उन देवों की माताओं के परम शुभ नामों को तथा आदि से प्रसार के विस्तार का श्रवण करो—धर्म की जो कन्यायें दक्ष दी गयी थीं उन धर्म की पत्नियों के नाम मरुत्वती-वसु-यामी-लम्बा-भानु-अरुन्धती-संकल्पा-मुहूर्ता-साध्या-विश्वा और भामिनी थे थे। ये सब धर्म की पत्नियाँ समाख्यात हुई थीं। अब उन दशों पत्नियों के उदर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी जान लो।१५-१६। विश्वा के विश्वेदेवा पुत्र हुए थे और साध्या ने साध्यों को जन्म दिया था। मरुत्वती में मरुत्वान्गणों ने जन्म ग्रहण किया था और वसु से वसुगण समुत्पन्न हुए थे।१७। भानु से भानुगण और उसी भाँति मुहूर्ता में मुहूर्तजों ने जन्म लिया था। लम्बा नाम की पत्नी में घोष नाम वाले पुत्र हुए थे तथा यामि से जन्म लेने वाले नागवीथी थे। अरुन्धती में पृथ्वी तल सम्भूत का जन्म हुआ था। संकल्पा से संकल्प समुत्पन्न हुआ था। अब वसुओं की सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करलो।१८-१९। ज्योतिष्मान् जो देव व्यापक हैं और सभी दिशाओं में हैं वे ही सब वसुगण नाम से समाख्यात हुए थे। अब इनसे जो सृष्टि हुई है उसको भी आप लोग समझलो।२०। आप अर्थात् जल, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसुगण कीर्तित किये गये हैं।२१।

आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वैतण्ड एव च ।
साम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः ।२२

ध्रुवस्य कालपुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत ।
द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ।२३
कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च ।
मनोहरा धरात्पुत्रानवापाथ हरेः सुता ।२४
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा ।
अवाप चानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ ।२५

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥२६
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेयस्ततः स्मृतः ।
प्रत्यूषस्य ऋषिः (षेः) पुत्रो विभुर्नाम्नाथ देवलः ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥२७
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ।
तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः ।२८

आपके चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम शान्त, वैतण्ड, साम्ब और मणिवक्त्र थे। ये सब यज्ञों की रक्षा करने के अधिकारी हुए थे।२२। ध्रुव का पुत्र काल हुआ था तथा सोम से वर्चा नामक पुत्र हुआ था। धर के द्रविण और हव्यवाह नाम वाले दो पुत्र हुए थे। ।२३। इसके पश्चात् कल्याणिनी से प्राण, रमण और शिशिर हुए थे। हरि की सुता ने धर से मनोहर सुतों की प्राप्ति की थी ।२४। शिवा मनोजव और अविज्ञात गति नामों वाले दो पुत्रों को अनल से जन्म दिया था जो प्रायः अग्नि के समान ही गुणों वाले हुए थे ।२५। अग्नि पुत्र और कुमार शरस्तम्ब में समुत्पन्न हुए थे। उसके पृष्ठज शाख-विशाख और नैगमेय उत्पन्न हुए थे ।२६। कृत्तिकाओं की भी सन्तान थी वही कार्तिकेय इस नाम से कहा गया है। प्रत्यूष ऋषि का जो पुत्र था उसका नाम विभु था। इसके पश्चात् देवल विश्वकर्मा प्रभास का पुत्र हुआ था जो शिल्पी प्रजापति था ।२७। प्रासाद, उद्यान, प्रतिमा और भूषण आदि में तथा तड़ाग, आराम कूपों में यह अमर वर्धकि कहा गया है ।२८।

अजैकपादहिर्बुध्न्य विरूपाक्षोऽथ रैवतः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥२९
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।
एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ।३०

एतेषां मानसानां तु त्रिशूलवरधारिणाम् ।
कोट्यश्चतुरशीतिस्तु तत्पुत्राश्चाक्षया मताः ॥३१
दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः ।
पुत्रपौत्रसुतान्वीते सुरभीगर्भसम्भवाः ॥३२

अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक-सुरेश्वर-सावित्र-जयन्त-पिनाकी-अपराजित—ये ग्यारह समाख्यात हुए हैं । एकादश गणेश्वर हुए हैं ।२९-३०। ये मानस त्रिशूलवर के धारण करने वाले हैं इनकी संख्या चौरासी करोड़ है और इनके पुत्र भी अक्षय माने गये हैं ।३१। ये गणेश्वर सभी दिशाओं में रक्षा का काम किया करते हैं । पुत्र, पौत्र और ये सुत सभी सुर भी गर्भसे संभूत होने वाले हैं ।३२।

६—कश्यपान्वय वर्णन

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान् ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा ॥१
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान्निबोधत ॥२
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
वैवस्वतेऽन्तरे चैते आदित्या द्वादश स्मृताः ॥३
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणो यमः ।
विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेव च ॥४
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः ।
मारीचात् कश्यपाच्चाप पुत्रानदितिसत्तमात् ॥५
कृशाश्वस्य ऋषेः पुत्रा देवप्रहरणाः स्मृताः ।
एते देवगणा विप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च ॥६

उत्पद्यन्ते अतीतास्ते कल्पे कल्पे तथैव च ।
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं कश्यप ऋषि की पत्नियों से जो पुत्र और पौत्र आदि हुए हैं उनका ज्ञान बतलाने को जा रहा हूँ । कश्यप महर्षिकी पत्नियोंके नाम अदिति-दिति-दनु-अरिष्टा-सुरसा-सुरभि-विनता-ताम्रा-क्रोधवशा-इरा-कद्रू-विश्वा-मुनि-थे थे । अब इन पत्नियोंके उदर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी आप लोग जान लीजिये ।१-२। तुषिता नाम वाले जो देवता चाक्षुष मनु के अन्तर में हुए थे वे ही सब वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य कहे गये हैं ।३। इन द्वादश आदित्यों के नाम इन्द्र-धाता-भग-त्वष्टा-मित्र-वरुण-यम-विवस्वान-सविता-पूषा-अंशुमान-विष्णु-ये हैं ये ही सहस्र किरणों वाले बारह आदित्य कहे गये हैं । मारीच कश्यप महर्षि से अदिति ने परमोत्तम पुत्रों को प्राप्त किया था ।४-५। कृशाश्व ऋषि के पुत्र देव प्रहरण कहे गये हैं । हे विप्रो ! ये सब देवगण प्रत्येक मन्वन्तर में हुए हैं ।६। ये सब उत्पन्न हुआ करते हैं और अतीत भी होते रहते हैं और कल्प-कल्प में ऐसा ही होता रहता है । दिति नाम की जो महर्षि कश्यपजी की एक पत्नी थी उसने कश्यप से दो ही पुत्रों की प्राप्ति की थी—ऐसा सुना गया है ।७।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षं तथैव च ।
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम् ॥८
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च ।
प्रह्लादपुत्र आयुष्मान् शिबिर्बाष्कल एव च ॥९
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलिं पुत्रमाप्तवान् ।
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं ततो द्विजाः ॥१०
धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः ।
निकुम्भनाभो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः ॥११
एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः ।

बाणः सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुतः ।१२
तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत् ।
महाकालत्वमगमत्साम्यं यश्च पिनाकिनः ।१३
हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा ।
भूतसन्तापनश्चैव महानाभस्तथैव च ।१४

उस दिति के पुत्रों के नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष था । हिरण्यकशिपु के अति कीर्ति वाले चार पुत्र हुए थे ।८। उन चारों पुत्रों के नाम प्रह्लाद-अनुह्लाद-संह्लाद और अनुह्लाद ये थे । प्रह्लादके पुत्र आयुष्मान्-शिबि-बाष्कल तथा पौत्र विरोचन हुए थे । विरोचनके बलि नामधारी को पुत्र के रूपमें प्राप्त किया था । हे द्विजगण! राजा बलिक को सौ पुत्र हुए थे जिनमें बाण सबसे बड़ा पुत्र था ।९-१०। धृतराष्ट्र-सूर्य-चन्द्र-चन्द्र सन्तापन-तापन-निकुम्भ-गुर्वक्ष-कुक्षिभीम—विभीषण एवं आदि पुत्रों में सर्वाधिक बहुत से पुत्र थे इनमें बाण ज्येष्ठ था । बाण और सहस्र बाहु सभी प्रकार के अस्त्रों के समुदाय से समन्वित थे अर्थात् सभी अस्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे ।११-१२। तपश्चर्या के द्वारा परम सन्तुष्ट हुए भगवान् शूलभृत् जिस के पुर में ही निवास किया करते थे । और जो पिनाकी प्रभु के साम्य महाकालत्व को प्राप्त हो गया था । हिरण्याक्ष के पुत्र उलूक-शकुनि-भूत सन्तापन और महानाभ हुए थे ।१३-१४।

एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोट्यः सप्तसप्ततिः ।
महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः ।१५
दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम् ।
विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद्येषां मध्ये महाबलः ।१६
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शंकुशिरोधरः ।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो नामतस्तथा ।१७
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरा गर्भशिरास्तथा ।

विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ।१८
इन्द्रजित् सत्यजित् चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ।१६
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः ।२०
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा ।
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ।२१

इनके जो पुत्र और पौत्र आदि हुए थे उनकी संख्या सैकड़ों करोड़ थी। वे महान् बलशाली-महान् शरीर के आकार प्रकार वाले, अनेक प्रकार के स्वरूप धारी और महान् ओज वाले सभी हुए थे।१६। दनु से महा मुनीन्द्र कश्यप से वंश के वर्ग में नाना-विध एक सौ पुत्रों का जन्म हुआ था। इन सबके मध्य में महान् बलवान् और प्रधान विप्रचित्ति हुआ था।१७। उन सौ दनु के पुत्रों में कतिपय प्रधान पुत्रों के नाम यहाँ पर बतलाये जा रहे हैं—द्विमूर्धा-शकुनि-शंकुशिरोधर-अयोमुख-शम्बर-कपिश-मारीचि-मेघवान्-इरा-गर्भशिरा-विद्रावण-केतु-केतुवीर्य-शतह्रद-इन्द्रजित-सत्यजित-वज्रनाभ-एकचक्र-महाबाहु-वज्राक्ष-तारक-असिलोमा-पुलोमा-बिन्दु-बाण-महासुर-स्वर्भानु-वृषपर्वा एवं आदि दनु के पुत्र हुए थे जो कि प्रमुख थे।१८-२०। स्वर्भानु की कन्या का नाम प्रभा था और शची थी तथा पुलोमजा मय की उपदानवी थी तथा मंदोदरी और कुहू थी।२१।

शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः ।
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते द्विजे ।२२
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे ।
तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत्पुरा ।२३
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत्पुरा ।
अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ।२४

चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु ।
विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ।२५
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश ।
व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च ।२६
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा ।
नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ।२७
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः ।
संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः ।२८

वृषपर्वा की शर्मिष्ठा पुत्री थी और श्री वैश्वानर की दो पुत्रियाँ हुई थीं जिनका नाम पुलोमा और कालका था ।२२। महान् बल वाले और बहुत ही सम्पत्ति से समन्वित मारीच का परिग्रह था उन दोनों के पुत्रगण साठ हजार दानव हुए थे ।२३। मारीच के पौलोम और कालकेयों को जन्म दिया था । जो देव अवध्य थे कि वे हिरण्य पुर में निवास करने वाले थे अर्जुन के द्वारा वध करने के योग्य नहीं थे ।२४। ये सब चार मुखों वाले ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करने वाले थे विजय के द्वारा हत हुए थे । विप्रचित्ति सिंहिका में सैंहिकेयों को जन्म ग्रहण कराया था । जो हिरण्यकशिपु के भानजे थे वे तेरह हुए थे । हे राजेन्द्र ! उनके नाम ये हैं—व्यंस, कल्प, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि श्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण और कालवीर्य जो कि विख्यात थे दनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं । जो संह्राद नामक दैत्य था उसके निवातकवच कहे गये हैं ।२५-२८।

अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ।२९
षट्कन्या जनयामास ताम्रा मारीचबीजतः ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी गृध्रिका शुचिः ।३०
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ।३१

गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् ।
हंससारसक्रौञ्चांश्च प्लवान् शुचिरजीजनत् ॥३२
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत् ।
एष ताम्रान्वयः प्रोक्तो विनतायां निबोधत ॥३३
गरुडः पततां नाथो अरुणश्च पतत्रिणाम् ।
सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता ॥३४
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ ।
सम्पातिपुत्रो बभ्रुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः ॥३५

ये सभी महान बल विक्रमशाली थे और देवों में अधिष्ठ थे कि समस्त देवगण तथा गंधर्व-उरग और राक्षस भी इनका वध नहीं कर सकते थे। इन्होंने रणक्षेत्र में मार्गों का सहारा ग्रहण करके अर्जुन ने ही निहत किया था।२९। मारीच के वंश से ताम्रा ने छै कन्याओं का प्रसव किया था। इन छैओं कन्याओं के नाम थे— शुकी, श्येनी, भासी सुग्रीवी, गृध्रिका, शुचि।३०। शुकी ने शुकों को तथा उलूकों को भी प्रसव में जन्म कराया था। श्येनी ने श्येनों को प्रसूत किया था और भासी ने कुररों को समुत्पन्न किया था।३१। गृध्री ने गिद्धों को और कबूतरों पारावत विहङ्गमों, हंस, सारस, क्रौंचों को जन्म दिया था तथा शुचि ने प्लवों को समुत्पन्न किया था।३२। सुग्रीवी नाम वाली ने अज, अश्व, मेष, उष्ट्र और खरों (गधों) को जन्म ग्रहण कराया था। यहाँ तक यह ताम्रा का वंश वर्णित किया गया है अब जो वहाँ से आगे आप सब लोग विनता में समुत्पन्न हुई थी उसका भी ज्ञान प्राप्त करलो।३३। पतनशील पक्षियों का स्वामी गरुड़ और पतत्रियों में अरुण और सौदामिनी नाम वाली एक कन्या जो नभ में विश्रुत है। अरुण के सम्पाति और जटायु दो पुत्र हुए थे। सम्पाति का पुत्र बभ्रु था और शीघ्रगामी प्रसिद्ध है।३४-३५।

जटायुषः कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ ।
सारसो रज्जुबालश्च भेरुण्डश्चापि तत्सुताः ॥३६

तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् ।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममवत्पुरा ।३७
सहस्र शिरसाङ्कद्रुः सहस्रञ्चापि सुव्रत ! ।
प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्‌विंशतिररिन्दम ।३८
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः ।
धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ।३९
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।
शङ्खपाल महाशङ्ख-पुष्पदंष्ट्र शुभाननाः ।४०
शंकुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा ।
कपिलोदुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरितिस्मृताः ।४१
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् ।
प्रायशो यत् पुरादग्धं जनमेजयमन्दिरे ।४२

जटायु के पुत्र कर्णिकार और शतगामी ये दो परम प्रसिद्ध हुए थे । सारस, रज्जुबाल और भैरुण्ड भी उसी के पुत्र थे ।३६। उनके पुत्र और पौत्र जो हुए थे वे पक्षियों के अनन्त ही हुए थे । पुरातन समयमें सुरसाके एक सहस्र सर्प हुए थे । हे सुव्रत ! कद्रू के सहस्र शिरवालों के एक सहस्र सर्प हुएथे किन्तु हे अरिन्दम! उनमें परम प्रमुख छब्बीस ही विख्यात हुए हैं।३७।३८। उन छब्बीस प्रकारके प्रधान सर्पोंके नाम तथा भेद इस प्रकार हैं—शेष, वासुकि, कर्कोट, शंख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि—इन नामों से छब्बीस कहे गये हैं । इन सबके पुत्र और पौत्र जो हुए थे उनके अनन्त ही हुए थे । प्रायः जनमेजय ने अपने मंदिर में सर्पों के ध्वंस करने वाले यज्ञ में प्राचीन काल में दग्ध कर दिये थे ।३६-४२।

रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् ।
दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात्क्षयम् ।४३

महिषाणाञ्च गणं तद्वद्गोमहिष्यो वरांगनाः ।
सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ।४४
मुनिर्मुनीनाञ्च गणं गणमप्सरसां तथा ।
तथा किन्नरगान्धर्व्वानरिष्टाऽजनयद्बहून् ।४५
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीनत् ।
विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ।४६
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद्दितिः ।
जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ।४७

क्रोधवशा नाम वाली पत्नी ने अपने नाम वाले राक्षसों के गण को जन्म दिया था । दाढ़ वालों उनके संख्यामें निपुण ही हुए थे किन्तु भीमसेन से उनका वध हो गया ही था ।४३। उसी भाँति सुरभिनाम धारणी कश्यप की पत्नीपे कश्यप ऋषि से ही महिषों गण-गौ-भैंस और वराङ्गनाओं का जन्म संयत व्रत वाली होकर दिया था ।४४। मुनि नाम की पत्नी ने मुनियोंके गण तथा अप्सराओं के गण को उत्पन्न किया था । अरिष्टा पत्नी ने बहुत से किन्नरों और गंधर्वों को समुत्पन्न किया था ।४५। इरा ने ये सभी वृक्ष तृण, लता और गुल्मों को जन्म दिया था । विश्वा नाम वाली कश्यपकी पत्नी ने करोड़ों ही यक्षों और राक्षसों को उत्पन्न किया था ।४६। इसके अनन्तर दिति ने कश्यपजीसे गर्भ धारण करके उनचास मरुद्गणोंको प्रसूत कियाथा जो परम धर्मज्ञ थे और सभी देवताओं के परम प्रिय भी थे ।४७।

७—आधिपत्याभिषेचन

आदिसर्गस्त्वया सूत ! कथितो विस्तरेण तु ।
प्रतिसर्गान्वयेशानामधिपांस्तान् वदस्व नः ।१
यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसां च चन्द्रम् ।२
नक्षत्र-तारा-द्विज-वृक्ष-गुल्म-लता-वितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत् ।३
विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निं च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम् ।४
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षः-पशु-भूत-यक्ष-वेतालराजं त्वथ शूलपाणिम् ।५
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं सरितां नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ।६
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिशां गजानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावतनामधेयम् ।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूत जी ! आपने यह आदि सर्ग तो बड़े ही विस्तार के साथ वर्णित कर दिया है । अब इनके प्रत्येक वर्ग में जिनके जो अधिप हुए हैं उनका भी वर्णन कर हमको बतलाने की कृपा कीजिएगा ।१। महामुनीन्द्र श्री सूतजी ने कहा—जिस समय में सम्पूर्ण राज्य में इस धरित्री में राजा पृथु अधिप का अभिषेक हुआ था उसी समय में समस्त औषधियों का तथा यज्ञव्रत वाले तपों का अधिप चन्द्रमा को बनाया गया था ।२। नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म, लता, वितान का रुक्म गर्भ को अधिप नियुक्त किया था । सम्पूर्ण जलों का अधीश वरुण को बनाया गया था और इसी भाँति समस्त प्रकार के धनों का तथा राजाओं का स्वामी कुबेर को बनाया गया था ।३। रवियों का सबका अधिप विष्णु और समस्त वसुओं का लोकाधिपति अग्निदेव

दी गयी थी। आदित्यों का प्रधान विष्णु को और मरुतों का स्वामी इन्द्र को बनाया गया था।४। दैत्यों का तथा दानवों का स्वामी प्रह्लाद को किया गया था और पितृगणों का अधीश यम को नियुक्त किया था। विनायक, राक्षस, प्रमथ, पशु, भूत, यक्ष, वेताल इन सबका स्वामी भगवान् शूलपाणि को बनाया गया था।५। समस्त गिरियों का अधिप प्रालेय गिरि (हिमालय) को बनाया था तथा सब जलचरों और नदियों का अधीश्वर समुद्र को नियुक्त किया गया था। गन्धर्व-विद्याधर और किन्नरों का स्वामी चित्ररथ को ही किया गया था।६। जितने भी नाग जाति वाले थे उनका अधीश वासुकि को किया था और सर्पों का स्वामी तक्षक को नियुक्त किया था। ऐरावत को भी दिग्गजों का स्वामी गजेन्द्र किया था।७।

सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसं चकार।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम्॥८
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चत् पुनः सर्वदिशाधिनाथान्।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधन्वानमरातिकेतुम्॥९
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम्।
सकेतुमन्तञ्च दिगीशमीशं चकार पश्चाद्भुवनाण्डगर्भः॥१०
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतं चकार।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम्॥११
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम्।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते॥१२
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः॥१३

जो पतनशील पक्षिगण हैं उनका राजा सुपर्ण को किया था और सभी प्रकार के अश्वों का राजा उच्चैःश्रवा नाम वाले को बना दिया था। जितने भी मृगों के समूह हैं उन सबका अधिराज स्वामी सिंह बनाया तथा गौ-जाति का अधिप वृषभ को और सम्पूर्ण

नक्षत्रनिकरों का अधीश्वर चन्द्र को बनाया गया था ।८। पितामह ने सबके पूर्व इनको अभिषिक्त किया और फिर उन्होंने ही इन समस्त दिशाओं के अधिपतियों का अभिषिक्त किया था । पूर्व दिशा में दिक्पाल सुधर्मा नाम वाले को बनाया था जो वासवि पुत्र हैं ।९। उसके अनन्तर दक्षिण दिशा का पालक प्रजापति शंखपद अधिपति वाले कर्दम को बनाया था । फिर पश्चिमार्ध में केतुमान ईश को दीक्षित किया था ।१०। प्रजापति ने उत्तर दिशा का दिक्पाल स्वामी हेमकूट हिरण्य रोमा को बनाया था । ये सब दिक्पाल प्रथम पूर्वकाल समय में नियुक्त किये गये थे किन्तु ये सभी ये आज तक भी दिशाओं में अधीश्वर वसुओं का भार वहन करते हुए इस भू मण्डल की रक्षा कर रहे हैं ।११। इन सभी के द्वारा पृथु नाम वाला राजा सर्व प्रथम पृथ्वी में अभिषिक्त किया गया था जब चाक्षुष नाम वाला मन्वन्तर समाप्त हो गया था और वैवस्वत नाम वाला मन्वन्तर प्रवृत्त हो गया था उस समय में इस महाराज सम्पूर्ण विश्व का पूर्णविश्व अंश के लिए वाला प्रजापति हुआ था ।१२-१३।

९—मन्वन्तर वर्णन

एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम् ।
पूर्वेषां चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन ॥१
मन्वन्तराणि सर्वाणि मनूनां चरितञ्च यत् ।
प्रमाणञ्चैवकालस्य तत्सृष्टिञ्च समाहितः ॥२
एकचित्तः प्रशान्तात्मा शृणु मार्त्तण्डनन्दन ।
यामनामपुरादेवाआसान् स्वायम्भुवान्तरे ॥३
सप्तैव ऋषयः पूर्वे ये मरीच्यादयः स्मृताः ।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च ॥४

ज्योतिष्मान्द्युतिमान् हव्योमेधामेधा तिथिर्वसुः ।
स्वायम्भुवस्यास्य मनोर्दशैते वंशवर्द्धनाः ॥५
प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत्परमम्पदम् ।
एतत्स्वायम्भुवंप्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम् ॥६
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः ।
नभो नभस्यप्रसृतिभानवः कीर्तिवर्द्धनाः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से समस्त स्तवन करके मनु ने पुनः भगवान् जनार्दन से कहा था कि हे मधुसूदन ! अब आप मन्वानुग्रह करके पूर्व में होने वाले मनुगण का चरित हमारे सामने वर्णित कीजिए ।१। उस समय भगवान् ने कहा अब आप सब लोग पूर्ण रूप से समाहित हो जाइए और श्रवण कीजिये । मैं सम्पूर्ण मन्वन्तर और मनुओं के चरित तथा उनके कालका प्रमाण सर्वोत्कृष्ट बतलाता हूँ । हे मार्कण्डेय नन्दन ! एकनिष्ठ चित्त वाले और परम प्रसन्न आत्मा वाले होकर आप सुनिये । पहिले परम पुरातन समय में याम नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता हुए थे ।३। मरीचि आदि पूर्व में ये ही सप्त ऋषि हुए थे । आग्नीध्र-अग्नि बाहु-सह-सवन-ज्योतिष्मान्-द्युतिमान्-हव्य-मेधा-मेधातिथि—वसु ये दश ही स्वायम्भुव मनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं अर्थात् इन्हीं ने वंश को बढ़ाया था ।४-५। प्रत्येक सर्ग में ये परम पदको प्राप्त हुए थे—यही स्वायम्भुव मन्वन्तर का चरित है जो तुमको बता दिया गया है । अब इसके आगे स्वारोचिष मन्वन्तर आता है ।६। स्वारोचिष मनु के देवों के समान वर्चस् वाले चार पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये हैं—नभ—नभस्य प्रसृति और भानु । ये सभी कीर्ति की वृद्धि करने वाले थे ।७।

दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तम्भः प्राणः कश्यप एव च ।
और्वो बृहस्पतिश्चैव सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥८
देवाश्च तुषितानामस्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ।

तुर्वीन्द्रः सुकृतो मूर्तिरापो ज्योतिरयः स्मयः ।९
वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः ।
द्वितीयमेतत्कथितं मन्वन्तरमतः परम् ।१०
औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथा मन्वन्तरं शुभम् ।
मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दश पुत्रानजीजनत् ।११
ईषऊर्जस्तनूर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च ।
मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा ।१२
सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्तिवर्द्धनः ।
भावनास्तत्र देवाः स्युरूर्जाः सप्तर्षयः स्मृताः ।१३
कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शंखः प्रवहणः शिवः ।
सितश्च सस्मितश्चैव सप्तैते योगवर्द्धनाः ।१४

स्वारोचिष मन्वन्तर में तुष, निश्च्यवन, दत्तक, आप, कश्यप, और्व और बृहस्पति ये सात ही सप्तर्षि कहे गये हैं ।८। स्वारोचिष मन्वन्तर में देवता तो तुषित नाम वाले हुए थे। हवीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अयास्य ये सात वसिष्ठ ऋषि के पुत्र हुए। उस समय में प्रजापति कहे गए हैं। यह दूसरा जो स्वारोचिष नाम वाला मन्वन्तर था उसका भी वर्णन कर दिया है। इसके आगे औत्तम मन्वन्तर का वर्णन करते हैं। इसके समय में औत्तमि नाम वाले मनु ने दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ।९-११। उन दसों पुत्रों के शुभ नाम ये हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभा और सह। इनमें कनीयान् जो था वह उदार और कीर्ति वर्द्धन था ।१२। औत्तमीय मन्वन्तर में भावना नाम वाले देवगण थे और ऊर्ज सप्तर्षि हुए थे ।१२-१३। कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शंख, प्रवहण, शिव, सित, सस्मित ये ही सात योग की वृद्धि करने वाले थे ।१४।

मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम् ।
कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च ।१५

तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्ततामसे ।
साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ॥१६
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः ।
तपो रतिस्तपस्यश्च तपोधृतिः परन्तपः ॥१७
तपोभागी तपोयोगी धर्माचाररताः सदा ।
तामसस्य सुताः सर्वे दशवंशविवर्द्धनाः ॥१८
पञ्चमस्य मनोरेतद्वै रैवतस्यान्तरं शृणु ।
देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः ॥१९
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ।
देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयः शुभाः ॥२०

तीन मन्वन्तरों का वर्णन किया जा चुका है अब चौथे मन्वन्तर का बतलाया जाता है जिसका तामस नाम प्रसिद्ध है। कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान् ये ही सात तामस कल्प के सात मुनिगण और साध्य नाम वाले देवगण इस तामस मन्वन्तर में हुए थे ।१५-१६। तामस मनु के भी दस पुत्र हुए थे जो उसके वंश के वर्धन करने वाले थे । उनके नाम—अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोधृति, परंतप, तपोभागी, तपोयोगी ये हैं और ये सदा धर्म के आचार में ही रति रखने वाले थे ।१७-१८। इसके अनन्तर अब उसी प्रकार से पञ्चम मनु रैवत नाम वाले के अन्तर को आप लोग श्रवण करिए । इस पाँचवें मन्वन्तर में देवबाहु-सुबाहु-पर्जन्य-मुनि-हिरण्यरोमा और सप्ताश्व ये सात सप्तर्षि कहे गए थे । देवता आभूत रजस हुए थे तथा शुभ प्रकृतियाँ थीं ।१९-२०।

अव्ययस्तत्त्वदर्शी च धृतिमान्हव्यपोऽनघः ।
युक्तो निरुत्सुकः सत्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः ॥२१
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः ।
भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च ॥२२

विवस्वानतिनामा च षष्ठे मन्वन्तरेऽपरे ।
चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः ।२३
ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः ।
चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्चयोनयः ।२४
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ।
प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु ।२५
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम् ।
सप्तमं तत्प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते ।२६
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा ।२७
भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान् ।२८

अरुण-तत्त्वदर्शी-धृतिमान्-हव्यवान्-कवि-मुक्त-निरुत्सुक-सत्व-निर्मोह सुतारादि इन नामों वाले धर्म लय। कीर्त्तिरण से समन्वित रैवत मनु के दस पुत्र समुत्पन्न हुए थे। भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद विवस्वान, अतिनामा ये छठवें मन्वन्तर में दूसरे सप्तर्षि गण थे। चाक्षुष मन्वन्तर में लेखा नाम वाले देवता हुए थे जो पूर्णतया परिश्रुत हैं।२१-२३। चाक्षुष मन्वन्तर में देवों की पाँच योनियाँ बतलाई गयी हैं—ऋभु ऋभाद्य—वारिमूल और दिवौकस ये उनके नाम हैं।२४। इसी प्रकार से चाक्षुष मनु के रुरु प्रभृति दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे जिनका वर्णन मैंने स्वायम्भुव के वंश में पहिले ही कर दिया है।२५। इसके अनन्तर मैंने यह चाक्षुष मन्वन्तर परिकीर्तित किया है। अब सातवाँ मन्वन्तर बतलाते हैं जिसको वैवस्वत मन्वन्तर कहा जाता है। इस मन्वन्तर में अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज तथा प्रतापवान् योगी विश्वामित्र और जमदग्नि ये सात इस वर्तमान समय में सात महर्षि हैं। ये सब धर्म की व्यवस्था करके परम पद को चले जाते हैं।२६-२८।

साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ ।
आदित्याश्च सुरास्तद्वत्सप्त देवगणाः स्मृताः ।२९

इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य वंशपुत्राः स्मृता भुवि ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्तमहर्षयः ।३०
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम् ।
सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भाविनमन्तरम् ।३१
अश्वत्थामा शरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा ।
शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च ऋषयः स्मृताः ।३२
धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो धृष्टिरेव च ।
चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुक्रश्च वीर्यवान् ।३३
भविष्या दश सावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।
रौच्यादयस्तथान्येऽपि मनवः सम्प्रकीर्तिताः ।३४
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति ।
मनुर्भूतिसुतस्तद्वद्भौत्यो नाम भविष्यति ।३५

इस मन्वन्तरमें साध्य, विश्वेदेवा, रुद्र, मरुद्गण, वसुगण, अश्विनी कुमार, आदित्य और भृगु ये उसी भाँति सात देवगण कहे गये हैं ।२९। इस वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु जिनमें प्रमुख थे ऐसे दस पुत्र इस भूमण्डल में बताए गए हैं । इस रीति से सभी मन्वन्तरों में सात-सात ही महर्षि हुए हैं ।३०। ये सब महर्षि उपस्थित हुआ करते हैं कि अपने-अपने मन्वन्तर में धर्म की ठीक व्यवस्था कर देवें । इसके उपरान्त ये सप्तर्षि परम पद को चले जाया करते हैं । अब भावी मनु सावर्ण्य का अन्तर भी हम बतलाये देते हैं । इस भावी मन्वन्तर में भी उसी भाँति सात महर्षियों का गण होगा । अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द काश्यप और राम ये सात ऋषि कहे गए हैं । इन मनु के भी दस पुत्र हैं । उनके नाम धृति, वरीयान् यवस, सुवर्ण, धृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु, शुक्र जो महान् वीर्य वाला है । ये आगे होने वाले सावर्णि मनु के दस पुत्र होंगे जिनके नाम यहाँ पर कीर्तित कर दिए गए हैं । इनके अतिरिक्त रौच्य प्रभृति अन्य भी मनु बतलाये गये हैं । रौचि

नामधारी प्रजापति का पुत्र रौच्य नाम वाला होगा । इसी प्रकार से भविष्य में भूति का पुत्र एक भौत्य नाम वाला भी मनु होगा ।३१-३५

ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः ।
ऋतश्च ऋतधामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा ॥३६
अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः ।
षड्नवं युगसाहस्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप ॥३७
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम् ।
कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३८
एते युगसहस्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः ।
ब्रह्माद्या विष्णुसायुज्यं याता यास्यन्ति वै द्विजाः ॥३९

इनके पश्चात् ब्रह्मा का पुत्र मेरुसावर्णि मनु बताया गया है । ऋत, ऋतधामा, विष्वक्सेन भी मनु कहे गये हैं जो इसी आगे समागत समय में ही होंगे । जो मनु अब तक हो चुके हैं वे अतीत मन्वन्तर और जो अब यहाँ से आगे वाले मनु हैं उन सबको परिकीर्तित कर दिया गया है । नराधिप ! इन मनुओं के द्वारा छः बार एक सहस्र युगों का समय व्याप्त होता है । वे सभी मनु अपने-अपने अन्तरों में इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का समुत्पादन करके जब कल्प का क्षय होता है उस समय में कल्प की विनिवृत्ति में ब्रह्मा के साथ ही मुच्यमान हो जाया करते हैं । इसी प्रकार से ये सब एक सहस्र युगों के अन्त में बारम्बार विनष्ट हो जाया करते हैं । द्विजगण ! ब्रह्मा आदि सभी विष्णु भगवान् के सायुज्य में गये हुए चले जायेंगे ।३६-३९।

९—पृथ्वीदोहन

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा ।
पार्थिवाः पृथिवीयोगात्पृथिवी कस्य योगतः ॥१

किमर्थं पार्थिवश्चैव कुलसंज्ञा भूते नित्यादिविधायिनी ।
गौरितीयञ्च विख्याता सूत ! कस्माद्ब्रवीहि नः ॥२
वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः ।
मृत्योस्तु दुहितातेन परिणीता सुदुर्मुखा ॥३
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा ।
अधर्मनिरतश्चासीद्बलवान्वसुधाधिपः ॥४
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः ।
धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽस्य महर्षिभिः ॥५
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः ।
शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥६
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः ।
विदुरमस्य चांशेन धार्मिको धर्मधारिणः ॥७

महर्षि गण ने कहा—यह सुना जाता है कि पहले पृथु ने भूपालों में इस पृथ्वी का दोहन किया है। इस पृथ्वी के नाम से राजाओं को इसका अधिप या भोग करने वाले होने से पार्थिव कहा गया है। पृथ्वी का जो यह नाम हुआ है यह किसके योग से पड़ा है? भूमि की यह संज्ञा (पृथ्वी) किसलिए हुई है और क्या परिभाषण करके जानी है अर्थात् इसकी क्या कल्पना की जाती है। इस धरणी का 'गौ' यह भी नाम कहा जाता है और यह नाम भी इसका विख्यात है—यह इसका नाम किस कारण से पड़ा है यह कृपा करके आप हमको बतला दीजिए ॥१-२॥ सूतजी ने कहा—स्वायम्भुव मनु के वंश में अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था। उसने मृत्यु की दुहिता सुदुर्मुखा से परिणय किया था ॥३॥ उसका सुनीथा नाम था और पहिले वेन नाम वाला सुत था। वह वेन सर्वदा अधर्म में ही निरत रहा करता था और महान् बलवान् वसुधा का स्वामी था ॥४॥ वह लोक में भी अधर्म के करने वाला हुआ था और यह पराई भार्या के अपहरण करने वाला था। जगत् के

व्यभिचार की सिद्धि के लिए महर्षियों के द्वारा उसको अनुनीत भी किया गया था तो भी जिस समय में अनुज्ञा नहीं की तो ऋषिगण ने शाप देकर उनके द्वारा उसका हनन कर दिया था और फिर वे अराजक राजा के भय से अर्दित हो गए थे ।५-६। कल्मष से रहित ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसके देह का मंथन किया था । मंथन की हुई उसकी काया से म्लेच्छ जाति वाले लोग निष्पादित हुए ।७।

शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभः ।
पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः ।८
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्सधनुः सशरो गदी ।
दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः ।९
पृथोरेवाभवज्जन्म ततः पृथुरजायत ।
स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम् ।१०
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्पुनः ।
निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ।११
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः ।
ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ।१२
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः ।
ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत् ।१३
पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते ।
सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ।१४

माता के अंश से शरीर में वे कृष्ण अञ्जन के समान प्रभा वाले हुए थे पिता के अंश के द्वारा जो धर्मचारी था धार्मिक हुआ था ।८। दाहिने हाथ से धनुष-शर के सहित गदाधारी समुत्पन्न हुआ था उस समुद्भूत व्यक्ति के शरीर का परम दिव्य तेज था और उसका वह दिव्य तेज पूर्ण शरीर रत्न सहित कवच और अङ्गदों से विभूषित था ।९। यह अधिक बल से समुत्पन्न हुआ था इसलिए यह 'पृथु' ही हुआ

था । विप्रों के द्वारा राज्यपालन पर उसका अभिषेक भी किया गया था तो भी वह पृथु नामक उस काल के भगवान् विष्णु के चरणाम्बुज से इस समस्त भू-मण्डल का प्रभु बन गया था । उसने भूमिपति होकर देखा था कि यह सम्पूर्ण भूतल स्वाध्याय वषट्कार और धर्म से रहित हो गया है । १०-११। इस अवलोकित सब विनाशकारी दशा ने उस भूतल का ध्वंस स्वरूप देखा तो उसे बड़ा भारी क्रोध हो गया था और बाणों से बाद के द्वारा इसको वध कर देने को उद्यत हो गया था । जब राजा ने इस प्रकार का भीषण कोपावेग देखा तो भूमि भी गाय के स्वरूप में समाविष्ट होकर भय से वहाँ से भागने को उद्यत हो गयी थी ।१२। दीप्त शरासन वाले महाराज पृथु भी उसी के पीछे-पीछे अनुगमन करने लगे थे । इसके उपरान्त जब उसने देखा था राजा पीछे-पीछे चलते हुए ही पकड़कर चले आ रहे हैं तो वह एक स्थान में ठहरकर स्थित हो गई थी और राजा से बोली मैं क्या करूँ ? मुझे आप ही बतलावें ।१३। पृथु ने भी यही कहा था—हे सुव्रते ! जो भी सबके अभीष्ट पदार्थ हैं उनको तुम दो । स्थावर और चर सम्पूर्ण जगत् का अभीष्ट तुम्हें देना चाहिए।१४

तथैव सा धरणीद्भूमिर्दुदोह स नराधिपः ।
स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ।१५
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजाजीवन्तियेनवै ।
ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धावत्सः सोमस्तदाभवत् ।१६
दोग्धाबृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपोरसः ।
देवैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धामित्रस्तथाभवत् ।१७
इन्द्रोवत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम् ।
देवानां काञ्चनं पात्रं पितृणां राजतं तथा ।१८
अन्तकश्चाभवद्दोग्धायमोवत्सःस्वधा रसः ।
अलाबुपात्रंनागानांतक्षकोवत्सकोऽभवत् ।१९
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्पुनः ।

असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ।२०
पात्रे मायामभूद्वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः ।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीन्मायायेन प्रवर्तिता ।२१

भूमि ने उसी भाँति कहा था और उस नराधिप ने दोहन किया किया था । पृथु ने अपने हाथ में स्वायम्भुव मनु को वत्स बनाकर ही दोहन किया था ।१३। वह अन्न शुद्ध हो गया था जिससे प्रजा जीवित रहा करती है । इसके पश्चात् फिर ऋषियों ने दोहन किया था उस समय में वत्स सोम हुआ था ।१५। फिर दोग्धा बृहस्पति हुए थे और पात्र तो वेद था तथा तप रस था । देवों के द्वारा भूमि दोहन हुई थी उस समय में दोहन करने वाले मित्र थे ।१७। इन्द्र वत्स बना था और उसका जो क्षीर था वह ऊर्जस्कर बल था । देवों का जो पात्र था वह तो सुवर्णमय अर्थात् सुवर्ण का था और पितृगण का पात्र राजत अर्थात् चाँदी का था ।१८। जिस समय में अन्तक यमराज ने भूमि का दोहन किया था और अन्तक स्वयं दोग्धा बने थे उस काल यम वत्स और स्वधा रस था । नागों का पात्र तो अलाबु था और तक्षक वत्स बना था । ।१९। उस पात्र में विष ही क्षीर था । इसके अनन्तर पुनः धृतराष्ट्र दोग्धा हुए थे । इसका दोहन असुरों के द्वारा भी हुआ था आयस पात्र अर्थात् लोहे के शक्रपीडिनी का दोहन हुआ । पात्र में माया को दुहा था और उस समय में प्रह्लाद विरोचन वत्स हुआ था । वहाँ पर दोग्धा दो मूर्धाओं वाला था जिसने माया को प्रवर्तित किया था । ।२०-२१।

यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्धानमीप्सुभिः ।
कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते ।२२
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारा रुधिरमुल्बणम् ।
रौप्यनाभोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्स एव च ।२३
गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च वसुधाप्सरोगणैः ।

वत्सं चैत्ररथं कृत्वा गन्धान् पद्मदलेषु वा ।२४
दोग्धा वररुचिर्नामनाट्यवेदस्य पारगः ।
गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च ।२५
औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः ।
वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रं शैलमयं पुनः ।२६
वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् ।
पालाशपात्रं दोग्धा तु शालः पुष्पलताकुलः ।२७
प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षो घनाधिपः ।
एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धा यथेप्सितम् ।२८

पहिले अन्तर्धान की इच्छा रखने वाले यक्षों के द्वारा भी वसुधा दुही गयी थी । हे महीपते ! उस समय में आमपात्र को पात्र बनाया था तथा वैश्रवण (कुबेर) को वत्स बनाया गया था ।२२। इस धरा का दोहन प्रेत और राक्षस वर्गों के द्वारा भी किया गया था अपि कपाल रुधिर दुहा गया था । रौप्य नाभ दोग्धा हुए थे और सुमाली वत्स हुआ था ।२३। पहिले काल में गन्धर्वों ने भी इस वसुधा को दुहा था जो कि अप्सराओं के गणों के साथ मिलकर ही दोहन किया गया था । उन्होंने चैत्र रथ को वत्स बनाया था और पद्मों के दलों में गन्धों को दुहा था ।२४। वररुचि नाम वाला ही वसुधा का दोग्धा हुआ था जो कि वह शुचि नाट्य वेद का पारगामी धुरन्धर विद्वान् था । गिरियों के के द्वारा इस वसुधा का दोहन किया गया था जिसमें विविध भाँति के रत्नों का दोहन हुआ था ।२५। महान् अचल मेरु के द्वारा दिव्य औषधियों का दोहन हुआ था । उस दोहन के समय में वत्स हिमालय बना था और शैलमय ही पात्र था ।२६। वृक्षों ने वसुन्धरा का दोहन किया था। जिस दोहन में छिन्न हुए वृक्षों का पुनः प्ररोहण को जाना गया था । पलाश (ढाक) का पात्र था और पुष्प तथा लताओं से समाकीर्ण शालवृक्ष दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था ।२७। उस काल में प्लक्ष

(ओंकार) ही को समस्त गुणों का अनाधिप है वत्स हुआ था। इसी रीति से इस वसुधा का उस काल में अन्यों के द्वारा भी यथेष्ट रूप से दोहन किया गया था।२८।

आयुर्धनानि सौख्यञ्च पृथौ राज्यं प्रशासति ।
न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगीन च पापकृत् ।२९
नोपसर्गभयं किञ्चित् पृथुराजनि शासति ।
नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिता: ।३०
धनुष्कोट्या च शैलेन्द्रानुत्सार्य्य स महाबल: ।
भुवस्तलं समञ्चक्रे लोकानां हितकाम्यया ।३१
न पुरग्रामदुर्गाणि न चायुधधरा नरा: ।
क्षयातिशयदु:खञ्च नार्थशास्त्रस्य चादर: ।३२
धर्म्मैकवासना लोका: पृथौ राज्यं प्रशासति ।
कथितानि च पात्राणि यत्क्षीरञ्चमयानघ ।३३
येषां यत्र रुचिस्तत्तद्देयं तेभ्यो विशालता ।
यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ।३४
दुहितृत्वङ्गता यस्मात् पृथोधर्म्मवतो मही ।
तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधै: ।३५

जिस समय में यहाँ पर भू-मण्डल में महाराज पृथु राज्य का प्रशासन कर रहे थे उस समय यहाँ आयु सौख्य और धन सभी कुछ था उस काल में यहाँ पर कोई भी दीन दरिद्र नहीं था और न कोई रोग से ही रोगाक्रान्त व्यक्ति था और न कोई भी पाप कर्मों के ही करने वाला था।२९। पृथु राजा के शासन काल में किसी भी प्रकार के उपसर्ग का भय किसी को भी नहीं था। सभी लोग नित्य ही परम प्रमुदित थे और सभी लोग दुःख तथा शोक से रहित थे।३०। उस महान् बल वाले राजा ने अपने धनुष की कोटि के द्वारा बड़े-बड़े शिलाखण्ड प्रमुख शैलों को उत्सारित करके इस भूतल को समतल कर दिया था तथा

कपट आचरण छुड़ाकर लोगों के हित के सम्पादन की कामना से परम सुन्दर इसको बना दिया था ।२१। उस राजा के शासन काल में नगर और ग्रामों में कोई भी सुरक्षा सम्पादनार्थ दुर्ग आदि की आवश्यकता ही नहीं थी। और कोई भी मनुष्य आयुधों को धारण करने वाले भी नहीं थे क्योंकि अस्त्रायुधों की कोई आवश्यकता ही नहीं रहा थी। भय के अतिशय होने का दुःख लेशमात्र भी नहीं था था तथा अर्थशास्त्र का कुछ भी समादर उस समय में नहीं रह गया था ।२२। राजा पृथु महाराज के द्वारा प्रशासन की बागडोर हाथ में ग्रहण करने पर सभी लोग एक साथ धर्म को पालन करने वाले हो गये थे। दुहने दोहन के पात्र और क्षीर सब बतला दिए हैं।२३। जिसको जहाँपर जिसकी चाह हो विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को उसको देना चाहिए। यज्ञों में और श्राद्धों में सबकी रुचि के अनुसार ही दान करना चाहिए यह हमने तुमको बतला दिया है।२४। क्योंकि राजा पृथु के होने पर यह धर्मवती पृथ्वी उसकी दुहिता के स्वरूप वाली हो गई थी। यह उसमें एक विशेष अनुराग का ही योग था इसी कारण से पृथु के ही नाम से इस वसुधा का नाम भी लोक में पृथ्वी यह विख्यात हो गया था। जिसे बुध लोग कहा करते हैं।२५।

१०—आदित्याख्यान

आदित्यवंशमखिलं वद सूत ! यथाक्रमम् ।
सोमवंशं च तत्त्वज्ञ ! यथावद्वक्तुमर्हसि ।१
विवस्वान् काश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत्सुतः ।
तस्य पत्नीत्रयं तद्वत्संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा ।२
रैवतस्य सुता राज्ञी रैवतं सुषुवे सुतम् ।
प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्रीसंज्ञा तथा मनुम् ।३

यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः ।
ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः ॥४
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम् ।
त्वाष्ट्रीस्वरूपेण नाम्ना छायेति भामिनी तथा ॥५
किङ्करोमीति पुरतः स्थितां तामभ्यभाषत ।
छाये ! त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने ! ॥६
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय ।
तथेत्युक्ता तु सा देवमगमत् क्वापि सुव्रता ॥७

ऋषियों ने पूछा—हे सूतजी ! सूर्य का सम्पूर्ण वंश आप हमारे सामने वर्णन कीजिए जो कि सब क्रमपूर्वक हो । हे तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता विद्वान् ! इसी भाँति सोमवंश का भी यथावत् वर्णन करने के लिए आप परम योग्य हैं ।१। महा मनीषि सूतजी ने कहा—सबसे पूर्व में कश्यप महर्षि से अदिति नाम वाली पत्नी के उदर से विवस्वान् सूर्य ही समुत्पन्न हुआ था । उस विवस्वान् (सूर्य) की तीन पत्नियाँ थीं और उनके नाम संज्ञा—राज्ञी और प्रभा थे ।२। राज्ञी रैवत की पुत्री थी और उसने रैवत सुत को जन्म दिया था । प्रभा नाम वाली ने प्रभात को उत्पन्न किया था तथा त्वाष्ट्री संज्ञा ने मनु को समुत्पन्न किया था ।३। यम ने यमुना समुत्पन्न की थी । वे यमल हुए थे । वह विवस्वान के उस तेजोमय स्वरूप को सहन करने वाली नहीं थी ।४। उसने अपने शरीर से एक अनिन्दित नारी को समुत्पादित किया था । उस समय में वह भामिनी स्वरूप से त्वाष्ट्री और नाम से छाया थी ।५। "मैं इस समय में क्या करूँ"—यह कहने वाली जब सामने वह स्थित हुई तो उससे कहा था—हे छाये ! हे वर आनन वाली ! तुम हमारे ही स्वामी का भजन करो ।६-७। जो मेरी सन्तति हों उसे आप माता के समान स्नेह के द्वारा ही पालन करो । 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कह कर वह सुव्रता कहीं पर देव के समीप में पहुँच गई थी ।७।

कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।
जनयामास तस्यां तु पुत्रञ्च मनुरूपिणम् ।८
सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्मनोर्वैवस्वतस्य च ।
ततः शनिञ्च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु ।९
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः ।
छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा ।१०
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्च्छितः ।
सन्तर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम् ।११
शशाप च यमं छाया सक्रोधः कुपिसंयुतः ।
पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रवः ।१२
निवेदयामास पितुर्धर्म्मः शापाद्विमर्षितः ।
निष्कारणमहं शप्तो मात्रा देव सकोपया ।१३
बालभावान्मया किञ्चिदुद्यतश्चरणः सकृत् ।
मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद्विभो ।१४

सूर्य देव भी यह संज्ञा है—इसी आदर से उसको चाहते रहते थे। उसमें उन्होंने मनुरूपी पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था।८। वैवस्वत मनु के सवर्ण होने से वह सावर्णि हुआ था। इसके पश्चात् क्रम से शनि तपती और विष्टि को समुत्पन्न किया।९। भगवान् भास्कर ने यह संज्ञा ही है यह समझकर छाया में ही समुत्पन्न किए थे। छाया अपने पुत्र मनु में विशेष अधिक स्नेह किया करती थी।१०। पूर्व मनु ने तो देखा नहीं था किन्तु यम तो क्रोध से अत्यधिक मूर्च्छित हो गया था। उस समय में उसने अपनी दाहिनी लात उठाकर भली-भाँति उसको डाँट फटकार दी थी।११। तब तो छाया ने यम को शाप ही दे दिया था कि यह तेरा एक पैर जिसको तूने उठाकर मारने की धमकी दी थी कृमियों से युक्त व्रण वाला और मवाद तथा रक्त से विस्रव हो जायगा।१२। इस शाप से अमर्षित होकर धर्म्म ने पिता से निवेदन किया था

हे देव ! मुझे बिना ही किसी विशेष कारण के माता ने शाप दे दिया है वह मुझ पर अत्यन्त ही कुपित हो गई है ।१३। बल के अभाव होने के ही कारण से मैंने एक ही बार अपना चरण अवश्य ही कुछ उठाया किया था । हे विभो ! मनु के द्वारा उसे निवारण भी किया गया था तो भी मुझे माता ने शाप दे ही दिया है ।१४।

प्राचीन माता ह्यस्माकं शापेनाहं यतो हतः ।
दैवोऽप्यात्मसम भूतः किङ्करोमि महामते ।१५
मौर्ख्याच्चिन्तयन्दुःखमापन्नाः कर्मसन्ततेः ।
अनिवार्याभयस्यापि विपाकास्तेऽपि जन्तुषु ।१६
कृकवाकुर्मयाऽऽदत्तो यः कृमीन् भक्षयिष्यति ।
क्लेदजं रुधिरं चैव व्रणात्तवमपनेष्यति ।१७
एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्रं महायशाः ।
गोकर्णतीर्थे वैराग्यात् फलपर्णानिलाशनः ।१८
आराधयन् महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम् ।
वरं प्रादान् महादेवः सन्तुष्टः शूलभृत्तदा ।१९
यत्नलोकपालत्वं पितृलोके नृपालयम् ।
धर्माधर्मात्मकस्यापि जगतस्तु परीक्षणम् ।२०
एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः ।
पितॄणामाधिपत्यं च धर्माधर्मस्य चानघ ।२१

प्रायः यह हमारी माता शाप के द्वारा मुझे कभी हत नहीं किया करती थी इसीलिए बड़ा दुःख है । उस समय देव ने भी पिता यम से कहा था—हे महामते ! बताओ, अब मैं इसमें क्या करूँ ।१५। मूर्खता के कारण किसको दुःख नहीं होता है अर्थात् सभी मनुष्य उससे दुःखित हुआ ही करते हैं । अथवा यह कर्मों की सन्तति ऐसी अनिवार्य होती है तो भी जैसा कर्म करता है उसे उसका फल अवश्य ही भोगना ही पड़ता है । यह तो प्राणी नहीं भगवान् भव को भी भोगनी पड़ती है

लिए अन्य साधारण जन्तुओं को तो कथा ही क्या है।१६। यह मैंने कृपावश दे दिया है जो ऋषियों को भी आवश्यक। हे वत्स! यह केवल और दधिक का भी भक्षण करेगा।१७। इस प्रकार से जब उसने कहा गया था तो उस महान् यशस्वी यम ने तीव्र तपश्चर्या का तपन किया था और वह तपस्या भी फल-पत्र और वायु का ही केवल अशन करके गंधर्व नामक तीर्थ में की थी।१८। बहुत सौ वर्षों हजार वर्ष पर्यन्त भगवान् महादेव का समाराधन किया था। तब तो इस उग्रतप से महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे और उसी समय में जटाधारी प्रभु ने वरदान दे दिये थे।१९। महादेव ने कहा था—लोकपालत्वता हो जायगी और पितृ लोक में शुभागम होगा। तुम्हारा कर्त्तव्य कर्म यही होगा कि सम्पूर्ण जगत्का धर्म और अधर्म का आप पर्यालोचन किया करेंगे कि कौन कितना धार्मिक है और कौन घोर पापात्मा है। आपके द्वारा यह निर्णय होने पर ही यह दुःख नरक तथा सुख स्वर्ग का उपभोग किया करें।२०। हे अनघ! इस प्रकार से शूलपाणि के प्रसाद से वह यम लोकपाल हो गया था तथा पितृगण का अधिपति होने का पद तथा धर्माधर्म का निर्णायक बन गया था।२१।

विवस्वानथ तद्वृत्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम् ।
त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे च रोषवान् ।२२
तमुवाच ततस्त्वष्टा सान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमाः ।
तवासहन्ती भगवन् ! महस्तीव्रं तमोनुदम् ।२३
वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता ।
निवारिता मया सा तु त्वया चैव दिवाकर ।२४
यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता ।
तस्मान्मदीयं भवनं प्रविष्टुं न त्वमर्हसि ।२५
एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता ।
वडवा रूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता ।२६

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्राह्यता मम ।
अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर ! ।२७
रूपं तव करिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो !
तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम् ।२८

विवस्वान् ने इसके अनन्तर, संज्ञा के उन कर्मों के वैशिष्ट्य का ज्ञान प्राप्त किया तो वह त्वष्टा के समीप में आये और अत्यन्त रोष वाले होकर कहा था ।२६। हे त्रिलोकीनाथ ! इस पर त्वष्टा ने बहुत ही सान्त्वना पूर्वक उनसे निवेदन किया—हे भगवन्! यह विभावरी तुम को छिन्न-भिन्न तेज देखने वाले आपके इस तीव्र तेज को सहन न करती हुई बड़वा के रूप में समाश्रित होकर यहाँ मेरे समीप में समागत हुई थी। हे दिवाकर मैंने उसको निवारित किया था और आपने भी किया था ।२६-२७। क्योंकि वह अतिक्षमता के कारण से यहाँ पर मेरे समीप में आ गई थी। इस कारण से अब आप इस पर अवश्य ही क्रोध करने के योग्य नहीं होते हैं ।२४। मेरे द्वारा इस प्रकार से कही गयी वह अनिन्दिता यह देखने चली गयी थी और वह तपश्चर्या का कृत्य धारण करके ही इस भूतल में समवस्थित हो रही है ।२६। हे दिवाकर देव! यदि मैं आपके अनुग्रह का भागी हूँ तो अब आप मुझ पर अपने प्रसाद की वृष्टि कीजिए। अब मैं यन्त्र में करके आपके इस अद्भुतरूप तेजोमय का भी अपनयन कर दूँगा। निश्चय ही हे प्रभो ! आपका मैं अब स्वरूप ऐसा सुन्दर बना दूँगा जो लोकों के आनन्द करने वाला ही हो जायगा। इस प्रकार से कहे गये उनको रवि के द्वारा भ्रमि में दिवाकर को कर दिया था ।२८।

पृथक् चकार तत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत् ।
त्रिशूलञ्चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चाधिकम् ।२९
दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम् ।
रूपञ्चाप्रतिमञ्चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत् ।३०

न शशाकाथ तद्द्रष्टुं पादरूपं रविः पुनः ।
अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित्कारयेत् क्वचित् ।३१
यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम् ।
कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः ।३२
तस्मात्तु धर्मकामार्थी विजनेष्वापतनेषु च ।
न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः ।३३
ततः स भगवान् ! गत्वा भूर्लोकममराधिपः ।
कामयामास कामार्तो मुखतस्तु दिवाकरः ।३४
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः ।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला ।३५

उस भ्रमि के द्वारा उसका जो अपतेज था उसने पृथक् कर दिया था और उस पृथक्कृत तेज से भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र की रचना कर डाली थी। उस तेज से भगवान् रुद्र के त्रिशूल की और इन्द्रदेव के अधिक प्रभावशाली वज्र की रचना भी की गई थी ।२९। दैत्यों और दानवों के संहार करने वाले का एक सहस्र किरणों वाले स्वरूप से समन्वित अधिष्ठान रूप की रचना त्वष्टा ने करदी जो इतना महान् तेज से सहित था ।३०। फिर वह रवि अपने पादों के रूप को देखने में देवगण से भी असमर्थ हो गए थे। उसकी अर्चाओं में भी कोईभी कहीं पर उनके पादों की समर्चना न किया करे ।३१। यदि कोई सूर्य के पादों का समर्चन किया भी करता है तो वह परम निन्दित और घोर पापिष्ठ गति को प्राप्त हुआ करता है। ऐसा करने वाला पुरुष इस लोक में परम दुःख से संयुत होता हुआ कुष्ठ जैसे महान घोर रोगको प्राप्त किया करता है ।३२। इसी कारणसे जो कोई भी धर्म और काम का अर्थी हो उसे विजनों में तथा आपतनों में भी कहीं पर भी धीमान् के देवों के देव के पादों की रचना न करे और करावे ।३३। इसके पश्चात् वह भगवान् अमरों का अधिप भूर्लोक में गये थे और केवल

मुखकर्णों । दिवाकर ने कामार्त होकर कामना की थी ।३४। अश्व के रूप में युक्त और महान् तेज से समायुक्त थे । यह भी संज्ञा थी यह भी संज्ञा थी यह भय से अत्यन्त विह्वल होती हुई मन में अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हो गई थी ।३५।

नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शङ्कया ।
तद्रेतसस्ततो जातावश्विनाविति निश्चितम् ।३६
दस्रौ सुतत्वात्सञ्जातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः ।
ज्ञात्वा चिरेण तं देवं सन्तोषमगमत्परम् ।
विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता ।३७
सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः ।
शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः ।३८
यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः ।
विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालरूपेण व्यवस्थिता ।३९
मनोर्वैवस्वतस्यासन् दशपुत्रा महाबलाः ।
इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्यां समजायत ।४०
इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्णुरेव च ।
नरिष्यन्तः करूषश्च शर्यातिश्च महाबलः ।४१
अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः ।
जगाम तपसे भूयः स महेन्द्रवनालयम् ।४२

यह पर है इस शंका से नासा के पुटों से भी उत्सर्जन किया था किन्तु इसके अनन्तर उनके वीर्य से अश्विनीकुमार समुत्पन्न हुए थे—यह निश्चित है । नासिका के अग्र भाग से वे नासत्य दस्र पुत्र रूप में समुत्पन्न हुए थे । बहुत ही अधिक समय के पश्चात् यह जानकर देव को परम सन्तोष हुआ था । वह मुदान्वित होती हुई पति के ही साथ विमान के द्वारा स्वर्ग को गयी थी ।३६-३७। सावर्ण्य मनु भी अधिक तपोधन आज भी मेरु पर्वत में विद्यमान है । इसके अनन्तर वह शनि भी तपसे

वहाँ पर यमुना को पुनः प्राप्त हो गया था ।३८। यमुना और तापी ये दोनों फिर नदियाँ हो गई थीं । जो विष्टि थी वह परम घोर थी अशुभ रूप से अर्थात् भद्रा के रूप में व्यवस्थित हो गई थी ।३९। वैवस्वत मनु के महान् बल वाले दश पुत्र थे । उन दश पुत्रों में इल प्रथम पुत्र था जो पुत्रेष्टि में ही समुत्पन्न हुआ ।४०। इक्ष्वाकु कुशनाभ अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करूष, शर्याति जो महान् बलशाली था । पृषध्र–नाभाग ये उन पुत्रों के शुभ नाम हैं । ये सभी दिव्य मानुष थे । ।४१। परम धार्मिक उन मनु ने भी सबसे बड़ा इल नामक पुत्र उसका अभिषेक करके फिर अधिक तप के लिए महेन्द्र वनालय चला गया था ।४२।

अथ दिग्जयसिद्ध्यर्थमिलः प्रायान्महीमिमाम् ।
भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभृतः संप्रधर्षयन् ।४३
जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान् ।
कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्ना शरवणं महत् ।४४
रमते यत्र देवेशः शम्भुः सोमार्द्धशेखरः ।
उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः ।४५
पुन्नामसत्त्वं यत् किञ्चिदागमिष्यति ते वने ।
स्त्रीत्वमेष्यति तत्सर्वं दशयोजनमण्डले ।४६
अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा ।
स्त्रीत्वमाप विशन्नेव वडवात्वं हयस्तदा ।४७
पुरुषत्वे हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृप ।
इलेति साभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी ।४८
भ्रमन्ती च वने तस्मिन् चिन्तयामास भामिनी ।
को मे पिताऽथवा भ्राता का मे माता भवेदिह ।४९

इसके अनन्तर दिग् विजय करने की सिद्धि प्राप्त करने के लिए इल इस भू-मण्डल में चला गया था । समस्त भू-मण्डल के राजाओं को

सम्प्रचलित करते हुए उसने इस मही पर भ्रमण किया था ।४३। कल्याण वाले उसने अश्व के द्वारा समाकृष्ट होकर घूमते हुए भगवान् शम्भु के उपवन में जा पहुँचे थे । वह वन कल्पद्रुम और लताओं से समाकीर्ण था और महान् वन का नाम शरवण था ।४४। जिस वन में सोमार्द्ध को शेखरमें धारण करने वाले भगवान् शम्भु देवेश्वर उमादेवी के साथ रमण किया करते हैं । पहिले ही समय में यहाँ पर शरवण में समय (संकेत) कर लिया गया था ।४५। पुरुष संज्ञा वाला कोई भी जीव यदि मेरे इस वनमें समागत होगा तो वह उस दश योजनके मण्डल में तुरन्त ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा चाहे कोई भी हो यही के लिए यह प्रकार अवश्य होगा ।४६। यह राजा इस इस समय का ज्ञान ही नहीं रखता था । वह मूढ तथा अज्ञानमग्न उस शरवण नामक वन में पहुँच गया था और उसमें प्रवेश करते ही वह स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया था तथा जो इसकी सवारी का अश्व था वह भी वडवा (घोड़ी) हो गया था । हे नृप ! जब समस्त पुरुषत्व के लक्षण लुप्त हो गये थे तो इस राजाको बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था जब कि उसने अपने आपको एक स्त्रीके रूपमें पाया था । अब तो वह इल इला नाम वाली स्त्री हो गई थी जिसके पीन—उन्नत और परम उत्तम स्तन थे ।४७-४८। उसी वन में भ्रमण करते हुए उस कमल भामिनी ने विचार किया था कि ऐसी दशा में मेरा यहाँ कौन तो पिता है अथवा कौन भाई है और कौन मेरी माता ।४९।

११—सूर्यवंश वर्णन

अथान्विष्यन्तो राजानं भ्रातरस्तस्य मानवाः ।
इक्ष्वाकुप्रमुखा जग्मुस्तदा शरवणान्तिकम् ।१
ततस्तेऽदृशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम् ।
रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनुत्तमाम् ।२

पत्नीगणस्याभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः ।
अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजीऽस्य महात्मनः ॥३
अगमद्वडवा रूपमुत्तमं केन हेतुना ।
ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोहितम् ॥४
किमित्येतदभूच्चित्रं वद योगविदाम्वर !
वशिष्ठश्चाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद्ध्यानचक्षुषा ॥५
समयः शम्भुदयिताकृतः अरण्ये पुरा ।
यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति ॥६
अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद्राज्ञा सहैव तु ।
पुनः पुंस्त्वमवाप्नोति यथासौ धनदोपमः ॥७

श्री महर्षि सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर मनु के पुत्र मालव उस इल राजा के भार्या लोग जब उसको लौटने में बहुत अधिक समय हो गया तो उसकी खोज करते हुए इक्ष्वाकु सब उस अरण्य नामक वन को गए थे ।१। इसके अनन्तर जैसे ही वे उस वन के समीप तक ही पहुँचे थे कि उन्होंने अपने सामने स्थित बड़वा को देखा था जो रत्नों के पर्याण (रत्न जटित जीन) की किरणों से परम दीप्त शरीर वाली थी और अतीव उत्तम थी ।२। उसके पर्याण के प्रत्यभिज्ञान से वे सभी लोग अत्यन्त विस्मित हो गये । उन्होंने समझ लिया था कि यह तो उसी महात्मा इल राजा का चन्द्रप्रभ नाम वाला अश्व है ।३। किन्तु क्या हेतु हो गया है—जिससे इस बड़वा का ऐसा अत्युत्तम स्वरूप हो गया है । इसके पश्चात् मैत्रावरुणि अपने पुरोहित से इस विषय में पूछा था ।४। हे योग के ज्ञाताओं में परमश्रेष्ठ ! आप हमको यह बताइए कि यह एक विचित्र घटना क्या और कैसे हो गई है ? तब तो महर्षि वशिष्ठ जी ने ध्यान के नेत्रों से यह सम्पूर्ण घटना को देख लिया था और उनसे ये वचन बोले थे ।५। प्राचीन समय में भगवान् शम्भु की दयिता उमा देवी ने इस अरण्य वन में प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई

भी पुमान् इस शरवण वन में प्रवेश करेगा वह निश्चित रूप से स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा ।६। यह अश्व भी तो पुंस्त्व संज्ञा वाला था अत-एव यह राजा के साथ ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया है अर्थात् अश्व से बडवा बन गया है । यह जगत् के समान उपमा वाला पुनः पुरुषत्व को प्राप्त जिस तरह से होता है उसका उपाय करना होगा ।७।

तथैव यत्नः कर्तव्यस्त्वाराध्यैव पिनाकिनम् ।
ततस्ते मानवा जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः ॥८
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ ।
तावूचतुरलंघ्योऽयं समयः किन्तु साम्प्रतम् ॥९
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन यत्फलं स्यात्तदावयोः ।
दत्त्वा किम्पुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम् ॥१०
तथेत्युक्त्वा ततस्तेन्तु जग्मुर्वैवस्वतात्मजाः ।
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन चेलः किम्पुरुषोऽभवत् ॥११
मासमेकं पुमान्वीरः स्त्री च मासमभूत् पुनः ।
बुधस्य भवने तिष्ठन्निला गर्भधरोऽभवत् ॥१२
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् ।
बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वलोकमगमत्ततः ॥१३
इलस्य नाम्ना तद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा ।
सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभून्मनुनन्दनः ॥१४

इसी प्रकार का एक भगवान् पिनाकी की समाराधना करके यत्न करना चाहिए । इस प्रकार से इस वांछित कल्पना के हेतु श्रवण करके वे मानव मनु के पुत्र वहाँ पर पहुँचे थे जहाँ पर देवेश्वर शम्भु विराजमान थे ।८। उन सबने पहुँचकर पार्वती और परमेश्वर का अनेकों स्तोत्रों के द्वारा संस्तवन किया था । उन दोनों ने उनसे कहा था कि सब कुछ तुम्हारा निवेदन ठीक है किन्तु यह जो समय (प्रतिज्ञा) किया गया है

यह अब संयम करने के योग्य नहीं है ।९। इक्ष्वाकु के द्वारा किये गये अश्वमेध से जो भी फल होगा उसको हम दोनों को देकर यह वीर बिना ही किसी संशय के किम्पुरुष हो जायगा ।१०। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा । यह कहकर वे सब वैवस्वत मनु के पुत्र वहाँ से चल दिये थे । इक्ष्वाकु ने फिर अश्वमेध यज्ञ किया था और उससे यह इल किम्पुरुष हो गया था ।११। इसका भी यह परिणाम हुआ था कि यह एक मास तक तो नारी होकर रहा करता था और एक मास तक पुरुष बन कर जीवन बिताता था । जिस समय में यह बुध के भवन स्थित रहा था और नारी के रूप में था उसी समय में इल ने गर्भ धारण कर लिया था ।१२। फिर उसने अनेक सद्गुण गुण से समन्वित एक पुत्र को जन्म दिया था । बुध ने उस पुत्र को इसके उदर से समुत्पादित करके वह फिर स्वर्लोक को चले गये थे ।१३। उसी समय में इल के नाम से यह वर्ष इलावृत इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था । सोम और सूर्य के वंश में पहिले इल सबसे प्रथम मनु का पुत्र हुआ था ।१४।

एवं पुरूरवा: पुंस्त्रीत्वमथ लब्धवान् ।
इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधना: ॥१५
इल: किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते ।
पुन: पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥१६
उत्कलो वै गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्यवान् ।
उत्कलस्योत्कला नाम गयस्य तु गया मता: ॥१७
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वा विश्रुता कुरुभि: सह ।
प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ स पुरूरवसं सुतम् ॥१८
जगामेलावृतं भोक्तुं वर्षं दिव्यफलाशनम् ।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥१९
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूच्छुचो नाम महाबल: ।
नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम् ॥२०

धृष्टकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्यवान् ।
आनर्तो नाम शर्यातेः सुकन्या चैव दारिका ॥२१

इस प्रकार से पुरूरवा धीमान् के वंश का वर्णन करने वाला हुआ था। इसी भाँति सूर्य वंश की वृद्धि करने वाला तपोधन इक्ष्वाकु हुआ था ऐसा ही कहा गया है।१५। इल को किम्पुरुषत्व हो जाने पर सुद्युम्न इस नाम से कहा जाता है। इसके पश्चात् सुद्युम्न के तीन अपराजित पुत्र हुए थे।१६। उन तीनों के नाम उत्कल, गय और महान् वीर्यवान् हरिताश्व से थे। उत्कल की उत्कला नाम वाली-जन की गया पुरी मानी गयी है।१७। हरिताश्व की कुरुओं के साथ पूर्व दिक् विश्रुत हुई थी। इसने प्रतिष्ठान में पुरूरवा पुत्र का अभिषेक किया था। वह दिव्य वर्षों प्रमाण वाले इला कुल वर्ष का उपभोग करने के लिए चला गया था। ज्येष्ठ दायाद भी इक्ष्वाकु था उसने मध्य देश को प्राप्त किया था।१८-१९। नरिष्यन्त का पुत्र शक नाम वाला महान् बल वाला पुत्र प्रसूत हुआ था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था और धृष्ट के तीन पुत्र हुए थे।२०। इन तीनों के नाम धृष्टकेतु, चित्रनाथ और तीसरा वीर्यवान् रण धृष्ट ये थे। शर्याति का पुत्र आनर्त नाम वाला उत्पन्न हुआ था तथा सुकन्या नाम धारिणी एक पुत्री हुई थी।२१।

आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् ।
आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरी च कुशस्थली ॥२२
रोचमानस्य पुत्रोऽभूद्रेवो रैवत एव च ।
ककुद्मी चापरं नाम ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च ॥२३
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्य विश्रुता ।
करूषस्य तु कारूषा बहवः प्रथिता भुवि ॥२४
पृषध्रो गोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत ।
इक्ष्वाकुवंशं वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ! ॥२५
इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट् ।

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्दश पञ्चदश तत्सुताः ॥२६
मेरोरुत्तरतस्तेतु जाताः पार्थिवसत्तमाः ।
चतुर्दशोत्तरञ्चान्यत्तु तमस्य तथाभवत् ॥२७
मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्त्तिताः ।
ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाऽभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः ॥२८

आनर्त्त का पुत्र परम प्रताप वाला रोचमान हुआ था इस राजा के ही नाम से देश का नाम भी आनर्त्त हो गया था और इसकी नगरी का नाम कुशस्थली था ।२२। रोचमान का पुत्र देव रैवत हुआ था और ककुद्मी अपर नाम था जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा ज्येष्ठ था ।२३। उसकी रेवती नाम वाली कन्या समुत्पन्न हुई थी जो बलरामजी की परम प्रसिद्ध भार्या थी । कल्प के बहुत से ब्राह्मण नामधारी पुत्र भू-मण्डल में प्रसिद्ध हुये थे ।२४। गौ वध से पृषध्र समुत्पन्न हुआ था जो गुरु के शाप से शूद्र हो गया था । हे ऋषि वृन्दो ! अब मैं इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन करता हूँ उसका आप लोग श्रवण कीजिये ।२५। विकुक्षि नाम वाले देवराट् ने इक्ष्वाकु के पुत्र का स्थान प्राप्त किया था । यह सौ पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र था । इसके भी दस और पाँच अर्थात् पन्द्रह पुत्र हुये थे ।२६। ये सब मेरु की उत्तर दिशा में श्रेष्ठ पार्थिव हुये थे । चतुर्दश से उत्तर अन्य इसका वैसा ही विपुल हुआ था ।२७। मेरु के दक्षिण भाग में जो भी राजा लोग कीर्तित किये गये हैं उनमें ज्येष्ठ काकुत्स्थ हुआ था । उसका पुत्र सुयोधन नाम वाला था ।२८।

तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः ।
इन्दुस्तस्य च पुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत् ॥२९
श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत् ।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः ॥३०
श्रावस्ताद् बृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ।

धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुं नाम नाम सुतः पुरा ॥३१
तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान् ॥३२

दृढाश्वस्य प्रमोदश्च हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्संहताश्वस्ततोऽभवत् ॥३३
अकृताश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता च ततोऽभवत् ॥३४

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूद्धर्मसेनश्च पार्थिवः ।
मुचकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्च प्रतापवान् ॥३५

सुयोधन के पुत्र का नाम पृथु और पृथु का आत्मज विश्वग नामधारी था । उसके पुत्र का नाम इन्दु था और इन्दु का सुत युवनाश्व हुआ था ।२८। श्रावस्त महान् तेज वाला था । इसके पुत्र का नाम वत्सक था । हे द्विजगणो ! इसी ने गौड़ देश में श्रावस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था ।३०। श्रावस्त से बृहदश्व ने जन्म ग्रहण किया था और इसके पुत्र का नाम कुवलाश्व हुआ था । यह धुन्धुमारता को प्राप्त हो गया था क्योंकि पहले धुन्धु नामधारी का हनन किया था ।३१। इसके तीन पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । उनके नाम दृढाश्व और दण्ड थे तथा तीसरा कपिलाश्व था जो प्रताप वाला धौन्धुमारि नाम से विख्यात हुआ था ।३२। दृढाश्व का प्रमोद और प्रमोद का हर्यश्व पुत्र हुआ था । हर्यश्व का निकुम्भ पुत्र उत्पन्न हुआ था फिर उसका पुत्र संहताश्व पैदा हुआ था ।३३। संहताश्व के अकृताश्व और रणाश्व ये दो पुत्र हुए थे । रणाश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ तथा फिर इससे मान्धाता नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था ।३४। मान्धाता के पुत्र का नाम पुरुकुत्स था धर्मसेन पार्थिव भी हुआ था एवं मुचकुन्द परम विख्यात हुआ और प्रतापशाली शत्रुजित् भी हुआ था । ऐसे ये चार पुत्र हुये थे ।३५।

पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद्वसुदो नर्मदापतिः ।
सम्भूतिस्तस्य पुत्रोऽभूत्त्रिधन्वा तत्सुतोऽभवत् ॥३६
त्रिधन्वनः सुतो नाम्ना त्रय्यारुण इति स्मृतः ।
तस्मात्सत्यव्रतो नाम तस्मात्सत्यरथः स्मृतः ॥३७
तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्च रोहितः ।
रोहितात्तु वृको जातो वृकाद्बाहुश्च जायत ॥३८
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ।
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा ॥३९
ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया ।
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम् ॥४०
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा ।
गृह्णातु वंशकर्तारं प्रभाऽगृह्णाद्बहूंस्तथा ॥४१
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ।
ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवी प्रभा ॥४२

पुरुकुत्स का पुत्र वसुद हुआ था जो नर्मदापति था। इसका सुत सम्भूति था तथा सम्भूति से त्रिधन्वा ने जन्म ग्रहण किया था।३६। त्रिधन्वा के पुत्र का नाम त्रय्यारुण कहा गया है। इससे सत्यव्रत और सत्य व्रत के पुत्र का नाम सत्यरथ था।३७। इस सत्यरथ के ही पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र हुआ था। जिसका पुत्र रोहित हुआ था। रोहित से वृक का जन्म हुआ था और वृक के पुत्र का नाम बाहु था।३८। इस बाहु के पुत्र का नाम राजा सगर हुआ था जो परम धार्मिक महीपति हुआ है। इस महाराज सगर की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम प्रभा और दूसरी का नाम भानुमती था।३९। इन दोनों ही पत्नियों ने पहिले पुत्र प्राप्ति की कामना से और्व अग्नि की समाराधना की थी। और्व उनके समाराधन से परम सन्तुष्ट हो गया था और उसने उन दोनों को अभीष्ट उत्तम वरदान दे दिया था।४०। उनमें से एक जो साठ

हजार और दूसरी एक पुत्र करे जो वंश की वृद्धि करने वाला हो। उस समय में प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति को ही ग्रहण किया था।४०-४१। भानुमती नाम धारिणी सगर की भार्या ने एक सुत ही प्राप्त किया था जिसका नाम असमञ्जस था। इसके अनन्तर यादवी प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रों को प्रसूत किया था।४२।

खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे ।
असमञ्जसस्तु तनयोंऽशुमान्नामविश्रुतः ॥४३
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः ।
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता ॥४४
भगीरथस्य तनयो नाभाग इतिविश्रुतः ।
नाभागस्याम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥४५
तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूदृतुपर्णस्ततोऽभवत् ।
तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः ॥४६
तस्यानरण्यः पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत् ।
निघ्नपुत्रावुभौजातौ अनमित्ररघूनृपौ ॥४७
अनमित्रो वनमगाद्भविता स कृते नृपः ।
रघोरभूद् दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा ॥४८
दीर्घबाहुरजाज्जातस्त्वजपालस्ततो नृपः ।
तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥४९
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत् ।
रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः ॥५०

वे साठ हजार जस पुत्र हुये थे उन्होंने अश्वमेध के घोड़े की खोज करने में भूमि का खनन किया था और खनन करते हुये ही विष्णु के द्वारा वे दग्ध कर दिये गये थे। असमञ्जस का पुत्र अंशुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ था।४३। इसके पुत्र का नाम दिलीप था और दिलीप नाम-धारी राजा से ही भगीरथ ने जन्म प्राप्त किया था जिसने परमोग्र तपश्चर्या

करके भागीरथी गङ्गा का अवतरण कराया था ।४३। भागीरथ के पुत्र का नाम नाभाग था जो परम प्रसिद्ध हुआ था । नाभाग का पुत्र अम्ब-रीष और इसके पुत्र का नाम सिन्धु द्वीप हुआ था ।४४। सिन्धु द्वीप का पुत्र अयुतायु हुआ था और इसके पुत्र का नाम ऋतुपर्ण था । ऋतुपर्ण का कल्माषपाद और फिर इसका पुत्र सर्वकर्मा नामधारी हुआ था ।४५। सर्वकर्मा का अनरण्य हुआ और इसके पुत्र का नाम निघ्न हुआ था । इस निघ्न के दो पुत्रों ने प्रसव प्राप्त किया था एक का नाम अनमित्र था और दूसरा रघु नृप हुआ था ।४७। अनमित्र जो था वह वन में चला गया था अतः रघु ने ही राजशासन ग्रहण किया था । राजा रघु के पुत्र का नाम दिलीप हुआ था । इस दिलीप का पुत्र अज हुआ था ।४८। अज से दीर्घबाहु ने जन्म ग्रहण किया था और इसके अनन्तर अजपाल नृप हुआ था । इस अजपाल से महाराज दशरथ ने जन्म ग्रहण किया था फिर महाराज दशरथ के चार पुत्र हुये थे । ये चारों ही पुत्र नारायण स्वरूप थे जिनमें श्री रामचन्द्र सबसे बड़े पुत्र थे । यह रावण के अन्त करने वाले तथा रघुकुल के वंश की वृद्धि करने वाले हुये हैं । ।४९-५०।

वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ।
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ ॥५१
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।
नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत ॥५२
नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ।
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ॥५३

अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः ।
ततश्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत् ॥५४
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ।
श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारते यो निपातितः ॥५५

नलौ द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे ।
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिप: ॥५६
एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणा: ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवा: प्राधान्येन प्रकीर्तिता: ॥५७

महर्षि प्रवर वाल्मीकि ने जो आनंद खण्ड से उनके चरित का निर्माण ग्रन्थाकार में किया था । महाराज श्रीराम के पुत्र कुश और लव ये दो सुत थे जो इक्ष्वाकु कुल के वर्धन करने वाले हुए थे ।५१। कुश से अतिथि ने जन्म ग्रहण किया था और इसके आत्मज का नाम निषध हुआ था । इसी निषध से नैषध नल हुआ था और नल से नभ ने जन्म लिया था ।५२। नभ से पुण्डरीक पुत्र हुआ और इसके पश्चात् क्षेमधन्वा ने जन्म लिया था । इस क्षेमधन्वा का पुत्र वीर एवं प्रताप वाला देवानीक हुआ था ।५३। इसका पुत्र अहीन और इसके सुत का नाम सहस्राश्व हुआ था । इसके उपरान्त चन्द्रावलोक हुआ और फिर इसका सुत तारापीड समुत्पन्न हुआ था । इस तारापीड का सुत चन्द्रगिरि हुआ और चन्द्रगिरि से भानुचन्द्र ने जन्म ग्रहण किया था । इसके पुत्र का नाम श्रुतायु हुआ जो भारत में निपातित कर दिया गया था । कश्यप से समुत्पन्न वंश में दो ही नल विख्यात हुए हैं एक वीरसेन का सुत और उसी भाँति नराधिप नैषध प्रसिद्ध था ।५४-५५-५६। इस प्रकार से वैवस्वत के वंश में भूरि दक्षिणा वाले राजा लोग हुए थे । प्रधानतया ये सब राजागण इक्ष्वाकु वंश से उत्पन्न प्रकीर्तित हुए हैं ।५७।

१३—देवी के एक सौ आठ नाम

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पितृणां वंशमुत्तमम् ।
रवेश्च श्राद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः ॥१

हन्त ते कथयिष्यामि पितृणां वंशमुत्तमम् ।
स्वर्गे पितृगणाः सप्त त्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥२

मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः ।
अमूर्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ॥३

यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः ।
दिवि ते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान् ॥४
पुनर्ब्रह्मदिनान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः ।
संप्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम् ॥५
सिद्धिं प्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।
योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः ॥६

एतेषां मानसी कन्या पत्नी हिमवतो मता ।
मैनाकस्तस्य दायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत् ॥७

मनु महाराज ने कहा—हे भगवन् ! अब मैं पितृगण के उत्तम वंश का श्रवण करना चाहता हूँ । रवि का और विशेष रूप से सोम का श्राद्ध देवत्व श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न होती है ।१। मत्स्य भगवान् ने कहा—बहुत ही प्रसन्नता का विषय है । अब हम पितृगण के उत्तम वंश का ही वर्णन करेंगे । स्वर्ग में सात पितृगण हैं उनमें से तीन अमूर्त स्वरूप हैं ।२। इन सबमें अपरिमित ओज वाले चार पितृगण मूर्तिमान् हैं । जो मूर्ति रहित पितृगण हैं । वे प्रजापति वैराज के हैं ।३। देवगण जिनका यजन किया करते हैं वे वैराज इस नाम से विख्यात हैं । वे दिव लोक में योग से विभ्रष्ट होते हुए सनातन लोकों की प्राप्ति किया करते हैं ।४। पुनः वे ब्रह्म वेलाओं में ब्रह्म वादी होकर ही जन्म

ग्रहण किया करते हैं। वे फिर उत्तम सांख्य और योग को तथा स्मृति को प्राप्त कर लिया करते हैं।५। योग के द्वारा पुनः आवृत्ति करने में अत्यन्त दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। अतएव श्राद्धों के द्वारा योगियों को ही श्राद्ध देने चाहिए।६। इनकी जो मानसी कन्या हिमवान् की पत्नी मानी गयी है। उसका दायाद मैनाक पर्वत है और क्रौञ्च उसके उदर से प्रथम सुत समुत्पन्न हुआ है।७।

क्रौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंवृतः ।
मेनाचसुषुवेतिस्रः कन्यायोगवतीस्ततः ॥८
उमैकपर्णापर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः ।
रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्य चापरा ॥९
दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः ।
कस्माद्दाक्षायणी पूर्वं ददाहात्मानमात्मना ॥१०
हिमवद्दुहिता राजन् कथं जाता महीतले ।
संहरन्ती किमुक्तासौ सुता या ब्रह्मसूनुना ॥११
दक्षेण लोकजननी सूत ! विस्तरतो वद ।
दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे ॥१२
समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती ।
किमर्थं तात ! भर्तामि यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः ॥१३
अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत ।
उपसंहारकृद्रुद्रस्तेनामंगलभागयम् ॥१४

इसी क्रौञ्च के नाम से क्रौञ्चद्वीप कहा गया है। चतुर्थ घृत संवृत था। मेना में तीनों का प्रसव हुआ था फिर योगवती कन्या हुई।८। उमा—एकपर्ण-पूर्णा ये कन्याएँ थीं जो परम तीव्रव्रत में परायण थीं। एक रुद्र को, एक सित को और दूसरी जैगीषव्य के लिए हिमवान् ने प्रदान की थी। सभी बालाएँ लोक में अधिक तपस्या वाली हुई थीं। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! यह बतलाइये की दक्ष की पुत्री दाक्षायणी

सती ने किस कारण से अपने ही आप स्वयं अपने को दग्ध कर दिया था ।९-१०। फिर इस महीतल में उसी भाँति वह हिमवान् की दुहिता कैसे और क्यों उत्पन्न हो गयी थी । संहार करती हुई इस सुता से ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने क्या कहा था जो कि समस्त लोकों की जननी थी । हे सूत जी ! आप कथा को कृपया कुछ विस्तार के साथ बतलाइये । सूतजी ने कहा—प्रजापति दक्ष यज्ञ विस्तृत रूप में फैला हुआ चल रहा था और वह यज्ञ ऐसा था जिसमें प्रचुर मात्रा में श्रेष्ठ दक्षिणाएँ दी गई थीं ।११-१२। जिस समय में समस्त देवगण यथाहूत किये गये थे और पश्चात् शम्भु को आमन्त्रित नहीं किया था तो यह देखकर सहन न करते हुए सती ने अपने पिता से कहा था—हे तात ! आपने किस कारण से केवल मेरे ही स्वामी को इस महान् विशाल यज्ञ में निमन्त्रित नहीं किया है ? उस समय में दक्ष ने उस तपस्विनी को यही उत्तर देते हुए कहा था कि यह शूलपाणि यज्ञों में सम्मिलित होने की योग्यता ही नहीं रखते हैं अतः अयोग्य हैं क्योंकि वह रुद्र तो संसार का उपसंहार करने वाला है इसीलिए वह अयज्ञभागी है ।१३-१४।

चुकोपाथ सती देहं त्यक्ष्यामीति त्वदुद्भवम् ।
दशानामन्वये त्वं भविता पितृणामेकपुत्रकः ॥१५
क्षत्रियस्तेऽश्वमेधे च रुद्रात्त्वं नाशमेष्यसि ।
इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहोद्भूततेजसा ॥१६
निर्दहन्ती समारम्भं सर्वेषामुपशृण्वताम् ।
किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः ॥१७
उपगम्याथ योऽद्रीशः प्रणिपत्याथ दुःखितः ।
त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्य देवता ॥१८
दुहितृत्वं गता देवि ममानुग्रहकाम्यया ।
न त्वया रहितं किञ्चिद् ब्रह्माण्डेऽस्मिन्चराचरम् ॥१९
प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मां त्यक्तुमिहार्हसि ।

प्राह देवी यदारब्धं तद्कार्यं मे न संशयः ॥२०
किं त्ववश्यं त्वया मर्त्ये हुतयज्ञेन शूलिना ।
प्रसादनीयः सृष्ट्यर्थं तपः कार्यं ममान्तिके ॥२१

यह कथन करने के अनन्तर ही सती अत्यन्त कुपित हो गई थी और उसने कह दिया था कि तुमसे समुत्पन्न मैं इस देह का भी अब त्याग कर दूँगी । और तू सदा त्रिशूली का एक शत्रु बना हो जायगा ।१५। इस अभिवन्द्य वाले अन्य मेघ में ही तुम सब से ही नाश को प्राप्त हो जाओगे । बस, इतना ही कह कर सती योग में समाविष्ट हो गई थी । उसके देह से ही एक प्रकार के तेज का उद्भव हुआ था ।१६। उसी तेज ने उस समय में सती ने भस्म दाह कर दिया था । निर्दहन करती हुई उससे देव, असुर, किन्नर गन्धर्वगण और गुह्यक सभी ने जोरों से ही कहा था—यह क्या हो रहा है' ।१७। फिर तो दक्ष का स्वयं उस सती के समीप में आकर उपस्थित हुआ था और प्रणिपात करके सती से कहा था—आप तो सम्पूर्ण जगत् की माता हैं और जगत् के सौभाग्य की देवता हैं ।१८। हे देवि ! मेरे ऊपर अनुग्रह करने की ही कामना से आप मेरी पुत्री होने को स्वीकार किया था और दुहिता बन गयी थीं । आपसे रहित इस महाण्ड में चराचर कुछ भी नहीं है ।१९। हे धर्मज्ञ ! अब प्रसाद (प्रसन्नता) कीजिये और मेरा त्याग करने के योग्य आप नहीं बनिये । इस पर देवी ने कहा था कि जो मैंने आरम्भ कर दिया है वह मुझे करना ही है क्योंकि यह परम कर्तव्य ही हो गया है - इसमें कुछ भी संशय शेष नहीं है ।२०। किन्तु अब यह परमावश्यक ही है कि जब भगवान् शूली के द्वारा तेरा यह यज्ञ विध्वंस हो ही जायगा तब उनके प्रसाद प्राप्त करने के लिए लोकों की सृष्टि के वास्ते मर्त्य लोक में मेरे ही समीप में तप करना चाहिये ।२१।

प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्गजोऽप्यलम् ।
मदंशेनाङ्गनापत्रि भविष्यन्त्याङ्गजास्तव ॥२२

मत्सन्निधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसे योगमुत्तमम् ।
एवमुक्तोऽसनीकृशस: केषुकेषु मयाऽनघे ॥२३
तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या केन नामभिः ।
सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि ॥२४
सर्वलोकेषु यत्किञ्चिद्विहितं न मया विना ।
तथापि येषु स्थानेषु द्रष्टव्या सिद्धिमीप्सुभिः ॥२५
स्मर्तव्या भूतिकामैर्वा तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ।
वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी ॥२६
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने ।
मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथाम्बरे ॥२७
गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी ।
मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ॥२८

वर्षों का अन्त तक भी तुम समर्थ प्रजापति होओगे और मेरे अंश से माल अंगनाएँ होंगी तथा तुम्हारे मंगल होंगे ।२२। मेरी सन्निधि में तपश्चर्या करते हुए उत्तम योग की प्राप्ति करोगे । जब इस प्रकार से जगदम्बा ने कहा था तो वह दक्ष देवी से बोला—हे अनघे ! मुझे आपके किन-२ तीर्थों में दर्शन होंगे और किन-२ नामों से आपकी स्तुति करनी चाहिये ? ।२३। देवी ने कहा—इस भूमण्डल में सर्वदा सभी ओर समस्त प्राणियों में मेरा दर्शन करना चाहिये ।२४। समस्त लोकों में मेरे बिना कुछ भी रहित पदार्थ या प्राणी नहीं है । तो भी सिद्धि की इच्छा रखने वालों के द्वारा जिन स्थानों में मेरा दर्शन करना चाहिये तथा भूति की कामना रखने वालों को मेरा स्मरण करना चाहिये उन नामों को मैं अब तत्त्व से बतला देती हूँ । यहाँ से ही देवी अष्टोत्तर शत नामों का आरम्भ होता है वाराणसी में मेरा विशालाक्षी नाम लेकर स्मरण तथा स्तवन करना चाहिये । नैमिष क्षेत्र में मेरा लिंगधारिणी नाम प्रसिद्ध है ।२५-२६। प्रयाग में ललिता देवी और

गन्ध मादन में कामुकी देवी है। मानस में मेरा कुमुदा नाम है तथा अम्बर में विश्वकाया नाम है।२७। गोमन्त में गोमती नाम है और मन्दर में मेरा कामचारिणी यह शुभ नाम स्मरण के योग्य है। चैत्ररथ में मदोत्कटा तथा हस्तिनापुर में मेरा जयन्ती नाम लेकर ही स्तवन करे।२८।

कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते।
एकाम्रके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरे विदुः ॥२९
पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी।
नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥३०
स्थानेश्वरे भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका।
श्रीशैले माधवी नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा ॥३१
जया वराहशैले तु कमला कमलालये।
रुद्रकोट्यां च रुद्राणी काली कालञ्जरे गिरौ ॥३२
महालिंगे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी।
शालिग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया ॥३३
मायापुर्यां कुमारी तु सन्ताने ललिता तथा।
उत्पलाक्षी सहस्राक्षे कमलाक्षे महोत्पला ॥३४
गंगायां मंगला नाम विमला पुरुषोत्तमे।
विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्द्धने ॥३५

कान्य कुब्ज देश में गौरी-मलय पर्वत में रम्भा—एकाम्रक में कीर्तिमती तथा विश्वेश्वर क्षेत्र में मेरा विश्वा नाम ही लिया जाता है।२९। पुष्कर में पुरुहूता—केदार क्षेत्र मार्गदायिनी-हिमाचल पर्वत के पृष्ठ पर नन्दा नाम तथा गोकर्ण में भद्र कर्णिका कहकर मुझे याद किया जाता है।३०। स्थानेश्वर में मेरा भवानी नाम है तथा बिल्वक में मेरा बिल्व पत्रिका नाम लेकर स्मरण या स्तवन किया जाता है। श्रीशैल में मेरा माधवी नाम है तथा भद्रेश्वर में भद्रा नाम से मेरा

स्मरण किया जाता है।३१। वराह शैल में जया नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है और कमलालय में मेरा ही नाम कमला है। रुद्रकोटि में रुद्राणी कहकर मुझे पुकारते हैं तथा कालञ्जर गिरि में मेरा ही नाम काली कहलाता है।३२। महालिंग में मेरा कपिला नाम कहा जाता है और मकोट में मुकुटेश्वरी मेरा शुभ नाम है। शालिग्राम में महादेवी तथा शिवलिङ्ग में मेरा ही नाम जलप्रिया है।३३। मायापुरी में कुमारी मेरा नाम है तथा सन्तान में ललिता कही जाती हूँ। सह-स्राक्ष में उत्पलाक्षी तथा हिरण्याक्ष में मुझे ही महोत्पला कहा जाता है।३४। गया में मंगला नाम प्रसिद्ध है तथा पुरुषोत्तम में मेरा ही नाम विमला देवी है। विपाशा में मुझे अमोघाक्षी कहा जाता है और पुण्ड्रवर्धन में मुझे पाटला कह पुकारते हैं।३५।

नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुन्दरी।
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले॥३६
कोटवी कोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।
कुब्जाम्रके त्रिसन्ध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया॥३७
शिवकुण्डे सुनन्दा तु नन्दिनी देविकातटे।
रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने॥३८
देवकी मथुरायान्तु पाताले परमेश्वरी।
चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी॥३९
सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका।
रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती॥४०
करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।
अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥४१
अभयेत्युष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे।
माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरे पुरे॥४२

सुपार्श्व में मेरा नाम नारायणी देवी है और त्रिकूट में भद्रसुन्दरी

मुझे ही कहते हैं। विपुल में मेरा विपुलेश्वरी नाम है तथा मलयाचल में कल्याणी नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है।३६। कोटि तीर्थ में कोटवी मेरा शुभ नाम है एवं माधव वन में सुगन्धा मुझे ही कहा जाता है। कुब्जाम्रक स्थल में त्रिसन्ध्या मुझे कहते हैं और गंगा द्वार में रति प्रिया कहकर मेरा ही स्मरण किया जाता है।३७। शिव कुण्ड में शुभनन्दा—देविका तट में नन्दिनी-द्वारावतीपुरी में रुक्मणी और वृन्दावन में मेरा ही नाम राधा है।३८। मथुरा पुरी में देवकी—पाताल में परमेश्वरी-चित्रकूट में सीतादेवी तथा विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी देवी मुझे कहा करते हैं।३९। सह्याद्रि में एकवीरा-हरिश्चन्द्र में चन्द्रिका मेरा ही शुभ नाम है। रामतीर्थ में रमणा और यमुना में मृगावती मुझे कहा करते हैं।४०। करवीर में मुझे ही महालक्ष्मी पुकारा जाता है तथा विनायक में उमादेवी मेरा नाम विख्यात है। वैद्यनाथ में मुझे आरोग्या कहा जाता है और महाकाल स्थान में महेश्वरी मेरा ही नाम है।४१। उष्ण तीर्थों में मुझे अभया और विन्ध्य के कन्दरा में अमृता मुझे ही कहा करते हैं। माण्डव्य में मेरा माण्डवी नाम लेकर स्मरण किया जाता है तथा माहेश्वर पुर में मुझे स्वाहा कहा करते हैं।४२।

छागलण्डे प्रचण्डा तु चण्डिका मकरन्दके ।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥४३
देवमाता सरस्वत्यां पारा पारातटे मता ।
महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥४४
सिंहिका कृतशौचेतु कार्तिकेये यशस्करी ।
उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे ॥४५
माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे ।
जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते ॥४६
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले ।

भीमा देवी हिमाद्रौ तु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा ।४७

कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ।

शङ्खोद्धारे ध्वनिर्नाम धृतिः पिण्डारके तथा ।४८

काला तु चन्द्रभागायां अच्छोदे शिवकारिणी ।

वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ।४९

विभिन्न स्थलों में विभिन्न नामों का स्मरण कर मेरी ही समाराधना की जाया करती है-छागलाण्ड में प्रचण्डा-अमरकण्टक में चण्डिका, सोमेश्वर में वरारोहा और प्रभास में पुष्करावती मेरा नाम लिया जाता है ।४३। सरस्वती के क्षेत्र में मुझे देव माता कहा जाता है और पारावार-तट में मेरा ही नाम पारा है । महालय में मुझे महाभागा कहते हैं तथा पयोष्णी में मुझे पिङ्गलेश्वरी देवी कहकर मेरा स्मरण किया जाता है ।४४। कृतशौच में सिंहिका मेरा शुभ नाम है और कार्तिकेय में मुझे ही यशस्करी कहा जाता है । उत्पलावर्तक स्थान में मेरा ही लोला नाम लिया जाता है । सोण के सङ्गम क्षेत्र में सुभद्रा नाम का स्मरण किया जाता है ।४५। सिद्धपुर में मेरा माता नाम लिया जाता है तथा भरताश्रममें अनङ्गा कहते हैं । जालन्धरमें मुझे ही विश्वमुखी इस पवित्र नाम से याद किया करते हैं तथा किष्किन्धा पर्वत में तारा देवी कहकर मेरी उपासना करते हैं ।४६। देवदारु वन में पुष्टि-मेरा नाम लिया जाता है और काश्मीर मण्डल में मेधा के नाम से मैं ही पुकारी जाया करती हूँ । हिमाद्रि में मेराही नाम भीमा कहा जाया करता है तथा विश्वेश्वर क्षेत्र में पुष्टि नाम है ।४७। कपाल मोचन में शुद्धि और कायावरोहण में माता कही जाती हूँ । शंखोद्धारमें ध्वनि नाम स्मरण किया जाता है और पिण्डारक में धृति मेरा नाम याद करते हैं ।४८। चन्द्रभागा के तट में काला तथा अच्छोद में शिवकारिणी मेरा नाम है । वेणा में अमृता कही जाती हूँ तथा बदरी में उर्वशी कहते हैं ।४९।

औषधी चौलरकुटौ कुशद्वीपे कुशोदका ।
मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी ॥५०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ।
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ ॥५१
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती ।
सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवी मता ॥५२
अरुन्धती सतीनान्तु रामासु च तिलोत्तमा ।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥५३
एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ।
अष्टोत्तरञ्च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ॥५४
यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्यति मां नरः ॥५५
सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत् ।
यस्तु मत्परमं कालं करोत्येतेषु मानवः ॥५६
स भित्त्वा ब्रह्मसदनं पदमभ्येति शाङ्करम् ।
नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥५७
तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः ।
गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः ॥५८
देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति ।
एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ॥५९

उत्तर कुरु प्रान्त में औषधी—कुशद्वीप में कुशोदका—हेमकूट में मन्मथा और मुकुट में सत्यवादिनी मेरा नाम लिया जाता है ॥५०। अश्वत्थ में वन्दनीया वैश्रवण के आलय में निधि—वेद वदन में गायत्री तथा भगवान् शिव की सन्निधि में मुझे पार्वती कहते हैं ॥५१। देवलोक में जो इन्द्राणी कही जाती है वह भी मैं ही हूँ और पितामह ब्रह्माजी के मुख में सरस्वती भी मैं हूँ। सूर्य के बिम्ब में प्रभा मेरा ही नाम एवं

स्वरूप हूँ तथा मातृगण में वैष्णवी मैं ही कही जाती हूँ ।५२। समस्त सती नारियों में अरुन्धती मेरा ही स्वरूप है। सम्पूर्ण रामाओं में तिलोत्तमा मैं ही हूँ। चित्त में ब्रह्मकला मेरा स्वरूप है तथा समस्त शरीर धारियों में शक्ति मुझे ही समझना चाहिये ।५३। यह अष्टोत्तर शत उत्तम नामावली इसी उद्देश्य से कही गयी है कि यह इसी बहाने से अष्टोत्तर शत तीर्थों के शुभ नाम भी बता दिये गये हैं ।५४। जो इस स्तोत्र का स्मरण करे या श्रवण करे वह सभी पापोंसे प्रमुक्त हो जाया करता है। ये जो उक्त तीर्थ बताए गये हैं इनमें जो भी कोई स्नान करके मेरे दर्शन किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से विमुक्त होकर एक कल्प पर्यन्त शिवपुर में निवास किया करता है और जो मनुष्य उनमें पूरे समय को मेरे ही समाराधन में लगा दिया करता है वह तो फिर ब्रह्मपद का भी भेदन करके अक्षर पद को प्राप्त किया करता है जो इन अष्टोत्तर शत नामों को भगवान शिव की सन्निधि में स्थित होकर भगवान् को श्रवण कराया करता है और यह भी तृतीया में या अष्टमी तिथि में श्रवण कराता है तो वह मनुष्य बहुपुत्र ही हो जाता है। गोदानमें अथवा श्राद्ध दानमें जो बुध नित्य प्रतिदिन देवार्चन विधि में विद्वान् इसका पाठ करता है वह ब्रह्म को अधिगत हो जाता है। इस प्रकार वह जगदम्बा दक्ष के यज्ञ मण्डप में कहती हुई श्री अपने ही अपने ही आप अपने तेज से उस देवीने अपने शरीर का दाह कर लिया था ।५५-५९।

इत्यथस्मृत्वोऽपिकालेनदक्षः प्राचेतसोऽभवत् ।
पार्वतीसाभवद्देवी शिवदेहार्द्धधारिणी ।६०
मेनागर्भसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
अरुन्धती जपन्त्येतत् प्राप योगमनुत्तमम् ।६१
पुरूरवाश्च राजर्षिर्लोकेष्वजयतामगात् ।
ययातिः पुत्रलाभञ्च धनलाभञ्च भार्गवः ।६२
तथान्यैर्देवदैत्याश्च ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।

वैश्याःशूद्राश्चबहुवः सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम् ।६३
यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते देवसन्निधौ ।
न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते ।६४

समय आने पर स्वायम्भुव भी शान्तिमय हो गया था। वह देवी पार्वती हुई थी जो भगवान् शिवके अर्ध शरीर के धारण करनेवाली थी ।६०। वह फिर मेना के गर्भ से समुत्पन्न हुई थी और भक्ति तथा मुक्ति दोनों ही के प्रदान करने वाली थी। इसका जप करती हुई अरुन्धती ने सर्वोत्तम योग को प्राप्त कर लिया था।६१। पुरूरवा नाम वाले राजर्षि ने लोकों विजय की प्राप्ति की थी। राजा ययाति ने पुत्र का लाभ लिया था और भार्गवने धनका लाभ प्राप्त किया था ।६२। इसी भाँति अन्य भी बहुत से देवगण, दैत्य वर्ग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि ने भी इसी के समाराधन से यथेष्ट सिद्धि को प्राप्त किया था। ।६३। यह देवी का अष्टोत्तर शत नामक स्तोत्र जहाँ पर लिखित रूपमें स्थित रहता है और देव की सन्निधि में इसकी अर्चा की जाय। क्योंकि वहाँ पर कभी भी किसी भी प्रकार का शोक एवं कैसी भी दुर्गति कभी भी नहीं हुआ करती है ।६४।

१५—पितृ वंश कीर्तन

विभ्राजानाम चान्येतु दिविसन्ति सुवर्चसः ।
लोकाबर्हिषदोयत्र पितरः सन्निषुसताः ।१
यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रशः ।
संकल्प्य बर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः ।२
यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः ।
यांश्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसांगणाः ।३

यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः ।
पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः ।४
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः ।
एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता ।५
योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम् ।
प्रसन्नो भगवांस्तस्या वरं वव्रे तु सा हरेः ।६
योगवन्तं सुरूपञ्च भर्तारं विजितेन्द्रियम् ।
देहि देव ! प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदतांवरम् ।७

सूतजी ने कहा—दिव लोक में विभ्राज नाम वाले अन्य भी सुवर्चस हैं जहाँ पर सुभग बर्हिषद पितृलोक है ।१। वहाँ पर बर्हिण युक्त सहस्रों विमान हैं और जहाँ संकल्प करके वांछित फलों के प्रदान करने वाले शाश्वत रहा करते हैं ।२। वहाँ पर अभ्युदय शालाओं में आह्लाद देने वाले परम मोद में समन्वित होकर रहा करते हैं और जिनका भजन देवासुरगण तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओं का समूह भी किया करता है ।३। यक्ष और राक्षसों के गण भी तथा दिवलोक में देवता भी जिन का यजनार्चन किया करते हैं । सैकड़ों ही पुलस्त्य मुनि के पुत्र जो तप और योग से भी समन्वित हैं महान् आत्मा वाले महान् भाग्य वाले और भक्तों को अभयदान देने वाले हैं । इनकी पीवरी मानसी कन्या दिवलोक में विश्रुत है ।४-५। वह योगिनी और योगमाता थी जिसने परम दारुण तपस्या की थी । उस पर जब भगवान् प्रसन्न हुए और उससे वरदान की याचना करने को कहा गया तो उसने हरि से यही वरदान माँगा था ।६। उसने कहा—हे देव ! आप कृपा कर योग वाला—रूप लावण्य से समन्वित—इन्द्रियों को जीतने वाला, बोलने वालों में परमश्रेष्ठ पति भरण करने वाला प्रदान कीजिये यदि आप मेरी तपश्चर्या से परम प्रसन्न हो गये हैं ।७।

उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः ।

भविता तस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रते ।८
भविष्यन्ति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी ।
पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुषस्य त्वया तदा ।९
जननी ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धा च गौःस्मृता ।
कृष्णोगौरःप्रभुःशम्भुर्भविष्यन्तिचतेसुताः ।१०
महात्मानोमहाभागागमिष्यन्ति परम्पदम् ।
तानुत्पाद्य पुनर्योगात्स्वयं मोक्षमेष्यसि ।११
अमूर्त्तिमन्तः पितरो वसिष्ठस्य सुताः स्मृताः ।
नाम्ना तु मानसाः सर्वे सर्वे ते धर्ममूर्त्तयः ।१२
ज्योतिर्भासिषु लोकेषु ये वसन्ति दिवः परम् ।
विराजमानाःक्रीडन्ति यत्रेश्राद्धदायिनः ।१३
सर्वकामसमृद्धेषु विमानेष्वपिपादजाः ।
किं पुनः श्राद्धदा विप्राभक्तिमन्तःक्रियान्विताः ।१४

भगवान् ने कहा—जिस समय में कृष्ण द्वैपायन व्यास जी का शुकदेव नामक पुत्र समुत्पन्न होगा तब उसकी तुम भार्या होओगी। हे सुव्रते ! वह योग के परम प्रमुख आचार्य ही होंगे ।८। उस समय में कृत्वी नाम धारिणी योगिनी कन्या तेरी उत्पन्न होगी। उस कन्या को तुम्हें पाञ्चाल देश के अधिपति मनुष्य को ही प्रदान करनी होगी ।९। ब्रह्मदत्त को जन्म देने वाली और योगसिद्धा गौ कही गयी है। उस समय में कृष्ण-गौर-प्रभु और शम्भु तेरे पुत्र समुत्पन्न होंगे ।१०। महान् आत्मा वाले महाभाग परम पद को गमन करेंगे। उनका समुत्पादन करके पुनः योग से वर सहित मोक्ष को प्राप्त करोगी ।११। महामुनीन्द्र वशिष्ठ के पुत्र मूर्तिमान् पितर कहे गये हैं। नाम से तो वे सभी मानस पुत्र थे किन्तु वे सभी धर्ममूर्ति थे ।१२। दिवलोक से भी पर ज्योतिर्भासी लोकों में जो निवास किया करते हैं वहाँ पर वे श्राद्ध देने वाले विराजमान होते हुए आनन्द की क्रीड़ा किया करते हैं. सर्व कामों से

समृद्ध विमानों में भी वास है। उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे जो शक्तिमान् और क्रिया में समन्वित श्राद्ध देने वाले द्विज होते हैं।१३-१४।

गौर्नाम कन्या येषान्तु मानसी दिवि राजते ।
शुक्रस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्त्तिवर्द्धिनी ॥१५
मरीचिगर्भनामानो लोका मार्त्तण्डमण्डले ।
पितरो यत्र तिष्ठन्ति हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥१६
तीर्थश्राद्धप्रदा यान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः ।
राज्ञान्तु पितरस्ते वै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ॥१७
एतेषां मानसी कन्या यशोदा लोकविश्रुता ।
पत्नी ह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पञ्चजनस्य च ॥१८
जननी च दिलीपस्य भगीरथपितामही ।
लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः ॥१९
सुस्वधा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः ।
आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः ॥२०
पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान् भावयन्ति च ।
यत्र श्राद्धकृताः सर्वे पश्यन्ति युगपद्गताः ॥२१

जिनकी गौ नाम वाली मानसी कन्या दिवलोक में विराजमान है वह शुक्र मुनि की दयिता पत्नी है और साध्यों की कीर्ति का वर्धन करने वाली है।१५। मार्त्तण्ड मण्डल में मरीचिगर्भ नाम से शुभलोक हैं पितर वहाँ पर अङ्गिरा के पुत्र हवि देते हुए स्थित रहा करते, वहाँ पर तीर्थों में श्राद्ध देने वाले क्षत्रिय श्रेष्ठ जाया करते हैं। वे पितरगण राजाओं को स्वर्ग एवं मोक्ष के फल प्रदान करने वाले होते हैं।१६। ।१७। इनकी मानसी कन्या जो है वह यशोदा के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। वह अंशुमान् की श्रेष्ठ पत्नी थी और पञ्चजन की स्नुषा थी।१८। वह राजा दिलीप को जन्म देने वाली माता थी तथा भगीरथ राजा की पितामही थी। लोक कामों के दोहन करने वाले कामदुघ थे जो

काम और भोग के फल देने वाले हैं।१९। मूर्त्त रूप वाले सुस्वधा नाम वाले पितृगण जहाँ पर अवस्थित रहा करते हैं वे प्रजापति कर्दम के लोकों में आज्यपा नाम वाले हैं।२०। वे पुलहाङ्गज के दायाद हैं और उनमें वैश्यगण ही भक्ति की भावना रखा करते हैं। जहाँ पर सब धातुओं के कल्प वाले एक साथ बने हुए देखा करते हैं।२१।

मातृभ्रातृपितृस्वसृ सखिसम्बन्धिबान्धवान् ।
अपिजन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ।२२
एतेषां मानसी कन्या विरजानाम विश्रुता ।
या पत्नीनहुषस्यासीद्ययातेर्जननी तथा ।२३

एकाष्टकाऽभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती ।
त्रय एतेगणाःप्रोक्ताश्चतुर्थन्तुवदाम्यतः ।२४
लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थिताः ।
येषान्तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता ।२५
सोमपानामपितरोयत्रतिष्ठन्तिशाश्वताः ।
कृत्वासृष्ट्यादिकंसर्वं मानसेसाम्प्रतंस्थिताः ।२६
नर्मदानाम तेषान्तु कन्यातोयवहासरित् ।
भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी ।२७

तेभ्यःसर्वे तु मनवःप्रजाःसर्गेषु निर्मिताः ।
ज्ञात्वाश्राद्धानि कुर्वन्तिधर्माभावेऽपिसर्वदा ।२८
तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद्योगसन्ततिम् ।
पितृणामादिसर्गं तु श्राद्धमेवविनिर्मितम् ।२९

वहाँ पर वे उन सबका दर्शन प्राप्त किया करते हैं जिनको दस सहस्र जन्मों में भी कभी देखा था और सहस्रों की संख्या में उनका कुछ भी अनुभव नहीं है। उनमें माता-पिता-भ्राता-भगिनी-सखा—सम्बन्धी और बान्धव ये सभी होते हैं।२२। इनकी मानसी कन्या विरजा नाम से विश्रुत है जो राजा नहुष की पत्नी हुई थी तथा राजा ययाति

की कन्या थी ।२३। पीछे ब्रह्मलोक में गयी हुई यह सती एकाष्टका हो गई थी। ये तीन गण भी इनमें त्रिवर्गों के आप लोगों को बतला दिये हैं। अब आगे चातुर्वर्ण्य बतलाते हैं।२४। जो मानस लोक हैं वे सब ब्रह्माण्ड के ऊपर संस्थित हैं। जिनकी मानसी कन्या नर्मदा-इस नाम से विश्रुत है।२५। वहाँ पर सोमप नाम वाले शाश्वत पितृगण स्थित रहा करते हैं सृष्टि आदि सब कुछ करके इस समय में मानस में ही संस्थित हैं।२६। उनकी नर्मदा नाम धारिणी कन्या जोकि वहाँ सरित् है जो दक्षिण पथ का गमन करने वाली भूतों का पावन किया करती है।२७ उनसे सब मनुगण और सभी ऋषि निमित्त श्राद्धों का ज्ञान प्राप्त करके उनकी सर्वदा धर्म के अभाव में क्रिया करते हैं।२८। उनसे ही पुनः प्रसाद से योग सन्तति को प्राप्त करने के लिए पितृगणों के आदि सर्ग में यह श्राद्ध ही विशेष रूप से निर्मित किया गया है।२९।

१४—श्राद्ध प्रकरण

श्रुत्वैतत्सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम् ।
श्राद्धकालञ्च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च ।१
श्राद्धे भोजनीया ये च वर्ज्या द्विजातयः ।
कस्मिन्वासरभागे वा पितृभ्यः श्राद्धमाचरेत् ।२
कस्मिन्दत्तं कथं याति श्राद्धन्तु मधुसूदन ।
विधिना केन कर्त्तव्यं कथं प्रीणाति तान्पितॄन् ।३
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।४
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते ।
नित्यं तावत्प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम् ।५

अदैवं तद्विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम् ।
पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणु तावन्महीपते ।
पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्छृणुष्व नराधिप ।६
पञ्चाग्निः स्नातकश्चैव त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः ।७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह सब कुछ श्रवण करके मनु ने फिर भगवान् केशव से पूछा था कि श्राद्ध के जो अनेक काल होते हैं वे क्या हैं और श्राद्धों के जो बहुत से भेद हुआ करते हैं वे कौन से हैं ? ।१। श्राद्धों में जिन विप्रों को भोजन कराना चाहिए उनके समुचित स्वरूप क्या होने चाहिये और जो द्विजगण श्राद्ध में वर्जनीय हैं उनके क्या लक्षण होते हैं ? श्राद्ध दिन के किस भाग में करना चाहिए जो कि पितृगण के लिए समाचरित किया जाता है ? ।२। हे मधुसूदन ! किसको दिया हुआ श्राद्ध किस प्रकार से जाकर वहाँ पहुँचता है? यह भी कृपया बतलाइये कि वह श्राद्ध किस विधि-विधान से करना चाहिए और वह किस प्रकार से पितृगणों को प्रसन्नता किया करता है ? ।३। मत्स्य भगवान् ने कहा—श्राद्ध प्रतिदिन ही करना चाहिये । इसे चाहे तो अन्नादि के द्वारा सम्पन्न करे अथवा उदक के द्वारा ही पूर्ण करे या पय-मूल और फलों के द्वारा भी श्राद्ध करे जो कि पितृगण की प्रीतिका समावहन करने वाला है । श्राद्ध देने वाले का कर्तव्य है कि उसकी भावना सदा पितृगण की प्रीति को प्राप्त कराने की अवश्य होनी चाहिए ।४। नित्य-नैमित्तिक और काम्य इस प्रकार से तीन तरह के श्राद्ध हुआ करते हैं । अब मैं नित्य जो श्राद्ध होता है जो अर्घ्य और आवाहन से वर्जित है उसे बतलाता हूँ ।५। उसे अदैव ही जानना चाहिये । पर्वों में होने वाला पार्वण श्राद्ध कहा गया है । हे महीपते ! यह पार्वण नामक श्राद्ध भी तीन तरह का कहा गया है—इसका भी श्रवण करिये ।६। हे नराधिप ! पार्वण श्राद्ध में जो नियोजन करने के योग्य होते हैं उनके

विषय में भी कुछ लीजिये । इनमें नियोजन करने के योग्य ब्राह्मण गणाधिक करने वाला-स्नातक-विशुद्ध-ब्रह्मकुल [illegible] के ज्ञाता-श्रोत्रिय श्रोत्रिय [illegible] का पुत्र और विधि [illegible] का विशेष विद्वान् ही होना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त गुणों में से इस विप्र में कोई भी एक गुण अवश्य ही होना चाहिये ।८।

सर्ववेदव्रतस्नातो ज्ञातवंशः कुलान्वितः ।
पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः ।८
शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः ।९
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान् ।
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः श्वशुरं गुरुम् ।१०
विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान् ।
विट्पतिं मातुलं बन्धुं मृत्विगाचार्यसोमपान् ।
यश्च व्याकुरुते वाक्यं यश्च मीमांसतेऽध्वरम् ।११
सामस्वरविधिज्ञश्च पंक्तिपावनपावनः ।
सामगो ब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथ ब्रह्मवित् ।१२
यत्रैते भुञ्जते श्राद्धं तदेव परमार्थवित् ।
एते भोज्याः प्रयत्नेन वर्जनीयान्निबोध मे ।१३

पार्वण श्राद्ध में वही नियोज्य होता है जो [illegible] सर्वज्ञ हो या वेदों का वेत्ता, धर्म शास्त्री—ऐसा जिसके वंश का पूर्ण ज्ञान हो—सुन्दर कुल में समुत्पन्न -पुराणों का ज्ञाता-धर्म का ज्ञान रखने वाला—वेदों के स्वाध्याय करने में तथा मन्त्र जाप में तत्पर हो ।८। जो शिव भगवान् शङ्कर का परम भक्त हो वह—पितृगण में श्रद्धा रखकर [illegible] रहने वाला—भगवान् भुवन भास्कर का भक्त—विष्णु का भक्त-ब्राह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों पर दया तथा भक्ति रखने वाला-योग शास्त्र का ज्ञाता—परम शान्त स्वभाव से सम्पन्न जितात्मा और शील वाला ब्राह्मण को ही पार्वण श्राद्ध में भोजन कराना चाहिए । यदि दौहित्र प्राप्त हो तो यत्न पूर्वक उसे ही भोजन करावे अथवा अपने मित्र के कुछ बर्ग

को भोजन कराना चाहिये ।९-१०। त्रिणाचि-मातुल—बन्धु—ऋत्विक—अभ्यागतों—शोभन—वह जो स्वर का व्याकरण करता हो—वह जो आचार के विषय में मीमांसा कर सकता हो—सामवेद के छन्दों की सिद्धि का ज्ञाता—पांक्तिपावन—ब्राह्मण—ब्रह्मचारी—वेद में युक्त अथवा सत्य का वेत्ता इनमें से कोई भी विप्र श्राद्ध में भोजन किया करता है वह ही उत्तम प्रकार का श्राद्ध है और यही परमार्थ का वेत्ता श्राद्धवाला होता है । इतने प्रकार के जो ब्राह्मण बतलाये हैं उन्हीं में से जितनों को प्रयत्नपूर्वक भोजन श्राद्ध में कराना चाहिये । अब जो भी बतलाते हैं जो श्राद्ध में वर्जित विप्र होते हैं उनको भी मुझसे ही जानलो ।११-१३।

पतितोऽभिशस्तः क्लीबश्च पिशुनव्यङ्गरोगिणः ।
कुनखी श्यावदन्तश्च कुण्डगोलाश्वपालकाः ।१४
परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मत्तदारुणाः ।
वैडालो बकवृत्तिश्च दम्भोदेवलकादयः ।१५
कृतघ्नान्नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः ।
त्रिशङ्कुबर्बरद्रावचीनद्रविडकोङ्कणान् ।१६
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वान् श्राद्धकाले विशेषतः ।
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ।१७
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ।१८
दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मयासि निमन्त्रितः ।
एवं निमन्त्र्य नियमं श्रावयेत् पितृबान्धवान् ।१९
अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ।
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ।२०
पितृयज्ञं विनिर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान् ।

पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये सुधीः ।२१।

जो ब्राह्मण तो है किन्तु किसी कर्म का पतित हो गया हो अले-ख्य को अविनायक हो—स्तेन–पिशुन–पिंगल या विशेष अङ्ग वाला- रोगी कुनखी—कृष्ण वर्ण वाले जिसके दांत हों वह कुण्ड—गोलक और अन्नदायक ये ब्राह्मण श्राद्ध में वर्जित हैं। (पति के रहते हुए पर पुरुष से समुत्पन्न और पति के मृत होने पर परपुरुष से उत्पन्न कुण्ड और गोलक संज्ञा वाले होते हैं) ।१४। परिवित्ति—निराकृत—अपत्र- उन्मत्त-शाल्य-वैद्य-सोम-पद के समान कुशील वाला-हस्ती-देवलक आदि विप्र भी श्राद्ध में वर्जनीय होते हैं।१५। जो किए हुए उपकार को नहीं मानने वाले हैं—ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाले—म्लेच्छों के देश में निवास करने वाले—त्रिशंकु, बर्बर, द्राविड़, कीकट देशों में भी उत्पन्न विप्र श्राद्ध में नियोजन के योग्य नहीं हैं और वर्जित हैं।१६ श्राद्ध के समय में जितने भी निन्दाकारी हैं उन सभी को विशेष रूप से वर्जित कर देना चाहिए श्राद्ध दिन से या उससे भी पूर्व दिन में ही श्राद्ध में ब्राह्मण को निमन्त्रण दे देना चाहिये और परम विनीत भाव से सम्पन्न होते हुए निमन्त्रित करे ।१७। जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित होते हैं पितृगण उन्हीं द्विजों पर उपस्थान किया करते हैं। वे वायु भूत होते हुये उनका ही अनुगमन किया करते हैं अतएव जब वे आसनासीन होवें तो उनकी उपासना करे। दक्षिण जानु का आलभन करके मैंने आपको निमन्त्रित किया है—इस रीति से निमन्त्रण करके पितृ गणों को नियमों का श्रवण कराना चाहिये।१८-१९। उन ब्राह्मणों से प्रार्थना करते हुए श्राद्ध कर्त्ता को कहना चाहिए कि आप लोगों को क्रोध से रहित शौच में परायण और निरन्तर ब्रह्मचर्य्य व्रत का परिपालन पूर्ण रूप से करने वाले होना ही चाहिए। मैं श्राद्ध का करने वाला हूँ मुझे भी पितृयज्ञ को पूर्णतया सम्पन्न करके जिसका नाम सर्वेष है जो अग्नि-मान् है उसे इन्दुक्षय में परम प्रसन्नता से पिण्डान्वाहार्य श्राद्ध करना चाहिए ।२०-२१।

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणाप्रवणे स्थले ।
श्राद्धं समाचरेद्भक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ ।२२

अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्यं चरुञ्चसाममुष्टिभिः ।
पितृभ्यो निर्वपामीतिसर्वंदक्षिणतोन्यसेत् ।२३

अभिघार्य ततः कुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः ।
तेऽपि स्युरायताः कार्य्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः ।२४

दर्वीत्रयन्तु कुर्वीत खदिरं रजतान्वितम् ।
रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् ।२५

उदपात्रञ्च कांस्यञ्च मेक्षणञ्चसमित्कुशान् ।
तिलाः पात्राणिसद्वासोगन्धधूपानुलेपनम् ।२६

आहरेदपसव्यन्तु सर्वं दक्षिणतः शनैः ।
एवमासाद्य तत्सर्वं भवनस्याग्रतो भुवि ।२७
गोमयेनोपलिप्तायांगोमूत्रेणतुमण्डलम् ।
अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत् ।२८

जो स्थल दक्षिण दिशा की ओर को ढले हो गोमय से उपलिप्त कर लेना चाहिए और वहीं पर परम भक्ति की भावना से पूरित होकर श्राद्ध का समाचरण करना चाहिये । अथवा गोष्ठ में श्राद्ध करने का उत्तम स्थल रक्खे या किसी भी जलाशय की सन्निधि में श्राद्ध का समाचरण करे ।२२। जो अग्निमान् अर्थात् साग्निक हो उसे पित्र्य चरु का साम मुष्टियों से निर्वपन करना चाहिए । 'मैं पितृगण के लिये निर्वपन करता हूँ'—यह कहते हुए सभी को दक्षिण की ओर स्थापित करना चाहिए ।२३। इसके उपरान्त आगे निर्वापत्रय अभिघार्य को करना चाहिए ।२४। वहाँ पर तीन दर्वी करे । वे चाहे खदिर निर्मित हों या रजत से समन्वित हों । रत्निमात्र-परिश्लक्ष्ण और एक हाथ के आकार वाला उत्तम होना चाहिए ।२५। जल का पात्र-कांस्य-मेक्षण-

समिधा-कुशा-तिल-पात्र-सुन्दर वस्त्र-गन्ध-धूप और अनुलेपन इन समस्त पदार्थों का अपसव्य में होते से दक्षिण की ओर ही आहरण करना चाहिए। इस रीति से सबका समाहरण करके भवन के अगले भाग की भूमि में जो कि गोमय से उपलिप्त की हुई है उसमें गोमूत्र से मण्डल करे और फिर समस्त स्वच्छ पुष्पों के सहित अक्षतों से उसका अभ्यर्चन करना चाहिए। यही सब श्राद्ध करने के स्थल पर करके ही श्राद्ध का समारम्भ करे।२६-२८।

विप्रांस्तान् क्षालयेत्पादावभिवन्द्य पुनः पुनः ।
आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत् ।२९
उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत् ।
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च ।३०
भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्याद्विस्तरं बुधः ।
दैवपूर्वं नियोज्याथ विप्रानभ्यर्चितान्बुधः ।३१
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि ।
स्वगृह्योक्तविधानेन काम्यं कृत्वा चरुं ततः ।३२
अग्नीषोमयमाभ्यां तु कुर्यादाप्यायनं बुधः ।
दक्षिणाग्नौ प्रणीते वा य एकाग्निर्द्विजोत्तमः ।३३
यज्ञोपवीती निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम् ।
प्राचीनावीतिना कार्यमतः सर्वं विजानता ।३४
षट् तस्माद्धविः शेषात्पिण्डान्कृत्वा ततोदकम् ।
दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना ।३५

जब विप्रगण जो श्राद्ध में निमन्त्रित किए गये हैं वहाँ स्थल पर पदार्पण करें तो उनको बारम्बार वन्दना करके सर्व प्रथम उनके चरणों का प्रक्षालन करना चाहिए। विधान पूर्वक दर्भों से समन्वित उपक्लृप्त आसन हैं उन पर उन विप्रों को जिन्होंने जल से अपना उपस्पर्शन कर लिया है उपवेशित करे और अनुमन्त्रण करना चाहिए। दैवकृत्य

वे दो तथा पितृ कृत्य में तीन अथवा इन दोनों में भी एक-एक ही विप्र को निमन्त्रित करना चाहिए। उन्हीं ब्राह्मणों को भोजन करावे। चाहे कोई अधिकपूर्ण समर्थता भी क्यों न रखता हो श्राद्धकर्म में बुध पुरुष को इससे अधिक विस्तार नहीं करना चाहिए। देवपूर्व निमन्त्रण करके इसके अनन्तर ही बुध पुरुष को चाहिए कि निमन्त्रित विप्रों को कुशों आदि आसनों में उपवेशित करे।२९-३१। विप्र की विधि के ही अनुसार उन निमन्त्रित विप्रों से अनुज्ञा प्राप्त करके अग्नि में हवन का आरम्भ करना चाहिए। अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार ही पिण्ड पात्र में जल को भर लेवे। फिर 'अग्नि सोमाभ्याम्'—इससे बुध पुरुषको आप्यायन करना चाहिए। जो एकाग्नि द्विजोत्तम हो उसे दक्षिणाग्नि में अथवा प्रतीत में पञ्चोपचारों देते हुए पर्युक्षण आदि का निर्वपन करना चाहिए। इसलिये यज्ञ अग्नि रखने वाले पुरुषको प्राचीनावीति होकर ही करना चाहिए। उस हवि शेषसे ही पिण्डों की रचना करके फिर उदक देवे और तिलों के सहित उदक को सव्यपाणि से ही उदक पात्र के द्वारा देना चाहिए।३२-३५।

जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः।
विधाय लेखां यत्नेन निर्वपेन्नवनेजनम्॥३६
दक्षिणाभिमुखः कुर्यात् करे दर्भौ निधाय वै ।
निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुक्रमात्॥३७
निनयेच्च दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः ।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्॥३८
तथैव च ततः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम् ।
षडप्येतान्नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभिः॥३९
एवमावाह्य तत्सर्वं वेदमन्त्रैर्यथोदितैः ।
एकाग्नेरेकएव स्यान्निर्वापोदर्विका तथा ॥४०
ततः कृत्वान्तरे दद्यात्पत्नीभ्योऽन्नं कुशेषु सः ।

तद्वत्पिण्डादिकं कुर्यादावाहनविसर्जनम् ।४१
ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्यो मात्राः सर्वाः क्रमेण तु ।
तानेव विप्रान्प्रथमं प्राशयेद्यत्नतो नरः ।४२

सव्य वामांगस्थ होकर यत्न पूर्वक मत्सरता से रहित और धर्मयुक्त होकर सेवा करे तथा फिर वमन के साथ दक्षिणाभिमुख होकर पिंडों को हाथ में रखकर तिलों से अवनेजन करना चाहिए। एक-एक पिंड को रखकर अनुक्रम से सम्पूर्ण दर्भों में विनीत करें और उन दर्भों में उस समस्त नाम और गोत्र का भी कीर्तन करते हुए यह क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए ।३७-३८। उसी भाँति से इसके पश्चात् पुनः प्रत्यवनेजन करना चाहिए। इन छहों पिण्डों को गन्ध-धूप आदि की अर्हणा के द्वारा नमस्कार करे ।३९। यथोचित जो वेद के मन्त्र हैं उनके द्वारा इसी प्रकार से उन सबका आवाहन करना चाहिए। जो एकाग्नि हो उसका एक ही होना चाहिए तथा निर्वापेतक क्रिया भी वैसी ही होवे ।४०। इसके अनन्तर यह सब सम्पादित करके उसे अन्तर में कुशों से उनकी पत्नियों के लिए अन्न देना चाहिए। और इनके लिए भी इसी भाँति पिण्ड आदि में आवाहन और विसर्जन करने चाहिए ।४१। इसके पश्चात् उन्हें ग्रहण करके पिंडों से सब मात्रा क्रमेण अर्थात् क्रमपूर्वक उस श्राद्धवाला पुरुष को यत्नपूर्वक उन्हीं विप्रों को सर्व प्रथम खिला देनी चाहिए ।४२।

यस्मादन्नात् धृता मात्रा भक्षयन्ति द्विजातयः ।
अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात्तच्चन्द्रसंक्षये ।४३
पूर्वं दत्त्वा तु तद्धस्ते सपवित्रं तिलोदकम् ।
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ।४४
वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्टं पूतञ्च सर्वदा ।
वर्जयेत् क्रोधपरतां स्मरन्नारायणं हरिम् ।४५

तृप्तान् ज्ञात्वा ततः कुर्याद्विकिरं सार्ववर्णिकम् ।
सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद्भुवि ।४६

आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम् ।
स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरि समाहरेत् ।४७
देवाद्यन्तं प्रकुर्वीत श्राद्धनाशोऽन्यथा भवेत् ।
विसृज्य ब्राह्मणांस्तद्वत्तेषां कृत्वा प्रदक्षिणम् ।४८
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् पितॄन् याचेत मानवः ।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।४९

जिस अन्न में जो मात्रा बची हुई अथवा भूल की गई है द्विजादि गण उसका भक्षण करते हैं — उसको अन्वाहार्यक कहा गया है। इस कारण से उस अन्न के संभार में पहिले पत्नियों के सहित शिशुओं को उनके हाथ में देकर फिर 'स्वधा स्वधा अस्तु' अर्थात् इनको स्वधा होवे—यह मुखसे बोलना हुआ उस पिण्डका अवघ्राण लेवे। फिर सर्वदा प्रिय तथा पूर्ण मन्त्रकी प्रशंसाका वर्णन करते हुए उनको भोजन कराना चाहिए। उस समय में क्रोध की भावना को सर्वदा वर्जित कर देना चाहिए और श्रीहरि नारायण का स्मरण करते हुए ही यह सब कर्म सम्पन्न करे।४२-४५। जब यह जान लेवे कि विप्र भोजन से पूर्णतया तृप्त हो गये हैं तो फिर सार्ववर्णिक विकिरण करना चाहिए। उदक के सहित अन्न को उद्धृत करके भूमि में जल का प्रक्षेपण करे।४६। जब विप्र आचान्त हो जावें तो उन्हें पुनः जल पुष्प, अक्षत और उदक देवें। स्वस्ति वाचनक सर्व का पिण्डों के ऊपर में समाहरण करना चाहिये। सब देवाद्यन्त करे अन्यथा श्राद्ध का नाश हो जाता है। फिर ब्राह्मणों का विसर्जन करके उनकी प्रदक्षिणा करे। दक्षिण दिशा की ओर आकांक्षा करते हुए मनुष्य को पितृगण से याचना करनी चाहिए कि आप हम दाता हैं और हमारे वेदों तथा सन्तति का अभिवर्द्धन करें।४७-४९।

श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति ।
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभामहे ।५०
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ।
एतदस्त्विति तत्प्रोक्तमन्वाहार्यन्तु पार्वणम् ।५१
यथेन्दुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते ।
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।५२
विप्राग्रतो वा विकिरेद्वयोभिरभिवाशयेत् ।
पत्नी तु मध्यमं पिण्डं प्राशयेद्विनयान्विता ।५३
आधत्त पितरो गर्भमत्र सन्तानवर्धनम् ।
तावदुच्छेषणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।५४
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि ।
इष्टैः सह ततः शान्तो भुञ्जीत पितृसेवितम् ।५५
पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् ।
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ।५६
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नञ्च सर्वदा ।
अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ।५७
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा ।
यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात्परम् ।
तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ।५८

पितृगण से नम्र होकर परस्पर भावना से यह भी याचना करें कि आप ऐसी कृपा करें कि हमारे हृदय से कभी भी श्रद्धा का व्यपगम न होवे और हमारे हृदय में बहुत अधिक दातृत्व शक्ति की वृद्धि होवे । हमारे पास अत्यधिक अन्न होवे और हम अतिथि सदा प्राप्त करते रहें ।५०। हम लोगों से याचना करने वाले लोग होवें जिनकी याचनाओं की पूर्ति हम किया करें तथा हम कभी भी किसी से याचना करने वाले न बनें । ऐसीही कृपा आप लोग करें कि ऐसाही हो जावे ।

इसी को अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध कहा गया है ।५१। जिस प्रकार से इन्दु के संक्षय में इसे कहा गया है उसी भाँति अयन में भी इसको कहा जाता है । इन पिण्डों को फिर गौ, अजा और विप्रों को दे देना चाहिए अथवा उनको किसी पवित्र जलाशय में या अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए ।५२। विप्रों के आगे विकिरण कर देवे अथवा पक्षियों को खिला देना चाहिए । पत्नी को मध्यम पिण्ड का प्राशन विनय से समन्वित होकर करना चाहिये ।५३। इसमें पितृगण सन्तान के वर्धन करने वाला गर्भ रख दिया करते हैं । जब तक विप्रगण वहाँ से विसर्जित न होवें तब तक वह उनका उच्छिष्ट वैसे ही स्थित रहना चाहिए ।५४। इस पितृकार्य के साथ सम्पन्न होकर निवृत्त हो जाने के पश्चात् बलि-वैश्वदेव करना चाहिए । इसके अनन्तर अपने समस्त इष्ट मित्रों तथा बन्धु-बान्धवों के साथ मिलकर परम शान्त भाव से पुरुष ही उस पितृ सेवित अन्न को खावें ।५५। श्राद्ध करने वाले पुरुष को उसी दिन में दूसरी बार भोजन करना, मार्ग का गमन करना, यान से समारोहण करना, विशेष श्रम का कार्य करना, मैथुन नहीं करनी चाहिए । इस भाँति श्राद्ध भोजन करने वाले विप्र को भी इन नियमों का परिपालन करना चाहिए तथा दोनोंको ही इनका विसर्जन कर देना चाहिए ।५६ श्राद्ध वाले दिन में स्वाध्याय भी न करे तथा किसी प्रकार का कलह और दिनमें निद्रा भी न लेवे और सर्वदा इसका ध्यान रखना चाहिए । इसी विधि-विधान से यहाँ पर श्राद्धका निर्वपन करना चाहिये । कन्या राशि, कुम्भ और वृष राशि पर सूर्य के स्थित होने पर सर्वदा कृष्ण पक्षों में ही श्राद्ध देना चाहिये । सपिण्डीकरण से आगे ही वर्षों-पर श्राद्ध देना चाहिए । जो साग्निक हो उसे भी इसी विधान से श्राद्ध देना चाहिए ।५७-५८।

१५—साधारण अभ्युदय कीर्तन

अत: परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम् ।
श्राद्धं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१

अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे ।
अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ॥२

आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ।
गजच्छायाव्यतीपाते विष्टि वैधृतिवासरे ॥३

वैशाखस्य तृतीयायां नवमी कार्तिकस्य च ।
पञ्चदशी च माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी ॥४

युगादय: स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारिका: ।
तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता ॥५

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥६

फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥७

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता ।
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिका: ॥८

महा महर्षि श्रीसूतजी ने कहा—इसके आगे मैं साधारण श्राद्ध को बतलाऊँगा जो भगवान् विष्णु ने कहा था । यह श्राद्ध भुक्ति-मुक्ति के फल देने वाला है ।१। इस श्राद्ध के देने के समय बतलाये जाते हैं अयन-विषुव-युग्म-सामान्य सूर्य संक्रान्ति—अमावस्या अष्टका-कृष्णपक्ष-पञ्चदशी—आर्द्रा-मघा-रोहिणी-द्रव्य-ब्राह्मण सङ्गम—गजच्छाया व्यति-पात-विष्टि—वैधृतिवार वैशाख की तृतीया-कार्तिक मास की नवमी तिथि—माघ की पञ्चदशी—नभस्य मास की त्रयोदशी तिथि ये युगादिक दिए हुए श्राद्ध को अक्षय करने वाले कहे गये हैं । इसी भाँति मन्वन्तर

के आदि में विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को श्राद्ध देना चाहिए।५। ।६-७। अश्वयुज की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि तथा कार्तिक में द्वादशी तिथि चैत्र और भाद्र पद मास की तृतीया तिथि फाल्गुन की अमावस्या और पौष मास की एकादशी तिथि—आषाढ़ की भी दशमी तथा माघ मास की सप्तमी तिथि श्रावण की अष्टमी कृष्ण पक्ष वाली—आषाढ़ी पूर्णिमा तथा कार्तिकी-फाल्गुनी-चैत्री और ज्येष्ठ की तिथि पन्द्रह तथा मन्वन्तर किये हुए श्राद्ध के अक्षय करने वाली तिथियाँ हैं।६-८।

यस्यां मन्वन्तरस्यादौ रथमासोद्दिवाकरः।
माघमासस्य सप्तम्यां सा तु स्याद्रथसप्तमी।९
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति।१०
वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये।
तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च।११
विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता।
विप्रान् पूर्वं परेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत्।१२
शीलवृत्तगुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान्।
द्वौ दैवे त्रींस्तथा पित्र्ये एकैकमुभयत्र वा।१३
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे।
विश्वान्देवान् यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम्।१४

मन्वन्तर के आदि में जिस तिथि में दिवाकर रथ में विराजमान होते हैं वह माघ मास की सप्तमी तिथि है, अतएव वह रथ सप्तमी कही भी जाती है।९। इस तिथि में यदि कोई प्रयत मनुष्य अपने पितृ के लिए तिलों से विमिश्रित जल मात्र भी समर्पित कर देता है तो ऐसा मान लिया जाता है कि उस व्यक्ति ने एक सहस्र वर्ष तक का श्राद्ध कर लिया है—इस रहस्य को पितृगण ही कहा करते हैं।१०। वैशाखी

पूर्णिमा में, नवरात्रों में, उत्सव महालय में, तीर्थ-देवायतन और गोष्ठ में, द्वीप-उद्यान-गृह में तथा परम विविक्त (एकान्त) और गोमय से उपलिप्त स्थान में विशेष ज्ञाता पुरुष को पितृगण के लिए श्राद्ध देना चाहिए। पूर्व या पर दिन में ही नियोजन के योग्य श्रुतिज्ञ विप्रों को विनीत आत्मा वाला परम विनम्र होकर निमन्त्रित कर देना चाहिए ।११-१२। जो भी विप्र श्राद्ध में निमन्त्रित किये जावें वे शील-कुल और गुणों से युक्त तथा वय एवं रूप से समन्वित होने चाहिए। दैव में दो और पैत्र्य में तीन ही विप्रों को श्राद्ध में निमन्त्रण देना चाहिए अथवा इन दोनों में ही एक-एक विप्र को निमन्त्रित कर देना पर्याप्त होता है ।१३। चाहे कोई कितना ही अधिक समृद्धिशाली भी क्यों न हो जिसे धन के अधिक व्यय होने की कुछ भी परवाह न हो तो भी श्राद्ध में विस्तार करने के लिए प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। विश्वेदेवों को यवों के तथा पुष्पों के द्वारा अर्चन करते हुए पहले आसन ग्रहण करना चाहिए ।१४।

पुरस्तात्प्राङ्मुखानां तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम् ।
शन्नोदेवीत्यपः कुर्याद्यवोऽसीति यवानपि ।१५
गन्धपुष्पैश्च सम्पूज्य वैश्वदेवं प्रतिन्यसेत् ।
विश्वेदेवास इत्याभ्यामावाह्य विकिरेद्यवान् ।१६
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य याद्दिव्येत्यपसव्यवत् ।
अभ्यर्च्याभ्यामनुज्ञातः पितृकार्यं समारभेत् ।१७
दर्भासनन्तु दत्त्वादौ त्रीणि पात्राणि पूरयेत् ।
सपवित्राणि कृत्वादौ शन्नोदेवीत्यपः क्षिपेत् ।१८
तिलोऽसीति तिलान् कुर्याद्गन्धपुष्पादिकं पुनः ।
पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः ।१९
जलजं चापि कुर्वीत तथा सागरसम्भवम् ।
सौवर्णं राजतं चापि पितॄणां पात्रमुच्यते ।२०

रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा ।
राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः ।२१

दो पात्रों की स्थापना करके उनमें और पवित्रों के सहित जल से उन्हें पूरित करें तथा 'शन्नोदेवी'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल डालना चाहिए । 'यवोऽसीति'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए यवों को भी डाल देवे ।१५। गन्ध और पुष्पों से संयुक्त को भली-भाँति पूजन करके पवित्रन्यास कर देना चाहिए । 'विश्वेदेवास' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा आवाहन करके यवों को विकीर्ण करना चाहिए ।१६। गन्ध पुष्पों से समलंकृत करके 'या दिव्य'—इत्यादि मन्त्र को बोलते हुए अर्घ्य का उत्सर्ग करे, उन दोनों से अभ्यर्चन करके फिर उसके अनन्तर पितृ कार्य का समारम्भ कर देना चाहिये ।१७। आदि में दर्भासन देकर तीन पात्रों को पूरित कर देवे और आदि में उन पात्रों को पवित्रों से सहित करके फिर 'शन्नोदेवी रभिष्टये'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल का क्षेपण करना चाहिये ।१८। 'तिलोऽसीति' मन्त्र को पढ़ते हुए तिलों को क्षेप करे और फिर गन्ध, पुष्प आदि का क्षेपण करना चाहिए । पात्र को वनस्पतियों से पूर्ण तथा पूर्णपत्र कर देवे ।१९। अथवा औदुम्बर को तुला मात्र सम्पन्न कर देवे । पितृगणों के पात्र सुवर्ण निर्मित अथवा रूप्य (चाँदी) के बने हुए रजत कहे जाया करते हैं ।२०। रजत की कथा भी दर्शन और दान ही होता है । इन पितृगणों के लिए श्राद्ध आदि जो कुछ भी दिया जावे वह चाँदी के निर्मित पात्रों के द्वारा ही देना चाहिए अथवा चाँदी से समन्वितों के द्वारा करना चाहिए ।२१।

वार्य्यपि श्रद्धया दत्तमक्षय्यायोपकल्पते ।
तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितॄणां राजतं मतम् ।२२
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभम् ।
अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ।२३
एवं पात्राणि संकल्प्य यथालाभं विमत्सरः ।

यदियेतिपितुर्नामगोत्रैर्दर्भकरोऽर्चयेत् ।२४
पितृनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तैः पुनः ।
उशन्तस्त्वा तथायन्तु ऋग्भ्यामावाहयेत्पितॄन् ।२५
यानिर्भेदर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्ततः ।
हस्तात्तदुदकं पूर्वं दत्त्वा संश्रवमादितः ।२६
पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत् ।
पितृभ्यः स्थानमसीति निधाय परिवेषयेत् ।२७
तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ।२८

जो श्रद्धापूर्वक केवल जल भी दिया जाता है वह भी अक्षय और उपकारक हो जाता है। इसी भाँति से अर्घ्य-पिण्ड भोजन आदि के कर्म में पितृगणों के लिए राजत माना गया है।२१। भगवान् शिव के नेत्रों से उत्पत्ति होती है इसी कारण से यह पितृगण का प्रिय है। जो अमङ्गल है उसे यत्नपूर्वक ऐसे कार्यों में वर्जित करना चाहिए।२३। इस रीति से पात्रों का सम्भूलय करके शास्त्रानुसार मत्सरता के भाव से रहित होकर ही 'या दिव्या'—इत्यादि मन्त्र से पिता के नाम गोत्रों से हाथ में दर्भ ग्रहण करने वाले को न्यास करना चाहिए।२४। 'पितॄन् आवाहयिष्यामि'—अर्थात् मैं अपने पितृगणों का आवाहन करूँगा—इस रीति से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछे। जब ब्राह्मण कह देवें कि 'कुरु' अर्थात् आवाहन करो तभी आवाहन पूर्वक आज्ञा-युत होकर ही करे। 'उशन्तस्त्वा' 'तथायन्तु'—इन दो ऋचाओं के द्वारा पितृगण का आवाहन करे।२५। 'या दिव्या'—इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्य का उत्सर्ग करके फिर पीछे गन्ध आदिक अन्य पूजनोपचारों का देना चाहिए। हाथ में पूर्व में उस जल को लेकर आदि से संश्रव को पितृपात्र के पास में रखकर उत्तर की ओर न्युब्ज न्यास करना चाहिए। 'पितृभ्यः स्थानमसि'—इस मन्त्र से रखकर परिवेषण करे।२६-२८।

वहाँ पर भी पूर्व की ही भाँति भोजनों से रहित होकर ही अग्नि कार्य करना चाहिए। दोनों हाथों से समाहरण करके ही परिवेषण करना चाहिए ।२८।

प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः ।
गुणाढ्यैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः ।२९।
अन्नन्तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् ।
मासम्प्रीणाति वै सर्वान्पितॄनित्याह केशवः ।३०
यत्किञ्चिन्मधुसम्मिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम् ।
दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवता ।३१
स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च ।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तवानि विविधानि च ।३२
इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः ।
बृहद्रथन्तरं तद्वज्ज्येष्ठसामसरौहिणम् ।३३
तथैव शान्तिकाध्याय मधु ब्राह्मणमेव च ।
मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि च यत् पुनः ।३४
विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्वं समुदीरयेत् ।
भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ! ।३५

निरन्तर श्राद्ध कर्म में प्रशान्त चित्त वाला रहकर ही उसे करे और सर्वदा हाथमें दर्भ रखे। गुणोंसे युक्त सूप तथा शाक आदि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का विशेष रूप से परिवेषण करे ।२९। जो भी अन्न दिया जावे वह दधि-क्षीर और शर्करा से समन्वित ही देना चाहिए। भगवान् केशव ने कहा है कि इस तरह से दिया हुआ श्राद्ध एक मास पर्यन्त पितृगण को प्रसन्न किया करता है ।३०। जो कुछ भी मधुसे संमिश्रित गो का क्षीर, घृत पायस दिया हुआ है वह सर्व अक्षय अर्थात् क्षय से रहित हो जाया करता है—ऐसा पितृगण और पूर्वदेवता कहते हैं ।३१। पित्र्य अर्थात् पितृगण से सम्बन्धित स्वाध्याय का श्रवण

करावे तथा सभी पुराणों को सुनाना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के विविध सूक्तों का श्रवण कराना चाहिए।२२। इन्द्र-अग्नि और सोम के जो परम पावन सूक्त हैं उनका श्रवण अपनी शक्ति से करावे। इसी भाँति बृहद् रथन्तर और ज्येष्ठ साम रौहिण का श्रवण भी शक्ति के अनुसार कर पढ़ें भी कराना चाहिए।२३। इसी तरह से शान्तिकाध्याय और मधु ब्राह्मण एवं मण्डल तथा ब्राह्मण का श्रवण करावे। तात्पर्य यही है कि जो भी कुछ चित्तमय के लिए प्रीति का करने वाला हो वही उस समय में श्रवण कराना उचित होता है।२४। हे नृप! इसके पश्चात् उन सबके भुक्तवान् हो जाने पर हो भोजन के समीप में ही पितरों का तथा अपना मत उत्कीर्ण करना चाहिए।२५।

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा।
समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद्भुवि।२६
अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमां गतिम्।२७
येषां न माता न पिता न बन्धुर्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयातु लोकेषु सुखाय तद्वत्।२८
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनीनां कुलयोषिताम्।
उच्छिष्टभागधेयः स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः।३९
तृप्ताञ्ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद्विप्रकरे तथा।
उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा।४०
निधाय दर्भान् विधिवद्दक्षिणाग्रान्प्रयत्नतः।
सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत्।४१
अवनेजनपूर्वन्तु नामगोत्रेण मानवः।
गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम्।४२

सभी वर्णों का अन्न आदि का ग्रहण कर लेवे और उसको लाकर

जल में संसिक्त कर देना चाहिए फिर उसको मुक्त कुशों के सामने समुत्सृष्ट करना चाहिए और भूमि में विकीर्ण कर देवे।३६। जिस समय में भूमि में अन्न को विकीर्ण करे उस समय में 'अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ ...' इत्यादि मन्त्र का मुख से समुच्चारण करना चाहिए। इसका अर्थ है जो भी कोई जीव मेरे कुल में आग से जलकर नष्ट हो गये हों अथवा जिनका कभी दाह ही नहीं किया गया हो और जो कहीं भूत बन कर विनष्ट हुआ हों वे सभी भूमि में उपचित इस विकीर्ण अन्न से तृप्ति को प्राप्त करें। तथा परम गति को प्राप्ति भी करें।३७। जिनके कोई भी माता-पिता और बन्धु नहीं—न उनके गोत्र की ही शुद्धि है और न अन्न ही प्राप्त है उन सबकी तृप्ति के लिए ही यह अन्न भूमि में विकीर्ण करके दिया गया है। वह लोगों में उन सबको इसी भाँति सुख के लिए होवे।३८। असंस्कृत प्रमीत त्यागी कुल योषितों का उच्छिष्ट भाग भी है और जो दर्भ में विकीर्ण है वह होवे।३९। जिस समय में यह समझ लेवे कि भोजन करके विप्र खूब तृप्त हो चुके हैं तब एक बार विप्र के कर में उदक देना चाहिए। गोमय और गोमूत्र के द्वारा उपलिप्त भूमि के कुछ भाग पर उन सभी को निवेशित कर देवे किन्तु विधिपूर्वक दक्षिण की ओर ही उनके अग्रभाग होने चाहिए ऐसा ही प्रयत्न पूर्वक करे। सभी पापों वाले पुरुषों ने अन्न से पितृ यज्ञ की भाँति पिण्डों की रचना करनी चाहिए।४०-४१। मानव को अवनेजन पूर्वक नाम और गोत्र के द्वारा गन्ध-पुष्प आदिक सदा समर्पित करे और फिर प्रत्यवनेजन करना चाहिए।४२।

जान्वाच्यसव्यं सव्येनपाणिनाथ प्रदक्षिणम्।
पित्र्यमानीय तत्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना।४३
दीपप्रज्वालनं तद्वत् कुर्यात्पुष्पार्चनं बुधः।
अथाचान्तेषु चाचम्य वारिदद्यात्सकृत् सकृत्।४४

अथ पुष्पफलतान् पश्चाद्वस्त्राविकमेव च ।
सतिलं नामगोत्रेणदद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।४५
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च ।
दद्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ।४६
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।
ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ।४७
दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः ।
अघोरा पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः ।४८
गोत्रं तथा वर्द्धतां नस्तथेत्युक्तश्च तैः पुनः ।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामिति चैवमुदीरयेत् ।४९

सबका पूर्ण विधि से आचमन कराकर इसके अनन्तर पिण्ड को प्रदक्षिण में लाकर दर्भयुक्त हाथ से विधिपूर्वक बहु करना चाहिए ।४४। इसी तरह दीपक का प्रज्वालन करे और पुष्प, धूप की पुष्पांजलि करना चाहिए । इसके पश्चात् उन विप्रों के शिरों में अक्षत डालें और आचमन करके एक-एक बार जल देवें ।४४। इसके अनन्तर पुष्प और अक्षतों को तथा जलमध्य उनको जो तिलों के सहित हो नाम और गोत्र का उच्चारण करके देना चाहिए तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी देवे ।४५। दक्षिणा में गौ-भूमि-सुवर्ण-वस्त्र और शयन अथवा इनमें अपना जो अत्यन्त प्रिय एवं अभीष्ट हो तथा पिता का जो परम इष्ट पदार्थ हो उन्हीं को ब्राह्मणों को देना चाहिए ।४६। दक्षिणा आदि के देने में वित्तशाठ्य से रहित होकर ही पितृगण की प्रीति प्राप्त करता हुआ कंजूसी से दूर रहकर करे । इसके उपरान्त फिर विश्वेदेवों में प्रेरणा करने वाला स्वधा का वाचनक करे ।४७। वहाँ जल समर्पित करके बुध पुरुष को पूर्व की ओर मुख वाला होकर विश्वेदेवों से आशीर्वाद का प्रतिग्रहण करना चाहिए । फिर द्विजों के द्वारा पितृगण अघोर होवें—इस प्रकार से कहा हुआ श्राद्धकर्त्ता हो—फिर उनके द्वारा

कहा जावे—हमारा गोत्र वृद्धिशील होवे और इसके अनन्तर हमारे शालागणों की वर्धन होवे—इस प्रकार से यह कहना चाहिए ।४८-४९।

एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः ।
स्वस्तिवाचनकं कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ।५०
उच्छेषणन्तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।
ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्म्मव्यवस्थितिः ।५१
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते ।५२
पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा ।
अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप ! ।५३
ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम् ।
वाजेवाज इतिजपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ।५४
बहिः प्रदक्षिणान्कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् ।
बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ।५५

ये सभी आशीर्वाद सत्य होवें—उनके द्वारा पुनः यह कहा जावे कि अवश्य सत्य हों । भक्ति भाव से पिण्डों को उद्धृत करके स्वस्तिवाचन करना चाहिए ।५०। जब तक उस श्राद्ध के स्थल से ब्राह्मण लोग विसर्जित होवें तब तक उनके भोजन का उच्छिष्ट उसी दशा में स्थित रहना चाहिए । इसके अनन्तर गृहबलि करे—यही इसकी धर्म की व्यवस्था होती है ।५१। जो भूमि पर गिरा हुआ उच्छेषण है यह जो जिह्म न हो तथा आस्तिक हो ऐसे दास वर्ग के लिये ही वह पित्र्यभाग धेय कहा जाता है ।५२। हे नराधिप ! पितृगण के द्वारा यह सदा आप्यायन (तृप्त होना) पहिले ही निर्मित किया गया है । वह सभी के लिए है चाहे वे पुत्र रहित हों या सपुत्र हों या स्त्रियाँ हों ।५३। इसके अनन्तर उनके आगे स्थित होकर उदक पात्र को परिगृहीत करके 'वाजे वाज'—यह जप करता हुआ कुशा के अग्रभाग से पितृगण का

विसर्जन करना चाहिए ।५४। आठ कदम तक अनुव्रजन करते हुए अर्थात् पितरों के पीछे-पीछे चलते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिए । जिस समय में प्रदक्षिणा करे उस समय में सब बन्धु वर्ग को भी साथ में रखना चाहिए तथा अपनी भार्या और पुत्रादि को भी साथ में ले लेना चाहिए ।५५।

निवृत्य प्रणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत् ।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यिकं बलिमेव च ॥५६
ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः ।
भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥५७
एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु ।
श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥५८
भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥५९
तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ।
उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ॥६०
मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम् ।
ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च ॥६१

इस विसर्जन की क्रिया से निवृत्त होकर प्रणिपात करे और इसके उपरान्त समन्त्रक अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए । वैश्वदेव और नैत्यिक बलि देवे ।५६। इसके अनन्तर वैश्वदेव के अन्त में भृत्य-सुत और बान्धवों के सहित अतिथियों से संयुक्त होकर सभी पितृगण के द्वारा निषेवित किये हुए पदार्थों का भोजन करना चाहिए ।५७। इस श्राद्ध को वह भी समस्त पर्वों में करे जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो । यह साधारण नाम वाला श्राद्ध है जो सम्पूर्ण कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है ।५८। जो कोई भार्या से भी विरहित हो तथा प्रवास में स्थित रहने वाला हो और भक्ति भाव से सम्पन्न शूद्र भी हो

की मन्त्र रहित होता है उस शूद्र पुरुष को यह श्राद्ध विधिपूर्वक करना चाहिए ।५६। तीसरा आभ्युदयिक श्राद्ध होता है जिसको वृद्धि श्राद्ध के नाम से कहा जाया करता है । उत्सवों के आनन्द सम्भार में तथा यज्ञ और उद्वाह आदि के मङ्गलमय समय में सर्वप्रथम मातृगण का अभ्यर्चन करना चाहिए और इसके पश्चात् फिर पितरों का पूजन करे । हे राजन् ! इसके अनन्तर मातामहों का पूजन करे और पीछे इसी भाँति विश्वे देवाओं का अर्चन करना चाहिए ।६०-६१।

प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः ।
प्राङ्मुखो निर्वपेत्पिण्डान् दूर्वया च कुशैर्युतान् ।६२
सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः ।
युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः ।६३
तिलार्थस्तु यवैः कार्यो नान्दीशब्दानुपूर्वकः ।
माङ्गल्यानि च सर्वाणि वाचयेद्द्विजपुङ्गवैः ।६४
एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा ।
नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा ।६५
दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान्प्रभुः ।
दानेन सर्वकामाप्तिरस्य सञ्जायते यतः ।६६

प्रदक्षिणा के उपचार से दधि-अक्षत-फल और जल के द्वारा पूर्व दिशा की ओर मुख वाला होकर दूर्वा और कुशा से युक्त पिण्डों का निर्वपन करे ।६२। यह श्राद्ध अभ्युदय में सम्पन्न होता है इसीलिए दो-दो को अर्घ्य देना चाहिए । वस्त्र और कार्त्तस्वर (सुवर्ण) आदि के द्वारा युग्म द्विजातियों का पूजन करना चाहिए ।६३। नान्दी शब्दानु पूर्वक तिलार्थों को यवों से ही सम्पन्न करना चाहिए । द्विज श्रेष्ठों के द्वारा सम्पूर्ण माङ्गल्य का वाचन कराना चाहिए ।६४। इसी प्रकार से सामान्य वृद्धि श्राद्ध में भी सर्वदा शूद्र को भी नमस्कार मन्त्र के द्वारा कच्चे अन्न से ही यजन करना चाहिए ।६५। भगवान् प्रभु ने कहा है

कि शूद्र को दान की प्रधानता वाला अवश्य होना ही चाहिए कारण यही है कि इस शूद्र वर्ण वाले पुरुष को केवल दान से ही समस्त काम-नाओं के फलों की प्राप्ति हो जाया करती है इसीलिए शूद्र के लिए दान देने का विशेष महत्व होता है।६६।

१६—एकोद्दिष्टश्राद्धप्रकरण

एकोद्दिष्टमतो वक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना।
मृते पित्रे यथा कार्यं यथाशौचं पितर्यपि॥१
दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते।
क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैव हि॥२
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते।
नैशमाखण्डचूडस्य त्रिरात्रमपरैः स्मृतम्॥३
जननेऽप्येवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा।
तथास्थिसञ्चयादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते॥४
प्रेताय पिण्डदानन्तु द्वादशाहं समाचरेत्।
पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत्॥५
तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं न नीयते।
गृहं पुत्रं कलत्रञ्च द्वादशाहं प्रपश्यति॥६
तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा।
सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब तक पार्वण तथा नान्दीमुख श्राद्धों आदि का वर्णन किया जिनके साथ आभ्युदयिक श्राद्धकर्मों को भी बतला दिया गया था। अब एकोद्दिष्ट श्राद्ध के विषय में बतलाते हैं जिसे भगवान् चक्रपाणि ने कहा है। पुत्रों के द्वारा पिता के मृत हो जाने पर किस प्रकार से आशौच करना चाहिए—यह सभी कहा जाता है।१।

ब्राह्मणों में दाय (सूतक) अशौच दश दिन का माना जाता है क्षत्रियों में बारह दिन का सूतकाशौच होता है और वैश्यों में एक पक्ष का यही आशौच हुआ करता है ।२। शूद्रों में जो भी सपिण्ड होते हैं एक मास का आशौच रहा करता है । जो बालक चूड़ा संस्कार से रहित हो उस के आशौच एकनिशा का या अधिक से अधिक तीन रात्रि का ही कहा गया है ।३। सर्वदा जिस प्रकार से विभिन्न वर्णों में सूतकाशौच होता है उसी भाँति जनन में भी हुआ करता है । तथा अस्थियों के सञ्चय करने के ऊर्ध्व में अङ्ग स्पर्श का विधान है ।४। प्रेत के लिए पिण्डों का दान बारह दिन समाचरण करे । वह उसका यमपुरी के मार्ग का पाथेय कहा गया है अर्थात् मार्ग भोजन है क्योंकि वह उसको महान् प्रीति का करने वाला हुआ करता है ।५। इसलिए यह सुनिश्चय है कि बारह दिन तक प्रेत प्रेतों के पुर में नहीं पहुँचाया जाता है । वह प्रेत बारह दिन तक अपने घर को, पुत्र को और भार्या को बराबर देखता रहता है ।६ इसलिए दश रात्रि पर्यन्त आकाश में अर्थात् दीपक आदि दूध पर घट (जलकुम्भ) रखना चाहिए अर्थात् जलका घट भरे । यह सब प्रकार के दाह की उप शान्ति के लिए और मार्ग के श्रम का विनाश करने के लिए ही होता है ।७।

ततः एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु ।
क्षत्रादि: सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान् ।८
द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत् ।
आवाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः ।९
एकं पवित्रमेकोऽर्घ एकः पिण्डो विधीयते ।
उपतिष्ठतामित्येतद्देयं पश्चात्तिलोदकम् ।१०
स्वादितं विकिरेद्ब्रूयात् विसर्गे चाभिरम्यताम् ।
शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ।११
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत् ।

वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ।१२
सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत् ।
पितॄन्नेवाशयेत्तत्र पृथक् प्रेतं विनिर्दिशेत् ।१३
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ।१४

इसके पश्चात् दश रात्रि समाप्त होने पर ग्यारहवें दिन एकादश द्विजों को और प्रेतादि को सूचक के मन्त्रसे अयुग्म द्विजों को भोजन कराना चाहिए ।८। दूसरे दिन में इसी तरह से फिर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे । आवाहनादि में विधान से देवहीन करे ।९। एक पवित्री- एक अर्घ और एक पिण्ड किया जाता है । 'उपतिष्ठताम्'—इत्यादि के द्वारा पीछे तिलोदक देना चाहिए ।१०। 'स्वदितं विकिरेत्' —इसको बोले और विसर्गमें 'अभिरम्यताम्'—यह बोलना चाहिए । शेष सभी पूर्वकी ही भाँति इस पिताके श्राद्ध में भी वेदों के द्वारा पूजन करना चाहिए ।११। सपिण्डीकरण के पश्चात् ही वह प्रेत पार्वण श्राद्ध ग्रहण करने का अधिकार हुआ करता है । वृद्धि पूर्वोमें योग्य और फिर गृहस्थ होता है ।१२। सपिण्डीकरण श्राद्ध में देव पूर्व का नियोजन करना चाहिए । वहीं पर पितृगण का ही अधिवासन करे और प्रेत का पृथक् विनिर्दिष्ट करना चाहिए ।१३। गन्ध-उदक और तिलों से युक्त चार पात्रों को वहीं पर रखना चाहिए । अर्घ के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र का प्रसेचन करे ।१४।

ततः संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तदा ।
द्वे समाने ततो द्वाभ्यामन्त्यन्तु विभजेत्त्रिधा ।१५
चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतो भवेत् ।
ततः पितृत्वमापन्नः सर्वं तत्तुष्टिमागतः ।१६
अग्निष्वात्तादिमध्यस्थं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्न दीयते ।१७

पितृष्वेव तु दातव्यं तत् पिण्डेष्वेषु संस्थितः ।
ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादि पर्वसु ।१८
त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि ।
एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ।१९
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः ।
मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधो याति मानवः ।२०
संपृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतो भवेत् ।
प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ।२१

उस समय में इसी भाँति सम्पृक्त करके पिण्डों के प्रभाग को चार विभक्त करने चाहिए । जो समान होते हैं । वो मे जो अन्य है उसका तीन भागों में विभाजन करे ।१५। जो चौथा है उसका पुनः कदाचित् कोई नहीं होवे । इसके उपरान्त ही सब ओर से तृप्ति को प्राप्त होता हुआ वह प्रेत पितृत्व को प्राप्त हो जाया करता है ।१६। अग्निष्वात्तादि जो पितृगण हैं उनके मध्यत्व को वह प्राप्त कर लेता है जो कि अमृत और उत्तम है । सपिण्डीकरण सम्पन्न करने के अनन्तर में फिर उस प्रेत के लिए इसी कारण से कुछ नहीं दिया जाया करता है ।१७। फिर जो पितृगणों में ही देना चाहिए जिनमें पिण्ड संस्थित होता है । तभी से लेकर सूर्य संक्रान्ति में और उपराग आदि पर्वों में मृत होनेवाले दिन में तीन पिण्डों का समाचरण करे । यही एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है । एकोद्दिष्ट का परित्याग करके जो मृत दिन में श्राद्ध किया करता है वह सदा ही पितृगण का हनन करने वाला है और माता तथा भाई का विनाश करने वाला है । मृत दिन में पार्वण श्राद्ध करने वाला मानव अधोपात से भी अधोपात में जाया करता है क्योंकि संपृक्त प्रेतों में आकुली भाव हो जाया करता है । इसी कारण से प्रत्येक सम्वत्सर में एकोद्दिष्ट श्राद्ध का अवश्य ही समाचरण करना चाहिए ।१८-१९।

यावदब्दन्तु यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः ।
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।२२

आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा ।
तेनाग्नौकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥२३॥
त्रिभिः सपिण्डीकरणे अतीते वत्सरे पिता ।
यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात् ॥२४॥
मुक्तोऽपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्जनात् ।
लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥२५॥

जब तक पुत्र को एक वर्ष पूर्ण हो उस वर्ष में बराबर जो कोई विमल मत्सरता वाला होकर श्राद्ध के सहित अन्नका कुम्भ दिया करता है और प्रेत के लिये उसे मनसे समायुक्त करके देता है वह एक अश्वमेध यज्ञ के करने के पुण्य-फल का लाभ करता है ।२२। जिस समय में विधान का ज्ञान रखने वाला श्राद्ध वाला आम श्राद्ध करे अर्थात् कच्चा ही अन्नादि बिना पाक किये हुए देवे तो उसमें अग्निकरण अवश्य ही करना चाहिए और उसी से पिण्डों का भी निर्वपन भी करे ।२३। तीनों के द्वारा सपिण्डीकरण में जब पिता प्राप्त होगा तो बन्धन से वह उस समय में बन्धन से मुक्त हो जाता है ।२४। मुक्त हुआ भी कुश के मार्जन लेप भागित्व को प्राप्त किया करता है । चतुर्थादि लेप भागी है और पित्रादि सब पिण्ड भागी हुआ करते हैं । तात्पर्य यह है कि चौथी पीढ़ी से ऊपर वाले तीन लेप भागी ही हुआ करते हैं और चार पुरुष तक पिण्डों के भागी होते हैं । उनका पिण्ड देने वाला सप्तम होता है अतएव सप्त पुरुष सपिण्डय हुआ करता है ।२५।

१७—श्राद्धयोग्यतीर्थानिवर्णनम्

कस्मिन्कालेन तच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ।
कस्मिन् वासरभागेतुश्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत् ।१
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत् ।
अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये ।२
यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम् ।
तीर्थानि यानि शस्तानि पितॄणां वल्लभानि च ।३
नामतस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।
पितृतीर्थं गया नाम सर्वतीर्थवरं शुभम् ।४
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः ।
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः ।५
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।६
तथावाराणसी पुण्या पितॄणां वल्लभा सदा ।
यत्राविमुक्तसान्निध्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप हम लोगों को यह बतलाने की कृपा कीजिएगा कि किस समय में यह किया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का देने वाला होता है । दिन के किस भाग में श्राद्ध का करनेवाला उस श्राद्ध का समाचरण करे । वे कौन से तीर्थ हैं जिनमें किया हुआ श्राद्ध बहुत फल का देने वाला हुआ करता है ? महामहिम श्री सूतजी ने कहा—दिन में जिस समय में अपराह्न सम्प्राप्त हो जावे उसी समय में अभिजित्रौहिणोदय में जो कुछ भी दिया जाता है वह अक्षय कहा गया है । कौन-कौनसे तीर्थ परम प्रशस्त हैं और पितरों के अधिक प्रिय हैं उनका भी उनका नाम ले लेकर हम बतलाते हैं । हे द्विजोत्तमो ! यह सब संक्षेप से ही हम बतलायेंगे । गया नाम वाला पितृ तीर्थ है जो कि समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठ एवं अति शुभ तीर्थ है ।१-४। वह गया

यह उत्तम तीर्थ है जहाँ पर देवों के भी देवेश्वर पितामह स्वयमेव विराजमान रहा करते हैं। यहीं पर पितृगणों के द्वारा यह गीता कही गयी है। इस गाथा के भाग की अभीप्सा रखने के लिये यह है।४-५। यह यही है कि सर्वथा बहुत से पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। उन बहुत सारे पुत्रों में यदि कोई एक भी कभी गया तीर्थ में चला जावे अथवा अश्वमेध यज्ञ के द्वारा कभी यजन करे या नील वृष का उत्सर्जन करे। तात्पर्य यही है कि जब बहुत पुत्रों की कामना के अनुसार वे उत्पन्न होंगे तो उनमें कभी कोई एक ऐसा भी समुत्पन्न हो सकता है जो गया श्राद्धादि करने वाला होवे। इसी भाँति वाराणसी परम पुण्यमयी पुरी है जो कि सदा ही पितृगण की अत्यन्त वल्लभा रही है जहाँ पर अविमुक्त सान्निध्य प्राप्त होता है जो भुक्ति और मुक्ति दोनों ही के फल को प्रदान करने वाला है।६-७।

पितॄणां वल्लभं तद्वत् पुण्यञ्च विमलेश्वरम् ।
पितृतीर्थं प्रयागन्तु सर्वकामफलप्रदम् ।८
वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः ।
योगनिद्राशयस्तद्वत् सदा वसति केशवः ।९
दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च ।
नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा ।१०
तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम् ।
गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम् ।११
तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्रदे ।
तीर्थन्तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् ।१२
गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः ।
तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत् ।१३
यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजो हरः ।
नेमिस्तु हरिचन्द्राख्यं तीर्थं पुण्यान्यवस्पुरा ।१४

इसी भाँति पितृगणों का अत्यन्त प्रिय और परम पुण्यमय विमलेश्वर है तथा पितृतीर्थ प्रयाग तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला है ।८। वटेश्वर भगवान माधव से समन्वित हैं इसी भाँति से योग निद्रा में शयन करने वाले केशव वहीं पर सदा ही निवास किया करते हैं ।९। दशाश्वमेधिक परम पुण्यतीर्थ है और उसी तरह से गङ्गा द्वार है । इसी भाँति से नन्दा और ललिता एवं अतीव शुभ मायापुरी तीर्थ है ।१०। तथा मित्रपद नामवाला और उसके आगे अनन्तर केदार तीर्थ है । गङ्गा सागर जिसको कहा करते हैं यह तो सभी तीर्थों में परिपूर्ण शुभ है ।११। ब्रह्मसर एक महान् तीर्थ है और शतद्रु सलिल वाले ह्रद में नैमिष नाम वाला तीर्थ है जो सभी मनोरथोंकी पूर्ति करने वाला और सम्पूर्ण तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला है ।१२। गोमती में गङ्गोद्भेद है जहाँ पर भगवान उद्भूत हुए हैं । तथा यज्ञ वराह और देवों के भी देव शूलधृत् प्रभु हैं ।१३। जहाँ पर वह काञ्चन द्वार है और अठारह भुजाओं वाले भगवान् हर हैं । जहाँ पर प्राचीन काल में भगवान् हरि के सुदर्शन चक्र की नेमि शीर्ण हो गयी थी ।१४।

तथैव नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ।
देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम् ।१५
यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत् ।
कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् ।१६
यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः ।
तीर्थमिक्षुमती नाम पितॄणां वल्लभं सदा ।१७
सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा ।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थैः समन्वितम् ।१८
तथा च सरयूः पुण्या सर्वदेवनमस्कृता ।
इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी ।१९
यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती ।

नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा ॥२०
पितृणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः ।
जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गो हि लक्ष्यते ॥२१

यह ही यह नैमिषारण्य है जिसको सभी तीर्थों ने समागत होकर निषेवित किया है। वहाँ पर भी देवों के भी देव वराह भगवान् के दर्शन होते हैं ।१४। जो भी कोई वहाँ पर गमन करता है वह पवित्र आत्मा वाला होकर फिर भगवान् नारायण के ही पद को गमन किया करता है। यह मोक्ष का देने वाला, महान् पुण्य से युक्त और समस्त प्रकार के पापों का हनन कर देने वाला तीर्थ है ।१५। जहाँ पर स्वयं साक्षात् नारसिंह जनार्दन भगवान् निवास किया करते हैं। एक सिद्धवनी नाम वाला तीर्थ है जो सदा ही पितृगणों का परम वल्लभ है।१६। जहाँ पर भागीरथी गङ्गा के सङ्गम में पितर गण सदा ही समवस्थित रहा करते हैं। कुरुक्षेत्र महान् पुण्यवाला तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से संयुत रहा करता है ।१७। इसी प्रकार से सरयू नाम वाली सरिता अतीव पुण्यशालिनी है जिसको समस्त अमर नमस्कार किया करते हैं। इसी भाँति इरावती नाम वाली नदी है जो पितृ तीर्थों की अधिवासिनी है ।१८। यमुना, देविका, काली, चन्द्रभागा, दृषद्वती, वेणुमती नदी तथा परम पुण्यमयी वेत्रवती नदी ये सभी सरितायें पितृगणों की अतीव प्यारी हैं और श्राद्ध में करोड़ों गुण वाली मानी गयी हैं। जम्बूमार्ग महान् पुण्यशाली है जहाँ पर मार्ग दिखलाई दिया करता है ।२०-२१।

अत्रापि पितृतीर्थं तत्सर्वकामफलप्रदम् ।
नीलकुण्डमिति ख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥२२
तथा रुद्रसरः पुण्यं सरो मानसमेव च ।
मन्दाकिनी तथाऽच्छोदा विपाशाथ सरस्वती ॥२३
पूर्वमित्रपदं तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम् ।
क्षिप्रा नदी महाकालस्तथा कालञ्जरं शुभम् ॥२४

शंखोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम्।
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च ।२५
गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः।
एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च ।२६
स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतां नृणाम्।
ओङ्कारं पितृतीर्थञ्च कावेरीकपिलोदकम् ।२७
सम्भेदश्चण्डवेगायास्तीर्थममरकण्टकम्।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत् ।२८

हे उत्तम द्विजगणो ! आज भी यह पितृतीर्थ है जो सभी मनोरथों के फलों को प्रदान करने वाला है। यह पितृतीर्थ नीलकुण्ड इस शुभ नाम से विख्यात है।२२। इसी तरह से रुद्रसर पुण्यमय है और मानसरोवर भी महान् पुण्ययुक्त है। मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा, सरस्वती ये सभी सरितायें महान् पुण्यशालिनी हैं।२३। इसी भाँति पूर्वमें मित्र पद है और वैद्यनाथ तीर्थ महान् फल देने वाला है। भद्रेश्वर-विष्णुपद, नर्मदा, द्वार, शिप्रा नदी महाकाल तथा परम शुभ गालकर शंखोद्भेद—हरोद्भेद और गङ्गोद्भेद महान् फल प्रदान करने वाले सभी पुण्य तीर्थ एवं स्थल हैं।२४-२५। इन सभी तीर्थों को महर्षिगण गया तीर्थ में पिण्ड प्रदान करने के समान ही कहते हैं। ये सभी पितृ तीर्थ हैं और समस्त प्रकार के पापों का संहरण करने वाले हैं।२६। इन उपर्युक्त सभी तीर्थोंकी ऐसी महिमा है कि इनके केवल स्मरणमात्र से ही सब नष्ट हो जाया करते हैं और जो लोग इनमें जाकर श्राद्ध किया करते हैं उनके पुण्य-फल के विषय में तो कहना ही क्या चाहिए। ओङ्कार पितृतीर्थ और कावेरी—कपिलोदक—चण्डवेगा का सम्भेद तथा अमर कण्टक ऐसा महान् तीर्थ है जिसमें स्नानादिक का फल कुरुक्षेत्र से भी सौ गुना अधिक हुआ करता है।२७-२८।

शुक्लतीर्थञ्च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम्।

सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम् ।२९
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसन्निधौ ।
कायावरोहणं नाम तथा चर्मण्वती नदी ।३०
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसम्परम् ।
भैरवं भृगुतुङ्गञ्च गौरीतीर्थमनुत्तमम् ।३१
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम् ।
तथा पापहरं नाम पुण्याथ तपती नदी ।३२
मूलतापी पयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा ।
महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका ।३३
तथा वेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च ।
महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा ।३४
शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम् ।
अङ्गारवाहिका तद्वन्नदी तौ शोणघर्घरौ ।३५

शुक्र तीर्थ परम विख्यात है तथा सोमेश्वर भी परमोत्तम तीर्थ है जो सभी व्याधियों के हरण करने वाला तथा महान् पुण्यकारी और शतकोटि फलोंसे भी अधिक फल प्रदान करने वाला है।२९। श्राद्धकरने में—दान देने में—होम कार्य करने में—स्वाध्याय करनेमें तथा केवल जल की सन्निधि में ही निवास करने में अतीव अधिक पुण्य-फल होता है। एक कायावरोहण नाम वाला तीर्थ है तथा चर्मण्वती नदी है इसी भाँति गोमती एवं वरुणा नदी महान् तीर्थ हैं। इसी भाँति औशनस परम तीर्थ है। भैरव-भृगुतुङ्ग और गौरी तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ हैं।३०-३१। एक वैनायक नाम वाला तीर्थ है और इसके भी परे भद्रेश्वर है तथा पापहर तीर्थ है एक परम पुण्यमयी तपती नाम वाली नदी है।३२। मूलतापी-पयोष्णी तथा पयोष्णी सङ्गम, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ-अवन्तिका तथा पुण्यमयी वेण्या नदी, महाशाल, महारुद्र-महालिङ्ग तथा दशार्णा परम शुभ सरिता है। शतरुद्रा, शताह्वा, परम विश्वपद-अङ्गार

वाहिका और इसी प्रकार से शोण और घर्घर ये दो परम विशाल पुण्य शाली नद हैं। ये सभी अत्युत्तम तीर्थ स्थल हैं।३३-३५।

कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा।
एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः ।३६
श्राद्धमेतेषु यद्दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम्।
द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा ।३७
गोकर्णं गजकर्णञ्च तथा च पुरुषोत्तमः।
द्वारका कृष्णतीर्थञ्च तथार्बुदसरस्वती ।३८
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका।
धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा ।३९
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते।
तीर्थं मेघकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः ।४०
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः।
तथा मन्दोदरी तीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा ।४१
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा।
चक्रवाकं चर्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत् ।४२

कालिका नदी परम पुण्य शालिनी है तथा वितस्ता नाम वाली नदी है। ये सब जो यहाँ तक बताये गये हैं पितृ तीर्थ कहलाते हैं और ये सभी स्नान तथा दान करने में अधिक प्रशस्त माने गये हैं।३६। इन उक्त तीर्थों में जो भी कोई श्राद्ध दिया जाता है वह अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है ऐसा ही बताया गया है। इनके भी अतिरिक्त और भी महान् तीर्थ हैं—द्रोणी वाट नदी धारा सरित्—क्षीर नदी-गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम, द्वारका, कृष्ण तीर्थ, अर्बुद सरस्वती-मणिमती नदी, गिरिकर्णिका—धूतपाप नाम वाला तीर्थ तथा दक्षिण समुद्र ये सभी महा महिमा वाले तीर्थ हैं, इनमें जो कि पितृतीर्थ हैं (जो भी श्राद्ध किया जाता है उसका अनन्त फल प्राप्त हो जाया करता

है। एक मेघ कर नामक तीर्थ है जहाँ पर साक्षात् भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान रहा करते हैं।३७-४०। जिस पुण्य मय देश में शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले भगवान् विष्णु उसकी मेखला में समवस्थित रहा करते हैं। इसी प्रकार से एक मन्दोदरी नाम वाला तीर्थ है और दूसरा चम्पा नाम वाली परम शुभ नदी है जो एक तीर्थ स्थल है।४१। इसी तरह से सामल नाथ और महा शाल नदी है। चक्रवाक, चर्म्म कोट और महान् तीर्थ जम्बेश्वर नाम वाला है।४२।

अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतः परम्।
श्रीशैलं शाङ्करं तीर्थं नारसिंहमतः परम्।४३
महेन्द्रञ्च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम्।
एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम्।४४
दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै।
तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित्।४५
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मलानदी।
नदी गोदावरी नाम त्रिसन्ध्यातीर्थमुत्तमम्।४६
तीर्थं त्र्यम्बकं नाम सर्वतीर्थं नमस्कृतम्।
यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः।४७
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत्।
स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजः।४८
श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थमनुत्तमम्।
तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च।४९

अर्जुन, त्रिपुर-इसके भी परे सिद्धेश्वर-श्रीशैल-शाङ्कर तीर्थ और इससे पर नारसिंह नामक तीर्थ है।४३। उसी भाँति पुण्यशाली महेन्द्र और श्रीरङ्गनाम वाले तीर्थ हैं। इन तीर्थों में भी किया हुआ श्राद्ध अनन्त फलों के प्रदान करने वाला हुआ करता है। श्राद्ध स्नान आदि के द्वारा होने वाले पुण्य के विषय में तो कहा ही क्या जावे ये तो ऐसे महान्

प्रभाव वाली तीर्थ है कि इनके केवल दर्शन मात्रसे ही तुरन्त सब पापों का हरण हो जाया करता है। कुब्जभद्र पुण्यमयी नदी है तथा भीम-रथी नाम वाली सरित् है—भीमेश्वर-कृष्ण वेणा, कावेरी, कुड्मला नदी-गोदावरी सरिता और उत्तम त्रिसन्ध्या नाम वाला तीर्थ है। त्रैयम्बक नामधारी तीर्थ सभी तीर्थों के द्वारा वन्द्यमान होता है जहाँ पर भगवान् ईश स्वयं ही साक्षात् त्रिलोचन प्रभु विराजमान रहा करते हैं। इन उपरिकथित समस्त तीर्थों में किया या किया हुआ श्राद्ध करोड़ों—करोड़ों गुणों वाला हुआ करता है। हे द्विजगण! इन तीर्थों की तो ऐसी विलक्षण महिमा है कि इनके केवल स्मरण मात्रसे ही पाप समस्त हरण हो जाया करते हैं। श्रीपर्णी—ताम्रपर्णी—जयमयवा तीर्थ—पुण्यमयी मत्स्य नदी और शिवधारा ये भी महान् तीर्थ हैं।४४-४९।

भद्रतीर्थं च विख्यातं पम्पातीर्थं च शाश्वतम् ।
पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलं पुरम् ।५०
अङ्गभूतं च विख्यातमामर्दकमलं शुभम् ।
आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्रकमतः परम् ।५१
गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदकम् ।
सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ।५२
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः ।
इन्द्रकीलं महानादस्तथा च प्रियमेलकम् ।५३
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु ।
एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं दृश्यते यतः ।५४
दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम् ।
बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम् ।५५
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा ।
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ।५६

भव तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है तथा शाश्वत पम्पा तीर्थ है—परम पुण्यमय रामेश्वर है और उसी भाँति एलापुर नाम वाला परमोत्तम पुर है—अङ्गभूत विख्यात तीर्थ है—आनन्द कानन, कुब्ज, आम्रात केश्वर—इसके आगे एकाम्रक तीर्थ है ।५०-५१। गोवर्द्धन-हरिश्चन्द्र कपुश्चन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली, नदी—यहीं पर रामाधिवास है तथा सौमित्रि संगम नाम वाला तीर्थ है । इन्द्रनील—महानाद—प्रिय मेलक नाम वाले तीर्थ हैं ।५२। ये सभी तीर्थ सदा श्राद्ध देने के लिए परम अधिक प्रशस्त माने गये हैं । एक बाहुदा नाम वाली अति पुण्य मयी नदी है तथा गन्धमुख सिद्ध वन नाम वाला तीर्थ है ।५३-५४। एक पाशुपत नाम वाला तीर्थ है । तथा परम शुभ पार्वतिका नाम धारिणी नदी है—इन तीर्थों में किया हुआ श्राद्ध कोटिगुण से भी अधिक पुण्य फल के प्रदान करने वाला हुआ करता है ।५५-५६।

तथैव पितृतीर्थन्तु यत्र गोदावरी नदी ।
युता लिङ्गसहस्रेण सव्यान्तरजलावहा ।५७
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् ।
प्रतीकस्य भयाद्भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ।५८
तत्तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंज्ञितम् ।
श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम् ।५९
तथा सहस्रलिङ्गञ्च राघवेश्वरमुत्तमम् ।
सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ।६०
निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमाप्तवान् ।
तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ।६१
तीर्थन्तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च ।
सोमपानञ्च विख्यातं यत्र वैश्वानरायतनम् ।६२
तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च ।
मलन्दरानदी पुण्या कौशिकीचन्द्रिका तथा ।६३

इसी भाँति यह पितृ तीर्थ है जहाँ पर गोदावरी नदी है जो सहस्र लिङ्गों से संयुत सर्वान्तर जलावहा है ।५७। यह महर्षि जामदग्न्य का तीर्थ है जो अग्नितुल्य है और क्रम से समागत हुआ है । प्रतीक के भय से भिन्न है जहाँ पर गोदावरी नदी है ।५८। यह तीर्थ हव्य और कव्यों का है जो अप्सराओं युग को देने वाला है । यह श्राद्ध-अग्नि कार्य और दानों के देने में सैकड़ों करोड़ अधिक फल देने वाला है ।५९। इसी भाँति सहस्र लिङ्ग रामेश्वर—कृष्ण शालिनी मन्दाकिनी नदी है जिस स्थल पर प्राचीन काल में इन्द्र पतित हो गया था । इन्होंने नमुचि का निहनन करके फिर घोर तपश्चर्या की थी जिसके प्रभाव से इसने स्वर्ग को प्राप्त किया था । वहाँ पर मनुष्यों के द्वारा दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का प्रदान करने वाला हुआ करता है ।६०-६१। पुष्कर नाम वाला तीर्थ है और इसी तरह से शालग्राम तीर्थ है । सोम पान तीर्थ भी परम विख्यात तीर्थ है जहाँ पर वैश्वानर का आलय है । एक सारस्वत नाम वाला तीर्थ है तथा वहाँ पर कौशिकी और चन्द्रिका नामों वाली भी दो नदियाँ हैं जो कि महान तीर्थ हैं ।६२-६३

वैदर्भा चाथ वेणा च पयोष्णी प्राङ्मुखा परा ।
कावेरी चोत्तरा पुण्या तथा जालन्धरो गिरिः ।६४
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।
लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ।६५
विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम् ।
कुब्जाम्रन्तु तथा तीर्थमुर्वशीपुलिनं तथा ।६६
संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम् ।
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।६७
अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च ।
तथा वसिष्ठं तीर्थन्तु हारीतं तु ततः परम् ।६८
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च ।
पिण्डारकञ्च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च ।६९

घण्टेश्वरं बिल्वकञ्च नीलपर्वतमेव च ।
तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ॥७०॥

इसके अतिरिक्त वैदर्भी— वैतरणी-श्राद्ध, मत्स्यानदी-कावेरी— अलग पुण्या नदियाँ भी परम पुण्यमय तीर्थ स्वरूप हैं तथा जालन्धर नामक वहीं पर एक गिरि है।६४। ये सभी श्राद्ध देने वाले तीर्थ हैं जिनमें दिया हुआ श्राद्ध अनन्तता के फल वाला हो जाया करता है। लोहदण्ड नाम वाला तीर्थ है तथा चित्रकूट तीर्थ है।६५। विन्ध्य योग और गङ्गा का शुभ तट है। एक कुब्जाम्र तीर्थ है और उर्वशी पुलिन तीर्थ है। संसार मोचन और ऋण मोचन नाम वाले भी तीर्थ हैं—इन पितृ तीर्थों में किया श्राद्ध-श्राद्ध के करने वाले मानव को अनन्त फलों का भोग कराया करता है।६६-६७। अट्टहास तीर्थ है गौतमेश्वर तीर्थ है। एक वशिष्ठ नामक तीर्थ है और इसके आगे हारीत नाम वाला तीर्थ है। ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हयतीर्थ, विख्यात पिण्डारक तीर्थ तथा शंखोद्धार, घण्टेश्वर, बिल्वक, नील पर्वत, धरणीतीर्थ तथा रामतीर्थ ये सभी पितृ तीर्थ हैं जिनमें श्राद्ध करने वाले श्राद्ध देकर परमपद की प्राप्ति किया करते हैं।६८-७०।

अश्वतीर्थञ्च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः ।
तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी ॥७१॥
तीर्थं वसुप्रदं नामच्छागलाण्डं तथैव च ।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम् ॥७२॥
तथा च बदरीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च ।
जयन्तं विजयञ्चैव शुक्रतीर्थं तथैव च ॥७३॥
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा ।
तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा ॥७४॥
वैकुण्ठतीर्थञ्च परं भीमेश्वरमथापि वा ।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥७५॥

तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा ।
कुशेशयञ्च विख्यातं गौरीशिखरमेव च ॥७६
नकुलेशस्य तीर्थञ्च कर्दमालं तथैव च ।
दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुरं तथा ॥७७

श्राद्ध और दान — इन दोनों ही के लिए परम तीर्थ परम विख्यात है। एक वेदशिर नाम वाला तीर्थ है और ओघवती नदी है। कुशप्लव तीर्थ है और इसी तरह से एक छागलाण्ड नामक तीर्थ है। इन तीर्थों में श्राद्ध वाला लोग परमोत्तम पद को प्राप्त किया करते हैं ।७१-७२। बदरी तीर्थ गया, नर्मदा, विजय, शुक्र, श्रीपति, रैवतक, शारदा, भद्रकालेश्वर, वैकुण्ठ, भीमेश्वर तीर्थ ये सभी तीर्थ हैं और इन तीर्थों में पहुँच कर श्राद्धों को देने वाले मानव परम गति की प्राप्ति का लाभ किया करते हैं ।७३-७४। मातृगृह नाम वाला तीर्थ — करवीर, कुशेशय विख्यात गौरी शिखर नाम का तीर्थ, नकुलेश का तीर्थ, कर्दमाल, दिण्डि पुण्यकर और पुण्डरीक पुरनाम वाला तीर्थ है ।७५-७७।

सप्त गोदावरी तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरम् ।
तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः ॥७८
एषतूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया ।
वागीशोऽपिनशक्नोति विस्तरात् किमुमानुषः ॥७९
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थन्तु समुदाहृतम् ॥८०
एतत्तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते ।
यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत् ॥८१
प्रातः कालोमुहूर्तांस्त्रीन्संगवस्तावदेव तु ।
माध्याह्नस्त्रिमुहूर्तःस्यादपराह्णस्ततः परम् ॥८२
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।

राक्षसी नामसा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ।८३

अष्टमो मुहूर्तो विख्यातो दश पञ्च च सर्वदा ।

तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ।८४

सप्त गोदावरी तीर्थ समस्त तीर्थों का ईश्वर तीर्थ है। जो श्राद्ध के देने से अनन्त फल प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य हैं उनको यहाँ पर श्राद्ध अवश्य ही देना चाहिए ।७७। यह श्राद्ध के उद्देश्य को लेकर हमने तीर्थों का एक संग्रह आप लोगों के समक्ष में कह दिया है। इन समस्त तीर्थों का विस्तार तो बहुत ही विशाल है जिसको विस्तार से मानव की तो शक्ति ही क्या है बृहस्पति भी नहीं कह सकते हैं जो वाणी के ईश कहे जाते हैं ।७८। वस्तुतः विचार किया जावे तो सत्य का पूर्ण परिपालन करना भी तीर्थ है—प्राणिमात्र पर दया करना भी एक प्रकार का महान् तीर्थ है तथा अपनी सब इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह रखना भी तीर्थ है। वर्णों और आश्रमों का देह में भी इस प्रकार से तीर्थ विद्यमान है जो समुपाख्यात किये गये हैं। इन तीर्थों में भी जो श्राद्ध दिया जाता है उसका करोड़ गुना फल हुआ करता है। अतएव जिस-जिस प्रयत्न से तीर्थ में अवश्य ही मनुष्य को श्राद्ध देना चाहिए ।७९-८०। प्रातःकाल में तीन मुहूर्त तक रहता है संगव होता है। फिर मध्याह्न में तीन मुहूर्त वाला है उसके पश्चात् अपराह्न होता है। सायाह्न में तीन मुहूर्त वाला है उसमें श्राद्ध कभी नहीं करना चाहिए। यह राक्षसी नाम वाली वेला हुआ करती है जो सभी कर्मों में गर्हित मानी गयी है। सर्वदा दिन के मुहूर्त को दस और पाँच घड़ियाँ विख्यात है। उनमें जो अष्टम मुहूर्त होता है उसी काल को कुतुप काल कहा गया है ।८३-८४।

मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दो भवति भास्करः ।

तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो भविष्यति ।८५

मध्याह्नखड्ग पात्रञ्च तथा नेपालकम्बलः ।

रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ।८६
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः ।
अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुताः ।८७
ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ।
मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत् स्वधाभवनमिष्यते ।८८
विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।
श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत् प्राहुर्दिवौकसः ।८९
तिलोदकाञ्जलिर्देयो जलस्थैस्तीर्थवासिभिः ।
सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते ।९०
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते ।
तर्पणन्तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः ।९१

अतः मध्याह्न काल में सर्वदा जिस समय में भगवान् भास्कर मन्दीभूत हो जाया करते हैं। उस काल में श्राद्ध किया हुआ अनन्तफल देने वाला होता है तभी उसका आरम्भ होवे ।८५। मध्याह्न, खंग, पात्र, नेपाल कम्बल, रूप्य, दर्भ, तिल, गौएँ और आठवाँ दौहित्र कहा गया है। सन्तापकारी उसका कुत्सित पाप कहा जाता है। क्योंकि ये आठ हैं इसी लिए ये कुतुप कहे गये हैं और इसी नाम से विश्रुत भी हैं ।८६-८७। कुतुप मुहूर्त से ऊर्ध्व में जो चार मुहूर्त हैं इस तरह से यह मुहूर्त पञ्चक स्वधा का भवन अभीष्ट हुआ करता है ।८८। कुश और कृष्ण तिल ये भगवान विष्णु के देह से ही समुद्भूत हुए हैं ये श्राद्ध की रक्षा करने के लिए समर्थ होते हैं—ऐसा देवगण ने कहा है ।८९। तिलों से युक्त जल की अञ्जलि जल में स्थित हुए तीर्थवासियों को देना चाहिए। दर्भ के सहित एक हाथ से करे। इस प्रकार से श्राद्ध विशेषता वाला होता है ।९०। श्राद्ध के साधन काल में एक ही हाथ से दिया जाता है। तर्पण होता है वह दो से होता है। सदा यह विधि कही गयी है ।९१।

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ।
पुरा मत्स्येन कथितं तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम् ।
शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान् सञ्जायते नरः ॥६२
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः ।
सर्वपापोपशान्त्यर्थं अलक्ष्मीनाशनं परम् ॥६३

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरञ्च पुंसाम् ।
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितञ्च श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः ॥६४

महर्षि सूतजी ने कहा—इन तीर्थों में श्राद्ध करने का अनुकीर्तन प्राचीन काल में मत्स्य भगवान् ने कहा था। यह परम पुण्यमय-आयु का वर्धन करने वाला और सब प्रकार से महान् से महान् पापों का विनाश करने वाला है। जो इस तीर्थ श्राद्धानुकीर्तन का श्रवण किया करता है अथवा इसको पढ़ता है वह मनुष्य श्रीमान् होकर ही जन्म ग्रहण किया करता है ॥६२। श्राद्ध के समय में तीर्थवासियों को इसे बोलना चाहिए। यह सर्व पापों के लिए और अलक्ष्मी के नाश करने वाला होता है ॥६३। यह परम पवित्र है तथा यश का स्थान है और पुरुषों के महान् पापों का संहरण करने वाला है। इसका अभ्यर्चन ब्रह्मा-अर्क और रुद्र के द्वारा भी किया गया है। इसका ज्ञान रखने पुरुष इस श्राद्ध के माहात्म्य को कहा करते हैं ॥६४।

१८—ययाति चरित्र

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम ।
वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी ॥१
तेन दासी सहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा ।
तमेव देशं संप्राप्ता यथा कामं चचार सा ॥२

ताभिः सखीभिः सहिताः सर्वाभिर्मुदिता भृशम् ।
क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम् ।३
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च ।
पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया ।४
तमेव देशं संप्राप्तो जलार्थी श्रमकर्षितः ।
ददर्श देवयानीं च शर्मिष्ठां ताश्च योषितः ।५
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः ।
उपविष्टाञ्च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम् ।६
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम् ।
शर्मिष्ठयासेव्यमानांपादसम्वाहनादिभिः ।७

शौनक मुनि ने कहा—हे नृपोत्तम ! इसके अनन्तर बहुत समय के बाद वह भामिनी वह देवयानी उसी वन में क्रीड़ा विहार करने के लिए निकल कर गयी थी ।१। उस समय में एक सहस्र दासी और शर्मिष्ठा के साथ उसी देश में समुपागत हुई थी और उसने इच्छा के अनुसार वहाँ पर विचरण किया ।२। उन्हीं सब सखियों के साथ अत्यन्त ही मुदित थी । सब क्रीड़ा करती हुई अभिरत थीं तथा माधव मधु का पान कर रही थीं । अनेक भक्ष्यों को खा रही थीं तथा नाना भाँति के फलों का अशन करती जा रही थीं पुनः मृगया की इच्छा रखने वाला नाहुष राजा यदृच्छा से उसी देश में समुपागत हो गया था । वह राजा जल की लिप्सा रखनेवाला और अत्यधिक प्यासा था । उसने देवयानी को तथा शर्मिष्ठा अन्य सभी योषितों को वहाँ पर देखा था ।३-५। वे सभी ललनायें दिव्य आभरणों से विभूषित थीं और पान कर रही थीं । वहाँ पर उसने शुचि स्मित वाली उपविष्ट देवयानी को भी देखा था ।६। वह देवयानी उन समस्त ललनाओं के मध्य में विराजमान रूप लावण्य से अनुपम और परम सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुख वाली थी शर्मिष्ठा के द्वारा सेव्यमान थी जो कि देवयानी के पादों का सम्वाहन आदि कर रही थी ।७।

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते।
गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यतो ह्यहम् ॥८
आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप।
शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम् ॥९
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी।
दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥१०
कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी।
असुरेन्द्रसुता सुभ्रु! परं कौतूहलं हि मे ॥११
सर्व एव नरव्याघ्र! विधानमनुवर्त्तते।
विधिना विहितं ज्ञात्वा मा विचित्रमनः कृथाः ॥१२
राजवद्रूपवेषौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च।
किं नामा त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे ॥१३
ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः।
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः ॥१४

राजा ययाति ने कहा—दो ही सहस्र कन्याओं के द्वारा दो कन्यायें परिवारित हैं। अतएव मैं आप दोनों के गोत्र और नाम पूछता हूँ ।८। देवयानी ने कहा—हे नराधिप! मैं अब कहती हूँ, आप मेरे वचन को ग्रहण कीजिए। शुक्राचार्य नाम वाले असुरों के गुरु हैं उन्हीं की पुत्री मुझको आप जानिए ।९। यह मेरी सखी दासी है। जहाँ पर भी मैं जाती हूँ वहीं पर यह भी मेरे ही साथ में गमन करने वाली होती है। यह तो दानवेन्द्र वृषपर्वा की दुहिता शर्मिष्ठा है ।१०। राजा ययाति ने कहा—यह वरवर्णिनी कन्या तुम्हारी दासी सखी कैसे हो गई है? हे सुभ्रु! यह तो असुरेन्द्र की सुता है। यह आपकी दासी कैसे बन गई है? मेरे हृदय में इस बात का अत्यधिक कौतूहल हो रहा है ।११। देवयानी ने कहा—हे नर व्याघ्र! इस संसार में सभी कुछ विधाता के द्वारा किए हुए विधान का ही अनुवर्त्तन किया करता है। विधि के

द्वारा किये हुए विधानको समाप्त कर मन में किसी भी प्रकार का कौतूहल मत कीजिए ।१२। आपका रूप और वेष भूषा तो एक राजा के ही समान में और जो बाणी बोल रहे हैं वह ब्राह्मी है । आप यह बतलाइये कि आपका शुभ नाम क्या है और आप कहाँ से आये हैं तथा किसके आप पुत्र हैं ? ।१३। ययाति ने कहा—सम्पूर्ण वेद का अध्ययन मैंने ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हुए किया है—मैं अवश्य ही एक राजा और राजा का ही पुत्र हूँ तथा मेरा नाम ययाति—यह विश्रुत है ।१४।

केन कार्येण नृपते ! इमं देशं समागतः ।
जिघृक्षुर्वारि यत्किञ्चिदथवा मृगलिप्सया ।१५
मृगलिप्सुरहं भद्रे ! पानीयार्थमिहागतः ।
बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ।१६
द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठया सह ।
त्वदधीनास्मि भद्रं ते सखे ! भर्ता च मे ।१७
विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वामर्होऽस्मि भामिनि ।
अविवाह्याः स्म राजानो देवयानि ? पितुस्तव ।१८
संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्माणि संस्थितम् ।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाङ्गावहस्व माम् ।१९
एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वरानने ।
पृथग्धर्माः पृथक् शौचास्तेषां वै ब्राह्मणो वरः ।२०
पाणिग्रहो नाहुषायं न पुम्भिः सेवितः पुरा ।
त्वमेनमग्रहीरग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ।२१
कथं नु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान्स्पृशेत् ।
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया ।२२

देवयानी ने कहा—हे राजन् ! यहाँ पर इस देश में किस प्रयो-

जन्म से समागत हुए हैं? आप क्या कुछ जलपान करने के इच्छुक हैं अथवा मृगया की इच्छा से ही इस स्थल पर आपने पदार्पण किया है? ।१५। ययाति ने उत्तर दिया—हे भद्रे! मैं मृग की शिकार को करने का इच्छुक ही हूँ यहाँ पर तो केवल जल पीने के ही लिए आ गया हूँ। मैं बहुधा अनुयुक्त भी हुआ हूँ। आपकी कुछ सेवा हो तो आप मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए।१६। देवयानी ने कहा—हे सखे! आपका परम कल्याण होवे। दो सहस्र कन्याओं से युक्त तथा अपनी शर्मिष्ठा के सहित सब आपके ही अधीन हो गई हैं। अब आप ही मेरे भर्त्ता हो जाइए।१७। राजा ययाति ने उत्तर दिया—हे भामिनि! आप विप्र के अधीना अर्थात् शुक्राचार्य की पुत्री हैं। आपका परम कल्याण हो। मैं आपके पति बनने के योग्य नहीं हूँ। हे देवयानि! आपके पिता के यहाँ राजा लोग विवाह करने के योग्य नहीं हो सकते हैं।१८। देवयानी ने कहा—ब्रह्म ने ही सबका सृजन किया है। अतः ब्रह्म के द्वारा क्षत्रिय वर्ण संयुक्त है तथा ब्रह्म से क्षत्र सम्मिश्रित है। ऋषि और महर्षियों के पुत्र सभी तो उन्हीं से हुए हैं। इसमें कुछ भी भेद-भाव नहीं है। हे नाहुष! अब आप मुझे स्वीकार कर लीजिए।१९। ययाति ने कहा—हे वरानने! यह ठीक है कि चारों ही वर्ण एक ही ब्रह्माजी के देह से समुद्भूत हुए हैं किन्तु यह भी तो है कि प्रत्येक वर्ण के पृथक्-पृथक् धर्म शौच और आचार हुआ करते हैं और इन सब वर्णों में ब्राह्मण वर्ण सर्वश्रेष्ठ वर्ण होता है।२०। देवयानी ने कहा—हे नहुष महाराज के पुत्र! मेरे पाणि (हाथ) का ग्रहण इस समय से पूर्व में किसी भी पुरुष के द्वारा नहीं हुआ है। आपने ही सबसे आगे इसे ग्रहण किया है। इसीलिए मैं तो आपका ही वरण करती हूँ।२१। अब मनस्विनी मेरा यह पाणि किस तरह कोई अन्य पुरुष स्पर्श करेगा। आप ऋषि के पुत्र हैं अथवा स्वयं ऋषिराज् ऋषि आपने इसको ग्रहण किया है।२२।

क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता ।२३

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ।२४
हन्त्याशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः ।२५
दुराधर्षतरो विप्रस्तस्मात् भीरु ! मतो मम ।
अतो दत्तामपि पित्रा त्वां भद्रे ! न विवहाम्यहम् ।२६
दत्तां वहस्व पित्रा मां त्वं हि राजन् ! वृणोमया ।
अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः ।२७

राजा ययाति ने कहा—अत्यन्त क्रूर सर्पों तथा सर्वतोमुख अग्नि से भी अधिक विप्र विद्वान रखने वाले पुरुष के द्वारा दुराधर्षतर हुआ करता है ।२३। देवयानी ने कहा—हे पुरुषों में परमश्रेष्ठ ! आप यह बतलाइये कि आशीविष सर्प से और सभी ओर मुख वाले अग्नि से विप्र दुराधर्षतर कैसे होता है ? ।२४। राजा ययाति ने कहा—आशीविष सर्प तो एक ही किसी का हनन किया करता है और वह एक शस्त्र के द्वारा वध किया जाता है । यदि कोई कुपित हो जाता है तो वह राष्ट्रों के सहित समस्त पुरों का दाह कर दिया करता है । विप्र के वचन और शाप में तो महान् प्रबल शक्ति विद्यमान रहा करती है । हे भीरु ! इसी कारण से विप्र अधिक दुराधर्ष मेरे विचार से माना गया है । इसीलिए हे भद्रे ! आपके पिता के द्वारा भी दी हुई आपके साथ मैं विवाह नहीं करता हूँ ।२५-२६। देवयानी ने कहा—हे राजन् ! आप मेरे पिता के द्वारा प्रदान की गई मुझे वरण करो क्योंकि मैंने तो आप को ही वरण कर लिया है । बिना याचना किए हुए आपको कुछ भी भय नहीं है और दी हुई मुझको आप ग्रहण कीजिए ।२७।

त्वरितं देवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः ।
सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ।२८

श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः ।
दृष्ट्वैव चागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः ।२९
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
तं चाप्यभ्यवदत्काव्यः साम्ना परमवल्गुना ।३०
राजायं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत् ।
नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे ।३१
वृतोऽनया पतिर्वीर ! सुतया त्वं ममेष्टया ।
गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ! ।३२
अधर्मो मां स्पृशेदेवं पापमस्माच्च भार्गव ! ।
वर्णसंकरजो ब्रह्मन् ! इति त्वां प्रवृणोम्यहम् ।
अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम् ।
अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहोपापं नुदामि ते ।३३
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं सुमध्यमाम् ।
अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ।३४
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
संपूज्या सततं राजन् ! मा चैनां शयने ह्वयेः ।३५
एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
जगाम स्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना ।३६

शौनक महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर देवयानी ने तुरन्त ही अपने पिता के समीप में धात्री को प्रेषित कर दिया था। उस भेजी गयी धात्री ने उनको सभी कुछ ठीक-ठीक निवेदन कर दिया था। धात्री के द्वारा राजा का वहाँ पर आगमन सुनते ही भार्गव मुनि ने राजा को वहीं उपस्थित होकर दर्शन दिया था। राजा ययाति ने वहाँ पर समागत हुए उस विप्र का दर्शन किया तो बड़े वेग के साथ उठकर ययाति ने ब्राह्मण शुक्र की वन्दना की थी और दोनों हाथ जोड़कर प्रणत होते हुए उनके समक्ष में स्थित हो गया था। भार्गव मुनि ने भी राजा होने के नाते परम वल्गु साम के द्वारा उस ययाति का अभ्यभिवादन किया

था ।२८-३०। देवयानी ने कहा—हे तात ! यह नहुष के पुत्र ययाति नामधारी राजा हैं। इन्होंने दुर्गम दशा में मेरा पाणि का ग्रहण किया था। मैं आपकी सेवा में प्रणाम निवेदित करती हूं। आप मुझको इन्हीं की पत्नी के रूप में प्रदान कर दीजिए क्योंकि मैं लोक में अन्य किसी को पति के रूप में वरण नहीं करूँगी ।३१। शुक्र ने कहा—हे वीर ! इस कन्या देवयानीने आपको ही अपना पतिवरण कर लिया है। यह मेरी परम प्रिय एवं सुता है। नहुषात्मज ! अब मेरे द्वारा समर्पित की हुई इसको ग्रहण कीजिए और अपनी गृहिणी इसे बना लीजिए ।३२। राजा ययाति ने कहा—हे भार्गव ! इस प्रकार से करने पर तो अधर्म मुझे स्पर्श करेगा और इसे स्वीकार करनेमें पाप होगा। हे ब्रह्मन् ! वर्ण तो वर्णों का सङ्कर हो जायगा—इसीलिये मैं आपसे निवेदन करता हूं। शुक्राचार्य ने कहा—मैं इस अधर्म से आपको विमोचित किये देता हूं। आपको जो भी कुछ अभीष्ट वरदान हो वह अब मुझसे माँगलो। इस विवाहके करने में आप ग्लानि के ही योग्य होंगे और यह जो कुछ भी पाप है उसमें से आपका उद्धार कर दूंगा ।३३। हे राजन् धर्म से इस सुमि तन्वी देवयानी को आप भार्या के स्वरूप में ग्रहण कीजिए। इसके साथ आप अतुलनीय प्रीति प्राप्त करेंगे ।३४। यह तुम्हारी कुमारी शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी है। हे राजन् निरन्तर भली भाँति पूजन करके इसके साथ शयन मत करना ।३५। महर्षि शौनकजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए ययातिने शुक्राचार्यकी परिक्रमा की और परम प्रसन्न होकर अनुज्ञा प्राप्त होने पर जो कि महात्मा शुक्र ने दी थी वह अपने पुर में चला गया था ।३६।

१६—ययात्यष्टकसम्वादवर्णन

यदा वसन्नन्दने कामरूपो संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तद्वै वसुधामन्वपद्यः ॥१
ज्ञाति सुहृत् स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः खेचरा देवसङ्घाः ॥२
कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति सम्मुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।
किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे ॥३
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव सर्वे ।
ते कङ्कगोमायुबलाशनार्थे क्षीणा विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ॥४
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयञ्च कर्म्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतद् भूयश्चेदानीं वद किं ते वदामि ॥५
यदा तु तान्वै वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि ॥६

अष्टक ने कहा—काम रूप नन्दन वन में एक से अयुत (दस सहस्र) सम्वत्सरों तक वास करते हुए कार्त्तयुग प्रधान इसका त्याग करके पुनः इस वसुधा पर आप ही क्यों आ गये इसका क्या कारण है? ।१। ययाति ने कहा—जिस तरह से यहाँ पर वित्त के क्षीण हो जाने पर मानवों के द्वारा अपनी जाति वाला—सुहृद और स्वजन त्याग दिया जाया करता है उसी भाँति स्वर्ग में ईश्वर देवों के गण से भी क्षीण पुण्य वाले मनुष्य को तुरन्त ही त्याग दिया करते हैं ।२। अष्टक ने कहा—वहाँ पर पुण्यों को क्षीण करने वाले कैसे हो जाते हैं—इस विषय में मेरा मन अत्यधिक मोहित हो जाता है। किस विशेषता से युक्त पुरुष किसके धाम को जाया करते हैं—यह सब आप हमको बतलाइये क्योंकि मेरे विचार से आप क्षेत्रज्ञ लोक के वेत्ता हैं ।३। ययाति ने कहा—हे नरदेव! लालप्यमान सब इस आपके भूमिमें स्थूल काले नरक में गिरा करते हैं।

से कष्ट-सौभाग्य मनावन के लिए मनुष्य भूमि में विशेष वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।४। हे नरेन्द्र ! इस कारण से इस प्रकार से लोक में दुष्ट और मनुष्यों के योग्य कर्मों का वर्णन कर देना चाहिए । हे पार्थिव! यह सभी कुछ आपको बता दिया गया है और फिर अब बतलाइये कि मैं आपको मैं क्या बतलाऊँगा ?।५। अष्टक ने कहा—जिस समय में वे पक्षी तथा वृक्ष-विनिकृष्ट और पतङ्ग उनको उत्पीड़ित किया है ? । आपसे ही इस अत्यन्त भयानक नरक के विषय में श्रवण करना चाहता हूँ ।६।

ऊर्ध्वं देहात्कर्मणो जृम्भमाणात् व्यक्तं पृथिव्यामनुसञ्चरन्ति ।
इमं भौमं नरकन्ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ।७
षष्टिः सहस्राणि पतन्ति व्योम्नि तथाशीतिरेव तु वत्सराणाम् ।
तान्वै तुदन्ते प्रपतन्तःप्रपातान् भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।८
यदैतांस्ते संपतन्तस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथं भूता गर्भभूता भवन्ति ।९
अस्रं रेतः पुष्परसानुयुक्तं अन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम् ।
तद्वै तस्यारज आपद्यते च स गर्भभूतः समुपैति तत्र ।१०
वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदञ्चापि सर्वं एवं भूता गर्भभूता भवन्ति ।११
अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भे उताहो स्वित् स्वेन कामेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमेतामाचक्ष्व मे संशयात् पृच्छतस्त्वम् ।१२
शरीरदेहादिसमुच्छ्रयञ्च चक्षुः श्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्टः क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे ।१३

ययाति ने कहा—जृम्भमाण देहान्तकर्मों से ऊर्ध्व में व्यक्त रूप से पृथिवी में अनुसंचरण किया करते हैं । वे इस भूमिमें रहने वाले भौमके नरक में गिरा करते हैं और अनेक वर्षों के समूह को नहीं देखते हैं ।७। साठ सहस्र तथा अस्सी सहस्र वर्ष तक व्योम में गिरा करते हैं । प्रपात करते हुए उनको प्रपतन करते हुए तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले महा भयानक भौम

राक्षस पीड़ित किया करते हैं।८। अष्टक ने कहा—जिस समय में वे संपातन करते हुए तीक्ष्ण दाढ़ों वाले भयानक भौम राक्षस इनको उत्पीड़ित किया करते हैं तो कैसे होते हैं—कैसे चारों ओर होते हैं और कैसे भूमि के गर्त में मग्न हुआ करते हैं।९। ययाति ने कहा—पुरुष के द्वारा सृष्ट रेत पुष्प रस से अनुयुक्त असृक् (रक्त) तुरन्त ही अनुगमन करता है। वह उसका रज आपन्न होता है और वह वहीं पर गर्भभूत होता हुआ समुपागमन किया करता है।१०। वनस्पति और औषधियों में आविष्ट होते हैं—जल, वायु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, चतुष्पद, द्विपद ये सब इस प्रकार से होते हुए गर्भभूत होते हैं।११। अष्टक ने कहा—यहाँ गर्भ में कोई अन्य वपु धारण करता है अथवा अपनी ही इच्छा से आया करता है जब कि वह नर योनि को प्राप्त होता हुआ रहता है—यह सब मुझे बतलाइये, मैं संशय होने के कारण से आपसे पूछ रहा हूँ।१२। शरीर देहादि का समुच्छ्रय—चक्षु और श्रोत्र किससे संज्ञा को प्राप्त किया करता है? हे तात! आप से पूछा गया है आप सभी कुछ बतलाइए। आपको सभी क्षेत्रज्ञ मानते हैं।१३।

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम्।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम्।१४
स जायमानोऽथ गृहीतमात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च।१५
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाऽथो रसञ्च त्वचा स्पर्शं मनसा वेदभावम्।
इत्यष्टकेहोपचितं हि विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे।१६
यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वापि निकृष्यते वा।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मना चेतयते पुरस्तात्।१७
हित्वा सोऽसून् सुप्तवन्निष्ठितत्वात् पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतञ्च।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां हित्वा देहं भजते राजसिंह।१८

पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति ।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापान्न मे विवक्षास्ति महानुभाव ।।१९
चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च तथा भूता गर्भभूता भवन्ति ।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ।।२०

राजा ययाति ने कहा—पुरुष रस से अनुयुक्त रेत को ऋतुकाल में वायु समुत्कर्षित किया करता है। उतना ही अधिकार करने वाला वह वहाँ पर क्रम से गर्भ को संवर्धित किया करता है।१४। इसके उपरान्त जब वह जायमान होता है तो गात्र को ग्रहण करने वाला हो जाता है। इसके पश्चात् वह मनुष्य संज्ञा को अधिष्ठित हुआ करता है। वह श्रोत्रों से वहाँ पर शब्द का ज्ञान करता है और वह रूप को चक्षु से देखता है।१५। घ्राण से गन्ध को पहिचानता है तथा जिह्वा से रस और त्वचा से स्पर्श और मन से भावों को जानता है। प्राणधारी महात्मा के शरीर में इस अष्टक में उपचित समझलो।१६। अष्टक से अच्छा-भी संचित पुरुष जला दिया जाता है—गाड़ दिया जाता है अथवा निकृष्ट किया जाता है अभावभूत वह विनाश को प्राप्त होकर फिर किसके द्वारा अपने आत्माको चैतन्य स्वरूप देकर दर्शित किया करता है।१७। राजा ययाति ने कहा—यह प्राणों का त्याग करके एक पुरुष की भाँति निश्चित होने से अपने जीवन में विहित सुकृत और दुष्कृत भागी रहकर ही पुण्य-पाप के अनुसार अन्य योनि को भजता है और इस देह का त्याग कर दिया करता है। हे राजसिंह! अधम शरीर के त्याग के बाद ऐसा ही हुआ करता है जिसमें पुण्य-पाप की प्रधानता होती है।१८। जो पुण्य कर्मों के करने वाले लोग होते हैं वे पुण्य योनि में ही प्रवेश किया करते हैं और जो पापकर्मों करने वाले हैं वे पापयोनि में जाया करते हैं। हे महानुभाव! कीट और पतङ्ग पाप से होते हैं यह मेरी विवक्षा नहीं है।१९। चतुष्पद-द्विपद और पक्षीगण इस प्रकार से हुए गर्भभूत होते हैं यह हमने सभी कुछ कह दिया है। हे राजसिंह पुनः अब क्या पूछते हो।२०।

किंस्वित् कृत्वा लभते तात लोकान् मर्त्यः श्रेष्ठांस्तपसा विद्यया वा।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुभाँल्लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण।२१
तपश्च दानञ्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तमहान्ति पुंसाम्।२२
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपः प्रधानान्यभिमर्शकेन।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः।२३
अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम्।
तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोका न चास्य तद्ब्रह्मफलं ददाति।२४
चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।२५
न मान्यमानो मुदमाददीत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात्।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते।२६
इति दद्यामिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम्।
इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानि नित्यशः।२७
येनाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसे मानयुक्तम्।
तन्निःश्रेयस्तेन संयोगमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह।२८

अष्टक ने कहा—हे तात ! क्या कर्म करके मनुष्य श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त किया करता है, तपश्चर्या से अथवा विद्या से ? यही मेरे द्वारा आप से पूछे जा रहे हैं सो सभी यथावत् कहिए और यह भी बतलाइए कि जिस क्रम से वह शुभ लोकों को प्राप्त होता है।२१। ययाति ने कहा—तप, दान, शम, दम, लज्जा, आर्जव और समस्त प्राणियों पर दया—ये सब सात ही पुरुषों के महान् द्वार हैं जिनको स्वर्गलोक के भी सन्त लोग कहा करते हैं।२२। ये सब जो भी उदित किए गये हैं वे तपः प्रधान ही होते हैं अर्थात् इन सभी में तपश्चर्या की ही प्रमुखता हुआ करती है। जो तमोगुण से अभिभूत होते हैं वे अभिमर्शक मान से नष्ट हो जाते हैं। यह पुरुष की सदा ही होता है—यही सन्त पुरुष कहते

है ।२३। अतीमान अर्थात् पूर्णतया पण्डित पुरुष अपने आपको पण्डित मानता हुआ अर्थात् अपने पाण्डित्य का अभिमान रखने वाला है और जो विद्या के बल से दूसरे के यश का हनन किया करता है उस पुरुष के अन्त में होने वाले लोक नहीं हुआ करते हैं और न उसको वह ब्रह्मफल ही दिया करता है ।२४। ये चार कर्म महान् भयङ्कर हुआ करते हैं और अयथाकृत से भय दिया करते हैं—मानाग्निहोत्र, मौन, मान से अधीत और मानयज्ञ ये ये ही चार हैं ।२५। मान्य मान वाला कभी मुद प्राप्त नहीं किया करता है—और वह सन्ताप को भी अब मान होने से नहीं प्राप्त किया करता है। इस लोक में सन्त पुरुष सत्पुरुषों का ही पूजन किया करते हैं और जो असाधु पुरुष होते हैं वे कभी भी साधु बुद्धि को प्राप्त किया करते हैं ।२६। ऐसा ध्रुव ही यह बतलाता है कि इसको इतना दान करे यह यजन करना चाहिए और यह अध्ययन करे—इसी हेतु से यह भय से रहित है और उसको नित्य ही अनर्चनीय कहा जाता है ।२७। पुराण जिसमें आत्मा का वेदन मनीषिगण किया करते हैं जो मानस में ज्ञानयुक्त हैं वही निर्घोष है उससे संयोग प्राप्त करके यही युक्त होकर परा शान्ति को प्राप्त किया करते हैं ।२८।

४०—ययात्यष्टकसम्वाद वर्णन

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा ।
वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो बहून्यस्मिन् सम्प्रति वेदयन्ति ।१।
आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः पूर्वोत्थायी चरमञ्चोपशायी ।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिद्ध्यति ब्रह्मचारी।२
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् भोजयेच्च ।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ।३

स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ।४
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अनोकशायी लघु लिप्समानश्चरन् देशानेकचरः स भिक्षुः ।५
रात्र्यां यया चाभिजिताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ।६
दशैव पूर्वान् दश चापरांस्तु ज्ञातींस्तथात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृते दधाति मुक्त्वारण्ये स्वशरीरधातून् ।७

अष्टक ने कहा—एक गार्हस्थ्य आश्रम में सदाचरण करने वाला पुरुष किस प्रकार से देवों को प्राप्त किया करता है? भिक्षु (संन्यासी) किस विधान से और जो आचार्य का कर्म करने वाला है वह किस रीति से देवलोक के समीप में पहुँचा करता है तथा जो वानप्रस्थाश्रमी पुरुष है और सन्मार्ग में सन्निविष्ट है उसकी क्या विधि है? इस विषय में अब बहुत सी बातें बोलने को जाती हैं।१। राजा ययाति ने कहा—जिस समय में उसको अध्ययन करने के लिए आहूत करें तभी उन आचार्य वर की सन्निधि में समुपस्थित होकर अध्ययन करने वाला—गुरुजी के सम्पूर्ण कार्मों के सम्पादन करने के लिए सदा उद्यत रहने वाला गुरुचरण से पहिले शय्या त्याग कर उठने वाला और उनके शयन करने के पश्चात् सोने वाला—परम मृदु दमनशील, धृतिमान्, अप्रमत्त एवं जो सर्वदा स्वाध्याय करने के शील वाला है वही ब्रह्मचारी सिद्धि प्राप्त किया करता है।२। धर्म के द्वारा समागत धन से यजन करना चाहिए और सदा ही अतिथियों को दान देवे तथा उनको भोजन करावे—दूसरों के द्वारा नहीं दिये हुए को नहीं ग्रहण करता हुआ गृहस्थ होना चाहिए यही गार्हस्थ्याश्रम में रहने वाले की परम पुरातन उपनिषद् है।३। अपने ही बल वीर्य से जीवन यापन करने वाला—पाप कर्म से निवृत्त रहने वाला, दूसरों को दान देने वाला तथा दूसरों को

कभी भी उपताप न देने वाला इस प्रकार की रहनी रहने वाला मुनि जो नियत आहार करनेकी चेष्टा रखते हुए उनमें निवास किया करता है वह परम गुह्य सिद्धि का लाभ लेता है ।४। जो किसी भी प्रकार के शिल्प-कौशल से जीवन का यापन नहीं किया करता है तथा बिना गृह वाला है—नित्य ही अपनी इन्द्रियों को जीतकर रखने वाला है और से प्रमुक्त अर्थात् बन्धन से रहित है—किसी भी गृह में शयन न करने वाला तथा बहुत ही स्वल्प लिप्सा रखने वाला, एकही वस्त्र का धारी और अनेक देशों में विचरण करने वाला जो होता है वही भिक्षु (संन्यासी) है ।५। जिस रात्रि से लोग अभिरत होते हैं तथा सुख से कार्याभिजित होते हैं विद्वान् पुरुष को उसी रात्रि में प्रस्थान करना चाहिए कि वह पवन आत्मा वाला अरण्य में संस्थित रहने वाला होवे ।६। वह अरण्य में निवास करने वाला अपने शरीर की धातुओं को अरण्य में ही स्थापन करके परम मुक्ति को धारण किया करता है । वह अपने से पूर्व में हुए दस पुरुषों को और दस दूसरे ज्ञातियों को तथा इक्कीसवाँ अपने आपको सभी का अपने तपोबल से उद्धार कर दिया करता है ।७।

कतिस्विद्देवमुनयो मौनानि कति चाप्युत ।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।८
अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप ।९
कथंस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ।१०
न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् ।
तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ।११
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः ।
कौपीनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च चीरकम् ।१२

यावत्प्राणाभिसन्धानं तावदिच्छेत्स भोजनम् ।
तदास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः ।१३

अष्टक ने कहा—कितने देवगण और मुनिगण मौन होते हैं—यह सब आप मुझको बतलाइए। हम सब यह श्रवण करना चाहते हैं ।८। ययाति ने कहा—हे जनाधिप ! अरण्य में निवास करने वाले जिसका ग्राम पृष्ठ भाग में रहता में रहता है तथा ग्राम में अरण्य को पृष्ठ में छोड़ देता है वही मुनि होता है ।९। अष्टक ने पूछा—अरण्यमें निवास करने वाले का ग्राम किस तरह से पृष्ठ में होता है अथवा ग्राम में निवास करने वाले का अरण्य कैसे पृष्ठ में होता है ? ।१०। राजा ययाति ने कहा—जो आरण्य मुनि हो उसे कभी भी ग्राम का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस तरह से अरण्य में निवास करने वाले इसका ग्राम पृष्ठ भाग में हो जाया करता है ।११। बिना अग्नि वाला अर्थात् निरग्नि बिना घर बनाकर रहने वाला, अगोत्रचरण वाला जो मुनि है उसको जितनाभी कौपीन और तनाच्छादन करनेके लिए चाहिए उतने ही वस्त्र की इच्छा करनी चाहिये ।१२। जितने से अपने प्राणों का अभिसन्धान रहे उतना ही आहार प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए। उस समय में ग्राम में निवास करने वाले इसको अरण्य भी पृष्ठ भाग में पड़ जाया करता है ।१३।

यस्तु कामान्परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः ।
आतिष्ठेच्च मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात् ।१४
धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलङ्कृतम् ।
असितं सितकर्माणं कस्तन्नार्चितुमर्हति ।१५
तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः ।
यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः ।१६
अथ लोकमिमं जित्वा लोकञ्चापि जयेत्परम् ।
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ।१७

जो समस्त प्रकार की इच्छाओं का त्याग करके अकर्मों को छोड़ कर पूर्णतया इन्द्रियों के ऊपर अपना नियन्त्रण रखने वाला समाहित हुआ करता है और मौनव्रत धारण करता है वही मुनि लोक में सिद्धि को प्राप्त किया करता है ।१४। जो धौत दन्तों वाला है—नाखून जिसके कटे हुए रहा करते हैं—तथा स्नान करके साफ-सुथरा रहता है और भली-भाँति अलंकृत रहा करता है और अशिव तथा शिव कर्मों में लिप्त रहने वाला सदाचारी है उसे कौन अशिव करने की भावना रखता है अर्थात् ऐसे भिक्षु की समर्चा की योग्यता ही नहीं होती है ।१५। जो तपश्चर्या से कर्षित, दुबला, पतला और मांस अस्थि और रक्त वाला जिस समय में निर्द्वन्द्व होता है वह मुनि मौन व्रत से समाहित हुआ करता है ।१६। इसके अनन्तर इस लोक को जीतकर वह परलोक पर भी विजय प्राप्त किया करता है । मुनि अपने मुख से गौ की भाँति ही अन्न आहारको ग्रहण किया करता है तथा भोगता है इस दशा के होने के अनन्तर इसको जो भी सब लोक हैं वह अमृतत्व के लिए ही कल्पित होते हैं ।१७।

२१—यदुवंश वर्णन

इत्येतच्छौनकाद्राजा शतानीकोऽनिशम्य तु ।
विस्मितः परया प्रीत्या पूर्णचन्द्र इवाबभौ ।१
पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम् ।
रत्नैर्गोभिः सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ।२
प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद्राज्ञा प्रहितं धनम् ।
दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ।३
ययातिर्वंशमिच्छामि श्रोतुं विस्तरतो वद ।
यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितः ।४

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः।
विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥५
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः।
महारथा महेष्वासानामतस्तान्निबोधत ॥६
सहस्रजिच्च ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽञ्जिको लघुः।
सहस्रजेस्तु दायादः शतजिन्नाम पार्थिवः ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—सत्राजित राजा ने कौशिक से वह जब श्रवण किया था तो वह विस्मित हो गया था और प्रदीप्ति से पूर्ण चन्द्र की भाँति प्रकाशमान हो गया था ।१। फिर उस राजा ने पूर्ण विधान के साथ कौशिक का पूजन किया था। पूजन के उपचारों में बहुमूल्य रत्न, गौ, सुवर्ण और अनेक भाँति के वस्त्र आदि सभी थे।२। जो भी राजा के द्वारा धन प्रहित किया था उस सबका प्रतिग्रहण करके और ब्राह्मणों को दान करके फिर महर्षि कौशिक वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे।३। ऋषियों ने कहा—हे भगवन्! अब हम सब लोग राजा ययाति के वंश का विस्तार श्रवण करना चाहते हैं। आप परमानुकम्पा करके उसका सविस्तृत वर्णन कीजिये जिस समय में यदु इस लोक में यदु प्रभृति पुत्रों से समन्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ था।४। श्री सूतजी ने कहा—सबसे ज्येष्ठ और उत्तम तेज वाले यदु के वंश का मैं वर्णन करूँगा और विस्तार तथा आनुपूर्वी के साथ ही कहूँगा। आप लोग अब कहने वाले मुझसे सब कुछ समझ लीजिए।५। महारथी यदु के देवताओं के समान पाँच पुत्र समुत्पन्न हुए। वे पाँचों ही महारथी और महान् इष्वास को धारण करने वाले थे।६। इनमें सबसे बड़ा जो था वह सहस्रजित था और सबसे छोटा जो अन्तिम पुत्र था क्रोष्टुनील था। सहस्रजित का दायाद शतजित नाम वाला पार्थिव समुत्पन्न हुआ था।७।

शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः।

हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥८
हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः ।
धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः ॥९
संहतस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः ।
आसीन्महिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥१०
वाराणस्यामभूद्राजा कथितं पूर्वमेव तु ।
रुद्रश्रेण्यस्य पुत्रोऽभूद्दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥११
दुर्दमस्यात्मजो धीमान्कनको नाम वीर्यवान् ।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥१२
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तु सोऽर्जुनः ॥१३
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ।
वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥१४

शताजित नाम वाले पुत्र के भी दायाद परम कीर्ति वाले तीन हुए थे जिनके शुभ नाम हैहय-हय और वेणुहय थे ।८। हैहय का जो दायाद उत्पन्न हुआ था वह धर्मनेत्र इस शुभ नाम प्रतिश्रुत हुआ था । धर्मनेत्र का दायाद कुन्ति हुआ और कुन्ति का आत्मज संहत नाम वाला हुआ था ।९। संहत के पुत्र महिष्मान् नाम वाला पार्थिव हुआ था । महिष्मान् का पुत्र परम प्रतापशाली रुद्रश्रेण्य ने जन्म ग्रहण किया था ।१०। वह वाराणसी में राजा हुआ था जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है । रुद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम वाला राजा हुआ था ।११। फिर इस दुर्दम का पुत्र परम बुद्धिमान् और बल वीर्य से संयुत कनक नामवाला हुआथा । इस कनकके चार दायाद लोकमें परमप्रसिद्ध हुएथे ।१२। इन चारों के नाम कृतवीर्य-कृताग्नि-कृतवर्मा और चौथा कृतौजा थे। कृतवीर्यके पुत्रने ही सहस्रार्जुन समुत्पन्न हुआ था।१३।इसके एक सहस्र हाथ थे जब इसने जन्म ग्रहण किया था और वह सातों द्वीपोंका

राजा हुआ था। इस राजा ने दस सहस्र वर्ष तक परम दुष्कर तपस्या की थी।१४

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ।
यस्मै दत्तावरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तम ।।१५
पूर्वं बाहुसहस्रन्तु वव्रे राजसत्तमः ।
अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापि निवारणम् ।।१६
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ।
संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद्भवेत् ।।१७
तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ।
सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ।।१८
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः ।
रथो ध्वजश्च संजज्ञे इत्येवमनुशुश्रुम ।।१९
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा ।
निरर्गला निवृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः ।।२०
सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः ।
सर्वे काञ्चनयूपास्ते सर्वाः काञ्चनवेदिकाः ।।२१

इस कार्तवीर्य ने अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय की समाराधना की थी। हे पुरुषोत्तम! उनके द्वारा इसको चार वरदान दिये गये थे।१५। सबसे प्रथम इस राजर्षि ने एक सहस्र बाहु प्राप्त करने का वरदान माँगा था। अधर्म का समाचरण करने वाले का सत्पुरुषों से निवारण करने का वरदान प्राप्त किया था।१६। युद्ध के द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय प्राप्त करके धर्म के ही द्वारा सब पृथिवी का अनुपालन करना प्राप्त किया था। संग्राम में वर्तमान का वध भी होगा तो किसी अधिक से ही होवे।१७। इस सहस्रबाहु ने इस पृथिवी को जो सम्पूर्ण सात द्वीपों से युक्त पर्वतों के सहित और समुद्र से घिरी हुई थी उस सबको क्षात्र विधि के द्वारा ही जीत लिया था।१८। उस धीमान् को जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार एक सहस्र बाहु समुत्पन्न हो गई थीं। रथ

और जल भी समुत्पन्न हुए थे ऐसा ही अनुश्रवण करते हैं ।१९। उस राजा के द्वारा द्वीपों में दश सहस्र यज्ञ किये गये उस धीमान् के निवृत्त हुए थे ऐसा भी सुना जाता है ।२०। उस महान् राजा के सभी यज्ञ अत्यधिक दक्षिणा वाले सम्पन्न हुए थे । उन सभी यज्ञों में सुवर्ण के यूप थे और सभी सुवर्ण की वेदियों वाले थे ।२१।

सर्वे देवैः समं प्राप्ता विमानस्था ह्यलङ्कृताः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ।२२
तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा ।
कार्तवीर्यस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य सः ।२३
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति क्षत्रियाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ।२४
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी ।
रथी द्वीपाननुचरन्योगी संदृश्यते नरैः ।२५
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः ।
स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्ती बभूव ह ।२६
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव हि ।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ।२७

सब विमानों में स्थित देवों के साथ प्राप्त हुए गन्धर्व और अप्सराओं से समलंकृत नित्य ही उपशोभित रहा करते थे ।२२। उसके यज्ञ में गन्धर्व तथा नारद ने कार्तवीर्य राजर्षि की महिमा को देखकर उनकी गाथा का गायन किया था ।२३। निश्चय ही क्षत्रिय गण कार्तवीर्य की गति को नहीं प्राप्त होंगे जिस प्रकार से इसके यज्ञ-दान-तप-विक्रम और श्रुत आदि हैं इस तरह के सभी विधान अन्य क्षत्रियों के हुके वर्तमान ही नहीं।२४। यह महाबाहु राजा खड्ग धारण करनेवाला है ही नहीं ।२४। यह महाबाहु राजा कवच धारण करने वाला तथा शरासन ग्रहण किए रथी सातों द्वीपों में अनुचरण करते हुए योगी

लक्षणों को देखा करता था ।२५। वह नराधिप पचासी सहस्र वर्षों तक सम्पूर्ण रत्नों से सम्पन्न होता हुआ इस भूमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट हुआ था ।२६। वही पशुओं के पालन करने वाला हुआ था और वही क्षेत्रपाल भी हुआ था । वह वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हुआ था और योगी होने के कारण से वही अर्जुन हो गया था ।२७।

कोऽसौ बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्कर: ।२८
एष नाम्ना मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युति: ।
कर्कोटकसुतं जित्वा पुर्य्यां तस्यां न्यवेशयत् ।२९
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै ।
क्रीडन्नेव सुखोद्भिन्न: प्रतिस्रोतं महीपति: ।३०
ललता क्रीडता तेन प्रतिस्रोतोदाममालिनी ।
ऊर्मिभ्रुकुटिसन्त्रासाच्चकिताभ्येति नर्म्मदा ।३१
एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णव: ।
करोत्युद्धृतवेगान्तु नर्म्मदां प्रावृडुद्धताम् ।३२
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ।
भवन्त्यलीना निश्चेष्टा: पातालस्था महासुरा: ।३३
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम् ।
मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षिप्तदु:सहम् ।३४
करोत्यालोडयन्नेव दो:सहस्रेण सागरम् ।
मन्दारक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किता: ।३५
तदा निश्चलमूर्द्धानो भवन्ति च महोरगा: ।
सायाह्ने कदलीखण्डा निर्वातस्तिमिता इव ।३६

यह सम्राट एक सहस्र बाहुओं के द्वारा धनुष की डोरी के घातों से कठिन त्वचा से युक्त शरत्काल की एक सहस्र रश्मियों से सम्पन्न हो

रखा था ।२७। महान् द्युति वाले इसने माहिष्मती पुरी में मनुष्यों के मध्य में कर्कोटक के पुत्र नाग को जीतकर उसी पुरी में निवेशित कर दिया था ।२८। यह प्रावृट् काल में भी समुद्र के वेग का सेवन किया करता था । वह महामति सलिलौघ से मुख में उद्भिन्न होता हुआ क्रीड़ा करता हुआ था विपरीत किया करता था ।३०। इसने ललि-तमाल मालिनी नर्मदा क्रीड़ित की थी । ऊर्मि भृकुटी में सन्त्रास में नर्मदा शंकित होकर उसके समीप में आ गई थी ।३१। वह एक अपनी सहस्रबाहुओं से महार्णव के अवगाहन करने पर उद्धत वेग वाली नर्मदा को प्रावृट् द्वारा करता है ।३२। उसकी सहस्रबाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमाण होने पर पाताल में संस्थित महासुर अत्यन्त ही निश्चेष्ट हो जाते हैं ।३३। सहस्र हाथों से सागर का आलोड़न करता हुआ ही उसको तोड़ी हुई महान् तरङ्गों से विलीन मीन और महातिमि वाला-मारुतसे आविद्ध फेनों से ओघ वाला तथा आवर्तों (भँवरों) से समाक्षिप्त होनेसे दुःसह करता है । उस सागर में मन्दार के क्षोभ से चकित अमृत के उत्पादन की शङ्का वाले महोरग निश्चल मूर्धाओं वाले हो जाते हैं । जिस प्रकार से सायाह्न समय में निर्वात से निश्चल कदली स्कन्धों की दशा होती है वैसी दशा महोरगों की थी ।३४-३६।

एवं बद्ध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ।
लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ।३७
निर्जित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुनं संप्रसादयत् ।३८
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनेह सान्त्वितम् ।
तस्य बाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वनः ।३९
युगान्ताभ्रसहस्रस्य आस्फोटस्त्वशनेरिव ।
अहो बत विधेर्वीर्यं भार्गवोऽयं यदाच्छिनत् ।४०
तद्वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा ।

यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥४१

यस्माद्वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय ।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥४२

लङ्कापुरी में सबल रावण को बलपूर्वक मोहित करके पाँच वाणों से उन्मथित करके धनुष की ज्या से उस प्रकार से बाँध लिया था और उसको जीत करके तथा बन्द करके माहिष्मती अपनी पुरी में ले आया था तथा बाँधकर रख छोड़ा था। इसके अनन्तर पुलस्त्य ऋषि वहाँ आये थे और उन्होंने सहस्रार्जुन को प्रसन्न किया था।३७-३८। पुलस्त्य ऋषि ने वहाँ पर सान्त्वना दी थी और फिर पौलस्त्य (रावण) को छोड़ दिया था। उसकी सहस्र बाहुओं से बड़ा शब्द था। शब्द हुआ था।३९। यह घोष उसी भाँति हुआ था जैसा कि युगान्त के समय में होने वाले सहस्रों मेघों के आस्फोट से अशनि का घोष हुआ करता है। अहो! बड़ी प्रसन्नता की बात है कि विधाता के वीर्य का भार्गवने छिन्न किया था।४०। जिस समय में आपव प्रभु ने इसको सहस्रबाहुओं का छेदन हेमताल वन की भाँति किया था और वहीं पर आप प्रभु ने क्रुद्ध होकर अर्जुन को शाप दिया था—हे हैहय! क्योंकि मेरा परम विश्रुत वन तुमने जला कर दिया इसलिए इस दुष्कर कर्म को कृतमन्य हनन करेगा।४१-४२।

छित्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली ।
तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां च वधिष्यति भार्गवः ॥४३
तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः ।
वरश्चैवन्तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥४४
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः ।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः ॥४५
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च ।
जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशाम्पते ॥४६

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजंघो महाबलः ।
तस्य पुत्रशतान्येव तालजंघा इति श्रुताः ॥४७
तेषां पञ्चकुलाख्याता हैहयानां महात्मनाम् ।
वीतिहोत्राश्च शार्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा ॥४८
कुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजंघास्तथैव च ।
वीतिहोत्रसुतश्चापि आनर्तो नाम वीर्यवान् ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः ॥४९

बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण भार्गव पहिले वेग के साथ तेरी सहस्रबाहुओं का छेदन करके फिर तेरा वही वध भी करेंगे ।४३। सूतजी ने कहा—उस समय में उसकी मृत्यु शाप के द्वारा राम ही थे । श्रीमान ने राजर्षि से पहिले ही इस प्रकार का वरदान स्वयं ही वरण कर लिया था ।४४। उसके एक सौ पुत्र हुए थे उनमें पाँच तो महारथ थे । वे सब कृतास्त्र बलशाली, शूरवीर, धर्मात्मा और महान् बल वाले थे ।४५। हे विप्राग्रणी ! शूरसेन, शूर, धृष्ट, क्रोष्टु, जयध्वज, वैकर्त्ता और अवन्ति ये उनके नाम थे ।४६। जयध्वज का पुत्र महान् बलवान् तालजंघ हुआ था । उसके भी एक सौ पुत्र थे जो पुत्रगण सब ताल-जंघ इसी नाम से प्रसिद्ध थे ।४७। उन हैहय महात्माओं के पाँच कुल विख्यात थे । वीतिहोत्र-शार्याति-भोज-अवन्तिय-कुण्डिकेरा-विक्रान्त और तालजंघ थे । वीतिहोत्र का पुत्र भी आनर्त नाम वाला महान् वीर्यवान् हुआ था । उसका पुत्र दुर्जय था जो शत्रुओं का कर्षण करने वाला था ।४८-४९।

एवंभावेन महाराज ! प्रजा धर्मेण पालयन् ।
कार्त्तवीर्यार्जुनो नामराजा बाहुसहस्रवान् ॥५०
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ।
यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥५१
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टञ्च लभते पुनः ।

कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः।
यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते।५२

हे महाराज! कार्तवीर्यार्जुन नाम वाला राजा एक सहस्रबाहुओं से समन्वित था और सद्भावना से धर्म के साथ प्रजा का परिपालन किया करता था।५०। वह ऐसा प्रतापी राजा हुआ था जिसने अपने धनुष के द्वारा सागर पर्यन्त भूमि को जीत लिया था। जो मानव प्रातःकाल में ही उठकर उसके शुभ नाम का कीर्तन किया करता है उसके वित्त का कभी भी नाश नहीं होता है और जो किसी का वित्त नष्ट भी हो गया हो तो वह नष्ट हुआ धन पुनः प्राप्त हो जाया करता है। परम धीमान् कार्तवीर्य के जन्म की गाथा को कोई कहता है तो वह मानव यथावत् स्विष्ट पूतात्मा होकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है।५१-५२।

२९—क्रोष्टुवंश वर्णन

किमर्थं तद्वनं दग्धमापवस्य महात्मनः।
कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत! प्रब्रूहि तत्त्वतः।१
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम्।
स कथं रक्षिता भूत्वा अदहत्तत्तपोवनम्।२
आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः।
तृप्तिमेकां प्रयच्छस्व आदित्योऽहं नरेश्वर।३
भगवन्! केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर।
कीदृशं भोजनं ह्यस्मि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम्।४
स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर।
तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव।५

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च ।
निर्दग्धुं तपतांश्रेष्ठ ! तेन त्वां प्रणमाम्यहम् ।६

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! महात्मा आपव का वन किस प्रयोजन के लिए कार्त्तवीर्य ने विक्रम करके दग्ध कर दिया था ? इस गाथा को तात्त्विक रूप से बतलाइए ।१। वह राजर्षि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था ऐसा ही हमने सुना है फिर वह रक्षिता होते हुए उस तपोवन को नाश करने वाला कैसे और क्यों बन गया था ? ।२। सूतजी ने कहा—एक बार ऐसा हुआ था कि भगवान् आदित्य एक द्विज के स्वरूप में होकर कार्त्तवीर्य के समीप में समुपस्थित हुए थे और उन्होंने कार्त्तवीर्य से कहा था कि हे नरेश्वर ! मैं आदित्य हूँ हमको एक तृप्ति दीजिए ।३। राजा ने कहा—हे भगवन् ! हे दिवाकर देव ! किससे आपको तृप्ति होती है ? आप मुझे बतलाइए कि किस प्रकार का भोजन मैं आपको समर्पित करूँ । यह आप जब मुझे आज्ञा देंगे तो उसका श्रवण करके ही मैं प्रस्तुत करूँ ।४। आदित्य देव ने कहा—हे पार्थिव ! आप तो दान दाताओं में परम श्रेष्ठ महानुभाव हैं । आप मुझे स्थावरों का सब आहार प्रदान कीजिए उससे मैं तृप्त हो जाऊँगा यही मेरी पूर्ण तृप्ति होगी ।५। कार्त्तवीर्य ने कहा—हे तपनशीलों में परमश्रेष्ठ ! तेज के द्वारा और बल के द्वारा सम्पूर्ण स्थावर निर्दग्ध नहीं किये जा सकते हैं । इसलिए मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।६।

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान् ।
ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ।७
आविष्टा मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान् ।
शुष्कान् भस्मीकरिष्यन्ति तेनाग्निर्नराधिप ।८
ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत ।
ततो ददाह संप्राप्तान्स्थावरान्सर्वमेव च ।९
ग्रामांस्तथाश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च ।

तथा वनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ।१०
एवं प्राचीसमदहत् ततः सर्वांश्चपक्षिणः ।
निर्वृक्षा निस्तृणाभूमिर्हताघोरेण तेजसा ।११
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः ।
दश वर्षसहस्राणि तत्रास्ते स महानृषिः ।१२
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः ।
सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ।१३
क्रोधाच्छशाप राजर्षिं कीर्तितं वो यथा मया ।
क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम् ।१४

आदित्य देव ने कहा—मैं तुमसे परम सन्तुष्ट हूँ । मैं आपको अक्षय और सर्वतोमुख वाले शरों को प्रदान करता हूँ । जो प्रक्षिप्त किये हुये शरा देंगे क्योंकि ये सब मेरे तेज से समन्वित होंगे ।७। मेरे तेज से समाविष्ट होने से वे समस्त स्थावरों का शोषण कर देंगे । हे नराधिप ! ये शुष्कों को भस्मीभूत कर देंगे । उसी से मेरी तृप्ति होगी ।८। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर आदित्य देव ने उन शरों को अर्जुन के लिए दे दिये थे । इसके पश्चात् सभी सम्प्राप्त स्थावरों को दग्ध कर दिया था ।९। ग्राम, आश्रम, घोष, नगर, वन और सुरम्य उपवन सभी का दाह कर दिया था ।१०। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्राची दिशा को तथा सभी पक्षियों को निर्दग्ध कर दिया था । उस समय में इस महाबाहु के होने से सम्पूर्ण भूमि वृक्षों से रहित और तृणों से एकदम शून्य उस महान् घोर तेज से हो गई थी तथा हतप्रभा हो गई थी ।११। इसी काल में आपवो जल में समास्थित थे । वह महान् ऋषि दश सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ पर थे ।१२। जब उनका वह जल में स्थित रहकर किये जाने वाला व्रत पूर्ण हो गया था तो वह तपोधन उठकर खड़े हुए थे । उस समय में उस महामुनि ने देखा था कि उनका वह सम्पूर्ण आश्रम अर्जुन ने दग्ध कर दिया था ।१३। उस महामुनि को महान् क्रोध

समुत्पन्न हो गया था उन्होंने राजर्षि कार्त्तवीर्य को इसी शाप से विधा था जैसा कि मैंने आपको बतलाया था । हे राजेन्द्र ! अब मुझसे क्रोष्टु को उत्तम पौरुष वाला वंश श्रवण करो ॥१४॥

यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः ।
क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथः ॥१५
वृजिनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहो नाम महाबलः ।
स्वाहपुत्रोऽभवद्राजन् रुषंगुर्वदतां वरः ॥१६
स पुत्रमिच्छन् रुषङ्गुः सौम्यमात्मनयम् ।
चित्रश्चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥१७
अथ चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।
शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥१८
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन् पुराऽभवत् ।
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥१९
धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ।
तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलाः ॥२०
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः ।
पृथुकीर्तिः पृथुमनाः राजानः शशबिन्दवः ॥२१

जिसके वंश में वृष्णि कुल का उद्वहन करने वाले भगवान विष्णु ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी उस क्रोष्टु के महारथ वृजिनीवान् नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥१५॥ वृजिनी का पुत्र महान् बल विक्रमशाली स्वाहु नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । हे राजन् ! स्वाहु के पुत्र का नाम रुषङ्गु था जो बोलने वाले वक्ताओं में अतीव श्रेष्ठ था ॥१६॥ रुषङ्गु ने जब अपनी परम सौम्य सन्तति के होने की इच्छा की थी तो इसमें चित्र और चित्ररथ हुए थे । इसके कर्मों से समन्वित चैत्ररथि वीर ने जन्म ग्रहण किया था जो कि बहुत ही अधिक दक्षिणा देने वाला था । वह शशबिन्दु—इसी नाम से विख्यात हुआ था और चक्रवर्ती राजा हो

गया था ।१७–१८। इसी मधु अनुवंश का श्लोक प्राचीन उस समय में गाया गया था कि शशबिन्दु के सौ पुत्रों के सौ ही पुत्र हुये थे ।१९। ये सभी परम धीमान्-अभिरूप और बहुत अधिक द्रविण और तेज वाले हुये थे । उन सब प्रधानों के महाबलशाली पृथुसाह्व हुये थे ।२०। पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति, पृथुमना शशबिन्दु के राजा हुये थे ।२१।

शंसन्ति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम् ।
अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत् ।२२
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षन्पृथिवीमिमाम् ।
आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः ।२३
तितिक्षुरभवत् पुत्र औशनः शत्रुतापनः ।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तमः ।२४
आसीन्मरुत्ततनयो वीरः कम्बलबर्हिषः ।
पृथुस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः ।२५
निहत्य रुक्मकवचः परान् कवचधारिणः ।
धन्विनो विविधैर्बाणैरवाप्य पृथिवीमिमाम् ।२६
अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् ।
यज्ञे तु रुक्मकवचः कदाचित्परवीरहा ।२७
जज्ञिरे पञ्चपुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः ।
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः ।२८

जो पुराणों के ज्ञाता महामनीषी हैं, वे उत्तम पृथुश्रवा की बहुत अधिक प्रशंसा किया करते हैं । अन्तर सुयज्ञ के सुयज्ञ तनय हुआ था ।२२। उस सुयज्ञ का पुत्र उशना समुत्पन्न हुआ था—जिस परम धार्मिक राजा ने इस पृथ्वी की रक्षा करते हुए एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ।२३। उस उशना का पुत्र औशन शत्रुओं को ताप देने वाला तितिक्षु उत्पन्न हुआ था । उसके पुत्र का नाम मरुत्त था जो राजर्षियों

में परमोत्तम था ।२३। इस मरुत का पुत्र अतिवीर कम्बल बर्हिष नाम वाला हुआ था । कम्बल बर्हिष के पुत्र का नाम रुक्म कवच था जो महान् विद्वान् हुआ था ।२४। इस रुक्म कवच ने दूसरे कवचधारी और धन्वियों का अनेक प्रकार के बाणों के द्वारा निहनन करके इस पृथिवी को प्राप्त किया था ।२५। फिर उस राजा ने इस भूमि को अपने बल–विक्रम से प्राप्त करके भी अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा के रूप में प्रदान कर दी थी । किसी समय में वीर शत्रुओं के हनन करने वाले रुक्म कवच से पाँच पुत्रों को जन्म दिया था । वे पाँचों पुत्र महान् पराक्रम वाले और धनुर्धारी हुए थे । रुक्मी से पृथुरुक्म, ज्या-मघ, परिघ, हरि थे ।२६-२८।

परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता ।
धर्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ।२९
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे ।
प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः ।३०
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ।
नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः ।३१
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत् ।
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या परिणतासती ।३२
अपुत्रो न्यवसद्राजा भार्यामन्यामविन्दत ।
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः ।३३
भार्यामुवाच सन्त्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते ।
एवमुक्ताब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च ।३४

पिता ने परिघ और हरि को विदेह में स्थापित किया था । इनमें में पृथुरुक्म राजा उसके आश्रम वाला हुआ था ।२९। इनमें से ज्यामघ राज्य से प्रव्राजित हो गया था और उस आश्रम में रहने लगा था । वह परम प्रशान्त होकर आश्रम में स्थित रहता था तथा ब्राह्मण के द्वारा

राज बोधित किया गया था ।३०। उसकी रथी अनुप लेकर अन्य देश को चला गया था । वह नृप केवल वृत्ति की कामना से अकेला ही नर्मदा पर चला गया था ।३१। शत्रुओं के द्वारा मुक्त ऋक्षवान् नाम गिरि पर जाकर वह उपविष्ट हो गया था । ज्यामघ की भार्या शैब्या परिणत और सती थी ।३२। वह राजा बिना ही पुत्र वाला रहा करता था और इसने अन्य किसी भी भार्या को नहीं प्राप्त किया था । उसका युद्ध में विजय हुआ था वहाँ पर एक कन्या को प्राप्त किया था ।३३। उसने सन्त्रास से अपनी भार्या से कहा था हे शुचिस्मिते ! यह कन्या तेरी स्नुषा है जब राजा ने भार्या से इस तरह से कहा था तो वह उससे बोली थी कि यह किसकी स्नुषा है ? ।३४।

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ।
तस्मात्तु तपसोग्रेण कन्यायाः सम्प्रसूयत ।३५
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ।
राजपुत्र्यां च विद्वान्स्नुषायां क्रथकैशिकौ ।
लोमपादं तृतीयन्तु पुत्रं परमधार्मिकम् ।३६
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान्रणविशारदान् ।
लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चात्मजः ।३७
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।३८
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ।
धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निवृ तिः परवीरहा ।३९
तदेको निवृ तेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः ।
दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः ।
दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते ।४०
जीमूतपुत्रो विमलस्तस्य भीमरथः सुतः ।
सुतो भीमरथस्यासीत् स्मृतो नवरथः किल ।४१

तस्य चासीद्दृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ।
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातो बभूवह ।४२

राजा ने अपनी भार्या के इस प्रश्न पर उत्तर दिया था कि जो पुत्र तेरे उदर से जन्म ग्रहण करेगा उसी की यह भार्या होगी इससे उसने अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी फिर उस सुभाग-परिमला—सती शैब्या ने उस कन्या के लिए विदर्भ पुत्र को प्रसूत किया था। उस विद्वान् ने राजपुत्री में क्रथ-कैशिक और तृतीय परम धार्मिक लोमपाद को जन्म दिया था ।३३-३६। उसमें विदर्भ ने रण के महान् विशारद अत्यन्त शूरवीर पुत्रों को समुत्पन्न किया था। लोमपाद से मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज ज्ञाति हुआ था। कैशिक का पुत्र चिदि नामधारी उत्पन्न हुआ था। उससे जो समुत्पन्न हुये थे वे चैद्य नृप कहे गये थे। विदर्भ का पुत्र क्रथ हुआ था और उसका आत्मज कुन्ति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।३७-३८। कुन्ति से धृष्ट नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था जो रण में परम धृष्ट ही था और प्रतापाढ्य प्रताप वाला था। धृष्ट का पुत्र धर्मात्मा निर्वृति नामधारी हुआ जो शत्रुवीरों का हनन करने वाला था ।३९। उस निर्वृति से केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम विदूरथ था। इसके जो पुत्र प्रसूत हुआ था उसका नाम दशार्ह था तथा उस दशार्ह के ही पुत्र का नाम व्योम हुआ था। उस दशार्ह व्योम से जीमूत कहे जाने वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ।४०। जीमूत का पुत्र विमल हुआ था और फिर उस का पुत्र भीमरथ उत्पन्न हुआ था। इस भीमरथ का जो दायाद हुआ था वह नवरथ कहा गया है ।४१। इसका पुत्र दृढ़रथ हुआ तथा दृढ़रथ का शकुनि नाम वाला आत्मज उत्पन्न हुआ था। इससे करम्भ और कारम्भ से धार्मिक देवरात जन्म प्राप्त किया था ।४२।

देवक्षत्रोऽभवद्राजा दैवरातिर्महायशाः ।
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ।४३

मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरुवसस्तथा ।
आसीत् पुरुवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ।४४
जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यां पुरुद्वतः ।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या जन्तोस्तस्यामजायत ।४५
सात्वतः सत्वसंपन्नः सात्वतां कीर्तिवर्द्धनः ।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ।
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ।४६
सात्वतात्सत्वसम्पन्नात्कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
भजिनं भजमानन्तु दिव्यं देवावृधं नृप ! ।४७
अन्धकञ्च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम् ।
तेषां तु सर्गाश्चत्वारो विस्तरेणैव तच्छृणु ।४८
भजमानस्य सृञ्जय्यां बाह्यकायाञ्च बाह्यकाः ।
सृञ्जयस्य सुते द्वे तु बाह्यकास्तु तदाभवन् ।४९
तस्य भार्ये भगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान् ।
निमिश्च कृमिलश्चैव वृष्णिः परपुरञ्जयः ।
ते बाह्यकायां सृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ।५०

देवरात का पुत्र देवराति देवक्षत्र ने जन्म प्राप्त किया था जो महान् यश वाला राजा हुआ था । देवक्षत्र का पुत्र देवनक्षत्र उत्पन्न हुआ था ।४३। मधु नाम वाला महान् तेजस्वी हुआ था इस मधु से पुरुवसने जन्म प्राप्त किया था । पुरुवस का पुत्र पुरुषों में उत्तम पुरुद्वान् हुआ था ।४४। पुरुद्वान् से वैदर्भी भद्रसेनी में जन्तु ने जन्म लिया था । इस जन्तु की भार्या ऐक्ष्वाकी नाम वाली हुई थी । उस भार्या में सत्व से सम्पन्न सात्वत नाम वाला सात्वतों की कीर्ति के वर्धन करने वाला पैदा हुआ था । महात्मा ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने जो उपर्युक्त रीति से हुई थी । धीमान् राजा सोम का सायुज्य प्राप्त करता है ।४५-४६। कौशल्या ने सत्व से सुसम्पन्न सात्वतों को

प्रसूत किया था । हे नृप ! भजिन—भजमान—दिव्य—देवावृध अन्धक-महाभोज और वृष्णि हे यदुनन्दन ! ये उत्पन्न हुये थे । उनके चार प्रमुख वर्ग थे । अब विस्तार से उनका श्रवण करो ।४७-४८। भजमान के सृञ्जयी में और बाह्यका में बाह्यक हुये थे । सृञ्जय की दो सुताएँ थीं । उस समय में बाह्यक हुए थे ।४९। उसकी दोनों बहिनें भार्याएँ थीं जिन्होंने बहुत से पुत्रों को प्रसूत किया था । निमि-कृमिल-वृष्णि और परपुरञ्जय ये सब बाह्यका और सृञ्जयी में भजमान से समुत्पन्न हुये थे ।५०।

यज्वा देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्द्धनः ।
अपुत्रस्त्वभवद्राजा चचार परमं तपः ।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ।५१
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत् ।
तदोपस्पर्शनात्तस्य चकार प्रियमापगा ।५२
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मात्सा निम्नगोत्तमा ।
चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम् ।५३
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ।
जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः ।५४
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः ।
ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः ।५५
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा ।
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ।५६

बन्धुओं का मित्र वर्धन राजा देववृध ने यज्ञ ग्रहण किया था किन्तु वह राजा पुत्रहीन ही हुआ था और उसने परम उग्र तप का समाचरण किया था । उसकी यही इच्छा थी मेरा पुत्र हो जो बहुत समस्त गुणों से समुपेत होना चाहिए ।५१। इसके अनन्तर मन्त्र का संयोजन करके उसने पर्णाशा के जल का उपस्पर्शन किया था । उस समय में उसके

उपस्पर्शन से उस सरिता ने उसका प्रिय कर दिया था ।५२। नरपति के कल्याण के हेतु से वह नदी उसके लिये कन्यारूपा हुई थी । वह चिन्ता से ग्रसित आत्मा वाला था किन्तु इसके उपरान्त वह विनिश्चय को प्राप्त हो गया था ।५३। मेरे पास ऐसी नारी भी नहीं प्राप्त है जिससे इस प्रकार का सकल गुणों से समन्वित पुत्र समुत्पन्न होवे । इसलिये मैं आज सहस्रशः होता हूँ ।५४। इसके अनन्तर वह परम सुन्दर शरीर धारण करने वाली कुमारी होकर उसने राजा को ज्ञापित किया था और उस महाव्रती ने उसी कुमारी को प्राप्त करने की इच्छा की थी ।५५। फिर इसके उपरान्त उस सरिताओं में परम श्रेष्ठा ने नवम मास में देवावृध नृप से समुत्पन्न गुणगण से युक्त बभ्रु नामक पुत्र किया था ।५६।

अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ।
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः ।।५७
यथैवं शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् ।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।।५८
षष्टिश्च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः ।
एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ! ।।५९
यज्वा दानपतिर्धीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः ।
रूपवान्सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा ।।६०
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् ।
कुकुरं भजमानञ्च शमिं कम्बलबर्हिषम् ।।६१
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयो धृतिः ।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ।।६२
तस्यासीत्तनुजापुत्रो सखा विद्वान्नलः किल ।
ख्यायते तस्य नाम्ना च नन्दनोदरदुन्दुभिः ।।६३

पुराणों के ज्ञाता विद्वान् इस अनुवंश में इस परिश्रुत आख्यान का गायन किया करते हैं और महान् आत्मा वाले देवावृध के गुणों का भी

कीर्तन किया करते हैं। जिस तरह से हम दूर से श्रवण किया करते हैं उसी भाँति समीप में पहुँच कर देखते हैं—बभ्रु मनुष्यों में परम श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवों के ही समान है ।५७-५८। हे नृप ! आठ और सत्तर सहस्र पूर्व पुरुष देवावृध बभ्रु के अमृतत्व को प्राप्त होगये थे ।५९। यह यज्ञ करने वाला—दानशील—वीर—ब्रह्मण्य—दृढ़व्रत वाला—रूप लावण्य से युक्त—महान् तेज वाला तथा श्रुतवीर्यधर था ।६०। इसके अनन्तर कङ्क की पुत्री ने चार पुत्रों को प्रसूत किया। उनके नाम कुकुर—भजमान—शमि और कम्बल बर्हि थे ।६१। कुकर का पुत्र वृष्णि समुत्पन्न हुआ था और वृष्णि का सुत धृति हुआ था। इसका आत्मज कपोतरोमा था और उसका आत्मज तैत्तिरि समुत्पन्न हुआ था। ।६२। उसके तनुजा का पुत्र सखा तथा विद्वान् नल था। उसके नाम से नन्द नोदर दुन्दुभि ख्यात होता है ।६३।

तस्मिन्प्रवितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः।
अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ।६४
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सभामध्यात्समुत्थितः।
अतस्तु विद्वान्कर्मज्ञो यज्वा दाता पुनर्वसुः ।६५
तस्यासीत् पुत्रमिथुनं बभूवाविजितं किल।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातं मतिमतां वर। ।६६
इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान्प्रति तमाहुकम्।
सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम् ।६७
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु।
नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहस्रदः ।६८
नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हि यो भोजेष्वभ्यजायत।
आहुकस्य भृतिं प्राप्ता इत्येतद्वै तदुच्यते ।६९
आहुकश्चाप्यवन्तीषु स्वसारं चाहुकीं ददौ।
आहुकात्काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौ समसूयत ।७०

उस यज्ञ के विस्तृत होने पर पुनर्वसु अभिजात हुआ था। नरों में उत्तम उसने पुत्र की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ किया था।६४। अतिरात्र उसके मध्य में सभा के मध्य से समुत्थित हुआ था। इसलिए पुनर्वसु तस्था (भय न करने वाला)— विद्वान्—कर्मों का ज्ञान रखने वाला और दानशील था। हे अतिमानोम परमश्रेष्ठ ! आपके सर्वविजित पुत्रों का एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था जिनके नाम आहुक और आहुकी प्रसिद्ध हुए थे।६५। यहाँ पर उस आहुक के प्रति इन श्लोकों को उदाहृत करते हैं कि उपासङ्गानुचरों के सहित और ध्वजाओं के सहित-कवची-मेघघोष रथों की दश सहस्र संख्या उसके पास थी। वहाँ असत्यवादी नहीं था—तेजहीन—अयजन करने वाला और एक सहस्र से कम देने वाला नहीं था।६६-६७। यह अशुचि—अविद्वान् भी नहीं था। जो भोजों में अभिजात हुआ था। आहुक की वृत्ति को प्राप्त हुए थे—यही कहा जाता है।६८-६९। आहुक ने अवन्तीयों में आहुकी को दिया था। आहुक के काश्य दुहिता ने दो पुत्रों को प्रसूत किया था।७०।

देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः।७१
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ।७२
देवकी श्रुतदेवी च यशोदा च यशोधरा।
श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेति सप्तमी।७३
नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कःशङ्कुश्च भूयसः।७४
सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिदः।
तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा।७५
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चेति वराङ्गनाः।

उग्रसेनः महापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ।७६
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः ।
राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ।७७

इन दोनों का देवक और उग्रसेन ये दो नाम थे । ये दोनों देव-गर्भ के समान थे । देवक के पुत्र परम वीर और देवों के ही समान थे ।७१। उनके नाम देववान्—उपदेव—सुदेव और देवरक्षित थे । इनकी सात भगिनियाँ थीं जो ये सब वसुदेव के लिए दी गयी थीं ।७२। इन सातों के नाम देवकी-श्रुतदेवी-यशोदा यशोधरा-श्रीदेवी-सत्यदेवी और इनमें सातवीं बहिन का नाम सुरापी हुआ था ।७३। महाराज उग्रसेन के नौ पुत्र हुए थे उन सबमें कंस सबसे बड़ा प्रथम पुत्र था । शेष नौ में से आठ के नाम—न्यग्रोध सुनामा—कङ्क—शंकु सुतनु—राष्ट्रपाल—युद्धमुष्टि और सुमुष्टिद थे । उनकी बहनें भी पाँच थीं—कंसा—कंसवती—सुतनु—राष्ट्रपाली और कङ्का ये उन पाँचों के नाम हैं । ये सभी वराङ्गनाएँ थीं । उग्रसेन महाभाग कुकुरोद्भव व्याख्यान किया गया है । भजमान का पुत्र रथियों में प्रमुख और राजाधिदेव विदूरथ हुआ था । विदूरथ के यहाँ शूर नामक पुत्र ने जन्म लिया था ।७४-७७।

राजाधिदेवस्य सुतौ जज्ञाते देवसंमितौ ।
नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ।७८
शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शूरा रणविशारदाः ।
शमीच देवशर्मा च निकुन्तः शक्रशत्रुजित् ।७९
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ।
प्रतिक्षत्रः सुतो भोजो हृदीकस्तस्य चात्मजः ।८०
हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः ।८१
देवार्हश्चैव नाभश्च भीषणश्च महाबलः ।

अजातो वनजातश्च कर्णिककम्बलबर्हिषौ ।८२
देवार्हस्य सुतो विद्वान् जज्ञे कम्बलबर्हिषः ।
असमञ्जाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्य चात्मजः ।८३
अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्त्तयः ।
सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः ।८४
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्त्तयति नित्यशः ।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः ।८५

राजा विदेव को दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था और वे दोनों ही देवों के सदृश थे। दोनों के नियम और व्रत की प्रधानता थी। इनके शुभ नाम शोणाश्व और श्वेत वाहन थे।७८। शोणाश्व के परम शूरवीर और रण विद्या के महा विद्वान् पाँच पुत्रों ने जन्म धारण किया था। शमी—देवशर्मा—निकुम्भ—शक्रशत्रुजित—ये उन पाँचों के शुभ नाम हैं। शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ और प्रतिक्षत्र का आत्मज प्रतिक्षेत्र था। प्रतिक्षेत्र का सुत भोज और उसका आत्मज हृदीक उत्पन्न हुआ था।७९-८०। हृदीक के भीम पराक्रम वाले दश पुत्रों ने जन्म लिया था। उनमें कृतवर्मा सबके प्रथम उत्पन्न हुआ था और शतधन्वा उससे मध्यम पुत्र था।८१। शेष देवार्ह—नाभ—भीषण—महाबल—अजात—वनजात कर्णिक कम्बलक ये नाम हैं।८२। देवार्ह की भार्या में देवार्ह से अतिशय विद्वान् कम्बल बर्हि ने प्रसव प्राप्त किया था। उसके पुत्र असमञ्जा था और इसके पुत्र तमोजा समुत्पन्न हुआ था।८३। अजात के परम विक्रान्त अर्थात् बल विक्रम वाले और उत्तम कीर्तिशाली तीन पुत्र हुए थे। सुदंष्ट्र—सुनाभ और कृष्ण ये उन तीनों के शुभ नाम थे। ये सब अन्धक माने गये हैं।८४। अन्धकों के इस वंश का जो कोई पुरुष नित्य ही कीर्त्तन किया करता है वह प्रजावान नर अपने आपका विपुल वंश प्राप्त किया करता है।८५।

—×—

२३—स्यमन्तकमणि का संक्षिप्त चरित्र

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ।।१
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ।
अनमित्रं शिनिञ्चैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ।।२
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु द्वौ सुतौ ।
प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ ।।३
स्यमन्तकं प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम् ।
पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः ।।४
हृदि कृत्वा सुबहुशो मणिं तमभियाचितम् ।
गोविन्दोऽपि तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ।।५
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।
यथाशब्दं च शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते ।।६
ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ऋक्षमैक्षत ।
ऋक्षः प्रसेनञ्च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित् ।।७

महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—गान्धारी और माद्री ये दोनों वृष्णि की भार्यायें हुई थीं । गान्धारी ने सुमित्र मित्र नन्दन को जन्म दिया था ।१। माद्री ने पहिले पुत्र युधाजित को फिर देव मीढुष—अनमित्र—शिनि और पाँचवाँ कृत लक्षण ये उत्पन्न किये थे ।२। अनमित्र का सुत निघ्न हुआ था तथा उस निघ्न के दो पुत्रों ने जन्म लिया था । महान् वीर्य वाला प्रसेन तथा दूसरा शक्ति सेन था । इस तरह ये दोनों पुत्र हुए थे ।३। प्रसेन को ही परमोत्तम मणियों में भी रत्न स्यमन्तक मणि थी । यह स्यमन्तक मणि पृथिवी में समस्त रत्नों की राजा मणि हुई है ।४। हृदय में उसको प्राप्त करने की बहुत कुछ मनोरथ करके इस मणि की याचना की गयी थी किन्तु साक्षात् गोविन्द

ने भी उसको प्राप्त नहीं किया था। वह सर्व समर्थ होते हुए भी उसका हरण उन्होंने नहीं किया था।५। किसी समय में उसी मणि से भूषित होकर प्रसेन मृगया की क्रीड़ा करने के लिए चला गया था। किसी हिंसक पशु जैसा उसने बिल में शब्द का श्रवण किया था जो कि शब्द सुनिया था।६। इसके पश्चात् गुफा के मध्य प्रसेन ने अपनी प्रवेश किया था। वहाँ पर उसमें ऋक्ष को देखा था। वहाँ पर दोनों ऋक्ष और प्रसेन में युद्ध हुआ अन्त में ऋक्ष ने प्रसेन पर विजय प्राप्त करली थी।७।

हत्वा: ऋक्ष: प्रसेनन्तु ततस्तं मणिमाददात् ।
अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ।८
प्रसेनन्तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः ।
गोविन्देन हृतोऽव्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात् ।९
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः ।
तं दृष्ट्वा हतवानेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह ।
हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ।१०
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः ।
यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्यासमागमत् ।११
तं दृष्ट्वा तु महानादं चक्रे ऋक्षराड्बली ।
शब्दं श्रुत्वा तु गोविन्दः खड्गपाणिः प्रविश्य सः ।
अपश्यज्जाम्बवन्तं तं ऋक्षराजं महाबलम् ।१२
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा ।
जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः ।१३
तुष्टावैनं तदा ऋक्षः कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम् ।
ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेणैनमरोचयत् ।१४

ऋक्ष ने प्रसेन का वध करके उससे वह मणि ग्रहण करली थी। उस समय में यह हत हुआ किसी के द्वारा भी नहीं देखा गया था और

बिल के अन्दर चला गया था ।८। प्रसेन को हत जानकर गोविन्द बहुत अधिक परिशंकित होगये थे। यही उस समय में लोकजनों को प्रतीत हो गया था कि गोविन्द ने ही स्यमन्तक मणि के कारण से उसका हनन किया है ।९। प्रसेन तो उस मणि रत्न से विभूषित होकर ही अरण्य में गया था। उसको देखकर सिंह के द्वारा उसको हत किया गया है—यही गोविन्द ने उत्तर दिया। मैं वृष्णियों प्रभु के समान उस दुराचारी का अवश्य ही हनन करूँगा ।१०। इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् यह इच्छा से गोविन्द पुनः मृगया के लिये निकल कर गये थे। विचरण करते हुए यह इच्छा से ही गोविन्द उसी बिल के समीप में प्राप्त हो गये थे ।११। उनको देखकर बली ऋक्षराट् ने महान् शब्द किया था। उस ऋक्ष के शब्द की अवज्ञा करके गोविन्द ने हाथ में खड्ग धारण करके उस बिल में प्रवेश किया था और वहाँ पर महान् बलशाली ऋक्षराज उस जाम्बवन्त को जाकर देखा था ।१२। उसको देखकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले होकर हृषीकेश ने तुरन्त ही एकदम उस ऋक्षपति जाम्बवन्त को पकड़ लिया था ।१३। उस समय में ऋक्षराज जाम्बवन्त ने वैष्णव वचनों के द्वारा इन प्रभु की स्तुति की थी। इसके पश्चात् भगवान् परम सन्तुष्ट हो गये थे और वरदान के द्वारा इसको भी प्रसन्न कर दिया था ।१४।

इष्टो चक्र प्रहारैस्त्वयाऽहं भगवन्प्रभो ! ।
कन्यामेनां मम शुभां भर्तारं त्वामवाप्नुयात् ॥
योऽयं मणिः प्रसेनन्तु हत्वा प्राप्तो मया प्रभो ।१५।
ततः स जाम्बवन्तीं तां हृत्वा चक्रेण तं प्रभुः ।
कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत् ।१६।
ददौ सत्राजिते तं वै सभामध्ये सभासदि ।
तेन मिथ्याभिवादेन सन्तप्ता ये जनार्दने ।१७।
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन् ।

अस्माकन्तु मतिर्ह्यासीत्प्रसेनस्तु त्वयाहृतः ।१८
कैकेयस्य सुता भार्या दश सत्राजितः शुभाः ।
तासूत्पन्नाः सुतास्तस्य सर्वलोकेषु विश्रुताः ।
ख्यातिमन्तो महावीर्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः ।१९
अथ व्रतवती तस्माद् भङ्गकारात्तु पूर्वजात् ।
सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः ।२०
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता ।
तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात् ।२१

जाम्बवान ने कहा—हे प्रभो ! मैं तो अब आपसे ही चक्र के प्रहार के द्वारा मृत्यु की ही इच्छा करता हूँ । यह एक मेरी परमशुभ एक कन्या है वह आज को ही अपना भर्ता प्राप्त कर लेवे । हे प्रभो ! मैंने ही प्रसेन का हनन करके यह मणि प्राप्त की है ।१६। इसके अनन्तर उन प्रभु ने मन्त्र के द्वारा जाम्बवान का उसी की इच्छा के अनुसार हनन कर दिया था और कर्म समाप्त करके महान् बाहुओं वाले प्रभु उस कन्या के साथ ही मणि का उपाहरण कर लिया था ।१७। फिर द्वारका में समस्त सात्वतों की सभा में बुलाकर उस मणि को सत्राजित को दे दिया था । फिर जो जनार्दन प्रभु के विषय में मिथ्या अपवाद लगा रहे थे वे बहुत ही लज्जित हुए थे ।१८। इसके उपरान्त सभी यादवों ने भगवान् वासुदेव से कहा था कि हमारा सबका विचार तो यही निश्चित होगया था कि प्रसेन को आपने ही मार दिया है ।१९। कैकेय की दस शुभ कुमारी सत्राजित् की भार्याएँ थीं । उस सत्राजित् के उन दसों भार्याओं से समुत्पन्न पुत्र समस्त लोकों में विश्रुत थे ।१९। ये सब बड़ी ही ख्याति वाले थे और महान् बल-वीर्य से सुसम्पन्न हुए थे । इनमें भङ्गकार सबसे प्रथम उत्पन्न वाला ज्येष्ठ था । इसके अनन्तर उस पूर्वज भङ्गकार से व्रतवती पत्नी ने कमल के सदृश नेत्रों वाली परम सुन्दरी तीन सुकुमारी कन्याओं को प्रसूत किया था ।२०। सत्यभामा सभी स्त्रियों में परम श्रेष्ठ थी—

वृकिनी सहदेवा नाम्नी थी और तीसरी पद्मावती थी। उन तीनों को ही उसने श्रीकृष्ण के लिये दे दिया था ।२१।

अनमित्रात् शनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ।
सत्यवांस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ।२२
सत्यवान्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान् ।
असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्याऽत्मजोऽभवत् ।२३
द्युम्नेर्युगन्धरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिताः ।
अनमित्रान्वयो ह्येष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः ।२४
अनमित्रस्य संजज्ञे पृश्न्यां वीरो युधाजितः ।
अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च ।२५
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।
जयन्तस्तु जयन्त्यान्तु पुत्रः समभवच्छुभः ।२६
सदा यज्ञोऽति वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।
अक्रूरः सुषुवे तस्मात्सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ।२७।

वृष्णि के सबसे छोटे पुत्र से जिसका नाम अनमित्र था शनि ने जन्म धारण किया था। उसका पुत्र सत्यवान् हुआ था और इस सत्यवान् का आत्मज सात्यकि नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।२२। सत्यवान् और युयुधान शिनि के प्रतापशाली नप्ता (नाती) थे। युयुधान का पुत्र असङ्ग नामधारी हुआ और उसका आत्मज द्युम्नि हुआ था ।२३। द्युम्नि का पुत्र युगन्धर उत्पन्न हुआ था—ये सभी शैन्य नाम से ही प्रकीर्तित हुए थे। यह अनमित्र का वंश जो कि वृष्णि वंश से ही समुत्पन्न है पूर्णतया कह दिया गया है ।२४। अनमित्र की पृश्नी में वीर युधाजित ने जन्म लिया था। अन्य भी दो वीर-तनय हुए थे जिनके अपनी भार्या के रूप में प्राप्त किया था। जयन्ती में जयन्त नामक शुभ पुत्र समुत्पन्न

हुआ ।२६। वह सदा ही यज्ञों के करने वाला और अत्यन्त वीर था तथा श्रुतवान अर्थात् शास्त्रों का ज्ञाता और अतिथियों से प्यार करने वाला था । उससे अक्रूर समुत्पन्न हुआ था । यह भी सदा-सर्वदा यज्ञों के करने वाला और अत्यधिक दक्षिणा देने वाला हुआ था ।२७।

रत्ना कन्या च शैब्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान् ।
पुत्रानुत्पादयामास एकादशमहाबलान् ।२८
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य एव च ।
सविता तो महापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः ।२९
धर्मभृद्धर्मवर्माणौ धृष्टमानस्तथैव च ।
सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते ।३०
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्द्धनौ ।
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसन्निभौ ।३१
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ।३२
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च ।
अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा ।३३
इमांमिथ्याभिशस्तिंयोवेदकृष्णस्यापोहिताम् ।
नसमिथ्याभिशापेनअभिशस्योऽथकेनचित् ।३४

शैब्य की कन्या का नाम रत्ना था । अक्रूर ने उसको प्राप्त किया था । उसमें अक्रूर ने ग्यारह महान् बलवाले पुत्रों को जन्म देकर उत्पन्न किया था । उनके नाम ये हैं—उपलम्भ, सदालम्भ, वृकल, वीर्य, शिरो, महापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृत, धर्मवर्मा और धृष्टमान । ये सभी प्रतिहोता हुए थे । जिन्होंने रत्ना से जन्म प्राप्त किया था ।२८-३०। अक्रूर से उग्रसेना में दो पुत्र कुल के वर्धन करने वाले हुए थे । उनके नाम देववान् और उपदेव थे जो बिल्कुल देवों के ही तुल्य थे ।

।३३। इसके पश्चात् शाम्बिनी जो पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये होते हैं—पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, दीर्घबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, अर्पासि, सभूमि, वर्णभूमि, श्रविष्ठ, श्रवण । इस मिथ्या अभिशस्ति को जो भगवान् कृष्ण से अपोहित की गयी है जो भी कोई जानता है तथा नित्य नियम से इसका पाठ तथा श्रवण किया करता है वह पुरुष कभी भी किसी के भी द्वारा मिथ्याभिशाप से अभिशाप्य नहीं होता ।३२-३४।

— × —

२४—कृष्णोत्पत्ति वर्णन

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीढुषम् ।
पौरुषाज्जज्ञिरे शूराद् भोजायां पुत्रकादश ।१
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ।
देवमार्गस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ।२
अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव सृञ्जयः ।
श्यामः शमीकः संयूप पञ्चास्य वराङ्गनाः ।३
श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवी श्रुतश्रवाः ।
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।४
कृतस्य तु श्रुता देवी सुग्रहं सुषुवे सुतम् ।
कैकय्यां श्रुतकीर्त्यां तु जज्ञे सोऽनुव्रतो नृपः ।५
श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत ।
वार्धिको धर्मशारीरः स बभूवारिमर्दनः ।६
अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजे सुतां ददौ ।
एवं कुन्ती समाख्याता वसुदेवस्वसा पृथा ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—ऐक्ष्वाकी ने शूर-ख्यात-अद्भुत, मीढुष पुत्र का जनन किया था । शूर पौरुष से भोजा में दश पुत्रों ने जन्म

ग्रहण किया था ।१। आनक दुन्दुभि महान् बाहुओं वाले वासुदेव ने सर्व प्रथम देवमाता और इसके अनन्तर देवसखा को जन्म प्रदान किया था ।२। फिर अनावृष्टि, शिनि, नन्द, ससृञ्जय, श्याम, शमीक, संयुप को समुत्पन्न किया था । इन वसुदेव के पाँच वराङ्गनायें थीं । श्रुत देवी पृथा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधि देवी, ये इन पाँचों के शुभ नाम थे । ये पाँचों ही वीरों को जन्म प्रदान करने वाली माताएँ थीं ।३—४। श्रुतकी पुत्र देवी ने सुगह्व सुत को प्रसूत किया था । कैकेयी और श्रुतकीर्ति में वह अनुव्रत नृप समुत्पन्न हुए थे ।५। श्रुतश्रवा में चैद्य का सुनीथ हुआ था । जिस समय में वह एक ही वर्ष का था वह परम धर्म से समन्वित शरीर वाला और अपने अरियों के मर्दन करने वाला हो गया था ।६। इसके अनन्तर संजय ने उस कुन्ति भोज के पट्टे हो जाने पर सुता दे दी थी । इस प्रकार से कुन्ती वसुदेव की स्वसा तथा सखाख्यात् हुई थी ।७।

वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्या ह्यनिन्दिता ।
पाण्डोरर्थेऽथ सा जज्ञे देवपुत्रान्महारथान् ।८
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः ।
इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव शक्रतुल्य पराक्रमः ।९
माद्रवत्यान्तु जनितावश्विभ्यामिति शुश्रुमः ।
नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ ।१०
रोहिणी पौरवी सा तु ख्यातमानकदुन्दुभेः ।
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणञ्च सुतं प्रियम् ।११
दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारक महाहनू ।
चित्राक्षौ द्वे कुमार्य्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा ।१२
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि ।
उदासी भद्रसेनश्च ऋजुदासस्तथैव च ।
षष्ठो भद्र विदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ।१३

प्रथमाया अमावास्या वार्षिकी तु भविष्यति ।
तस्यां जज्ञे महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः ।१४

वसुदेव ने उसको पाण्डु के लिए प्रदान कर दी थी जो कि उसकी परम यशस्विनी भार्या हुई थी। उसने पाण्डु के धर्म के द्वारा महारथ देव पुत्रों का जन्म दिया था ।८। धर्म से युधिष्ठिर ने जन्म लिया था। वायु देव से वृकोदर ने प्रसव प्राप्त किया था। इन्द्रदेव से धनञ्जय को समुत्पन्न किया था जो शक्र के ही तुल्य बल पराक्रम वाला हुआ था। ।९। माद्रवती में तो ऐसा सुनते हैं अश्विनी कुमारों से दो पुत्र नकुल और सहदेव समुत्पन्न हुए थे जो रूप लावण्य शील और अनेक गुण गणों से समन्वित थे ।१०। पौरवी रोहिणी नाम वाली भार्या ने आनक दुन्दुभि से परम विख्यात ज्येष्ठ पुत्र बलराम की प्राप्ति का लाभ उठाया था और उस प्रिय सुत का सारण भी हुआ ।११। अन्य सुत जो हुए थे उनके नाम इस प्रकार से हैं—दुर्दम-दमन-शुभ्र-पिण्डारक महाहनु। उस समय में चित्रा अक्षी दो कुमारियों ने भी रोहिणी में जन्म ग्रहण किया था ।१२। देवकी में शौरि से कीर्तिमान् सुषेण—उदायी—भद्रसेन तथा ऋजुदास—छठवाँ पुत्र भद्र नाम वाला था और विदेह ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे किन्तु कंस के सभी का घात कर दिया था ।१३। प्रथम अमावस्या से वार्षिकी होगी। उसमें महान् बाहुओं वाले प्रजापति श्रीकृष्ण पूर्व में समुत्पन्न हुए थे ।१४।

अनुजात्यभवत् कृष्णात् सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
देवक्यान्तु महातेजा जज्ञे शूरो महायशाः ।।१५
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः ।
उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता ।
एकां कन्याञ्च सुभगां सुतामभ्यपालयत् ।।१६
विजयं रोचमानञ्च वर्द्धमानन्तु देवलम् ।

एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्याः प्रजज्ञिरे ।१७
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत ।
वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दको नाम नामतः ।१८
सप्तमं देवकी पुत्रं मदनं सुषुवे नृप ।
गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम् ।१९
श्रद्धा देव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा ।
वैश्यायामदधात् शौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम् ।२०
सुतनुर्रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ ।
पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ ।२१

कृष्ण से पीछे एक कन्या सुभद्रा नाम वाली समुत्पन्न हुई थी जो परम भद्र भाषण करने वाली थी। देवकी में तेजस्वी तथा महा यशस्वी शूर ने जन्म ग्रहण किया था ।१५। शौरिकुल का उद्वहन करने वाले सहदेव ने ताम्रा में जन्म प्राप्त किया था और देवरक्षिता ने उपासङ्ग-धर पुत्र प्राप्त करने का मान उठाया था। परम शुभा एक कन्या समुत्पन्न हुई थी किन्तु उसी समय में दुष्ट कंस ने उसका पातकन किया था ।१६। विजय-रोचमान वर्द्धमान-देवल ये समस्त महान् आत्माओं वाले पुत्रों ने उपदेवी के उदर से जन्म प्राप्त किया था ।१७। महात्मा अवगाह वृकदेवी में उत्पन्न हुआ। वृकदेवी में नन्दक नाम धारी ने स्वयं जन्म प्राप्त किया था ।१८। हे नृप ! देवकी ने सातवाँ पुत्र मदन को प्रसूत किया था और संग्रामों में पराजित न होने वाले महाभाग गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया था ।१९। परम प्राचीन समय में श्रद्धा देवी के वन में विहार के समय में विचरण करते हुए शौरि ने वैश्या में अग्रज पुत्र कौशिक को धारण किया था ।२०। सुतनु रथराजी ये ही दो शौरि के परिग्रह हुए थे ।२१।

जरानाम निषादोऽभूत प्रथमः स धनुर्धरः ।
सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्वौ बभूवतुः ।२२

देवभागसुतश्चापि नाम्नाऽसावुद्धवः स्मृतः ।
पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्भवम् ।२३
ऐक्ष्वाक्यलभतापत्यं अनाधृष्टेर्यशस्विनी ।
निर्धूतसत्त्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत ।२४
करूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतन्ददौ ।
सुचन्द्रन्तु महाभाग वीर्यवन्तं महाबलम् ।२५
जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ ।
चारुदेष्णश्च साम्बश्च वीर्यवन्तौ महाबलौ ।२६
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ ।
शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः ॥
विराजश्च धनुश्चैव श्याम्यश्च सृञ्जयस्तथा ।२७
अनपत्योऽभवच्छ्यामः शमीकस्तु वनं ययौ ।
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान् ।२८
कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः ।
शृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।२९

एक धन्वी नामधारी निषाद हुआ था और वह प्रथम धनुर्धर था । सौमद और सब ये भी महान सत्त्व हुए थे ।२२। देवभाग का भी सुत हुआ था जो कि यह उद्धव इस शुभ नाम से प्रसिद्ध हुआ था । देवश्रव इस समुद्भूत पुत्र को प्रथम पण्डित कहा करते थे ।२३। यशस्विनी ऐक्ष्वाकी ने अनाधृष्टि से सन्तति प्राप्त करने का लाभ उठाया था । निर्धूत सत्त्व—शत्रुघ्न और श्राद्ध उससे समुत्पन्न हुए थे ।२४। करूष जो कि सन्तति से विहीन था उसको श्रीकृष्ण परम तुष्ट होकर ही सुत दे दिया था । महाभाग सुचन्द्र महान् बलवान् वीर्यवान् हुआ था ।२५। जाम्बवती के दो पुत्र सत्कृत लक्षणों वाले हुए थे । उन दोनों के शुभ नाम चारुदेष्ण और साम्ब थे । ये दोनों वीर्यवान् और महान् बलशाली थे ।२६। नन्दन के तन्तिपाल और तन्ति दो सुत समुत्पन्न हुये थे । शमीक के चार पुत्र परम विक्रमशाली और सुमहान् बल से सम्पन्न हुए

हैं जिनके नाम विराज—धनु—श्याम और दुन्दुभ थे।८७। इनमें श्याम अकाल में ही मर गया था अर्थात् उसके कोई भी सन्तति नहीं हुई थी। क्योंकि वो वन में चला गया था और श्रीकृष्ण की सुश्रूषा करता हुआ वह राजर्षि के पद को प्राप्त हो गया था।८८। यह श्रीकृष्ण के जन्म का अभ्युदय है इसको जो पुरुष नित्य ही नियम से कीर्तित किया करता है अथवा इसका श्रवण किया करता है वह मानव समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।८९।

२५—कृष्णसन्तान वर्णन

अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः।
विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते।१
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः।
चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपोज्ज्वलन् श्रिया।२
श्रीवत्सलक्षणं देव दृष्ट्वा लक्षणैः।
उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो।३
भीतोऽहं देव ! कंसस्य ततस्त्वेतद्ब्रवीमि ते।
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः।४
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः।
अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत्।५
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत्।
अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति।६

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर महान् देव देव प्रजापति श्री कृष्ण पूर्व में विहार के लिये ही यह देवेश्वर यहाँ संसार में मनुष्यों में समुत्पन्न हुआ करते हैं।१। वसुदेव की तपश्चर्या से ही देवकी में पुष्करेक्षण-चार भुजाओं वाले दिव्य रूप से समन्वित श्री से जाज्वल्य-

मान होते हुए उस समय में प्रादुर्भूत हुए थे ।२। श्रीवत्स प्रधान चिन्हों के लक्षण वाले तथा दिव्य लक्षणों से संयुत देव का उस समय में दर्शन करके ही वसुदेव ने उनसे प्रार्थना की थी कि हे प्रभो ! आप अपने स्वरूप को संहृत कर लीजिए ।३। हे देव ! मैं राजा कंस से अत्यन्त ही भयभीत हो रहा हूँ इसीलिए आपसे यह निवेदन करता हूँ । इस दुष्ट कंस ने आपसे पहिले समुत्पन्न हुए आपके ज्येष्ठ भाई मेरे पुत्रों का हनन कर डाला है जो कि भीम बल पराक्रम से युक्त थे ।४। वसुदेव की प्रार्थना के इन वचनों का श्रवण करके भगवान् अच्युत ने अपने उस दिव्य स्वरूप का संहरण किया था । इसके उपरान्त उन्होंने औरसिकी अनुज्ञापन किया था और वह उनको नन्द गोप के गृह में ले गये थे ।५। उनको वसुदेव ने नन्द गोप के सुपुर्द करके यह कहा था कि आप ही मेरे इस पुत्र की रक्षा कीजिए । इससे ही सब यादवों का कल्याण होगा ।६।

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी ।
नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ।७
यो विष्णुं जनयामास यञ्च तातेत्यभाषत ।
या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्द्धयत् ।८
पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ।
ब्रह्मण कश्यपस्त्वांश पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ।९
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् ।
ये तया काङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः ।१०
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ।११
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ।
कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।१२
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा ।

सुभामानग्नजित्यागान्धारीलक्ष्मणा तथा ।२३
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा ।
सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया तथा ।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ।२४

मुनिगण ने कहा—वह वसुदेव कौन थे और परम यशस्विनी वह देवकी कौन थी ? नन्द नाम वाला यह जो गोप आपने बतलाया था वह भी कौन हुआ था तथा महाप्रभु की माता यशोदा कौन थी ? ।७। जिसने भगवान् विष्णु को पुत्र के रूप में जन्म दिया था और जिसको माता कह कर पुकारा था जिसने अपने गर्भ में रखकर इनको जन्म ग्रहण कराया था और जिसने इनका बाल्यावस्था में परिवर्द्धन किया था ।८। सूतजी ने कहा—कश्यप नाम वाले पुरुष थे और अदिति नाम वाली उनकी प्रिया बताई गयी है । यह कश्यप तो ब्रह्माजी का अंश था और अदिति पृथ्वी का अंश हुई थी ।९। इसके उपरान्त महान् बाहुओं वाले प्रभु ने देवकी की कामनाओं को पूर्ण कर दिया था । जो नित्य ही अजन्मा हैं ऐसे अजन्मा प्रभु को उसने पुत्र के रूप में देखने की इच्छा की थी ।१०। इसी लिये वह देव इस मही मण्डल में अवतीर्ण हुए थे और फिर मानुषी तनु में उन्होंने प्रवेश किया था । यह प्रभु तो योगात्मा थे । इन्होंने अपनी योग माया से ही समस्त भूतों को मोहित कर दिया था ।११। जिस समय में इस मही मण्डल में धर्म नष्ट हो गया था उसी समय में प्रभु विष्णु ने वृष्णि कुल में जन्म ग्रहण किया था । इनके वृष्णि कुल में उत्पन्न होकर अवतार धारण करने का प्रमुख प्रयोजन ही धर्म को संस्थापित करना और बढ़े हुए दुष्ट असुरों का नाश करना ही था ।१२। जब प्रभु ने भी कृष्णावतार धारण किया था उस समय में प्रभु की षोडश सहस्र पत्नियाँ थीं । उनमें प्रमुख नामों का ही थोड़ा सा प्रदर्शन यहाँ पर किया जाता है—रुक्मिणी—सत्यभामा—सत्या—नाग्नजिती—सुमाया—शैब्या—गान्धारी—लक्ष्मणा—मित्रविन्दा—कालिन्दी देवी—

जाम्बवती-सुशीला-माद्री—कौशल्या लक्ष्मणा विजया एवं माद्री देवियाँ थीं।१३-१४।

रुक्मिणी जनयामास पुत्रं रणविशारदम् ।
चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ।१५
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च ।
परशुम्नञ्चारुगुप्तञ्च चारुभद्रं सुचारुकम् ।
चारुहासं कनिष्ठञ्च कन्यां चारुमतीं तथा ।१६
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भ्रमरकेक्षणः ।
रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रबन्धो जलन्धमः ।१७
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारश्च यवीयसीः ।
जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः ।१८
मित्रवान्मित्रविन्दश्च मित्रविन्दा वरांगना ।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजा हि सा ।१९
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत ।
अशीतिश्च सहस्राणि वासुदेवसुतास्तथा ॥
लक्षमेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणाञ्च द्विजोत्तमाः ।२०
उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च ।
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषण सुतावुभौ ।२१

रुक्मिणी देवी ने रण में विशारद पुत्र को जन्म दिया था। चारुदेष्ण रणविद्या में महान् शूर था—प्रद्युम्न महान बलवान् था—सुचारु-भद्रचारु सुदेष्ण-भद्र-परशु-चारुगुप्त चारुभद्र-सुचारुक-चारुहास-कनिष्ठ ये पुत्र हुए थे तथा चारुमती नाम वाली एक कन्या थी।१५-१६। सत्यभामा में भानुभ्रमरकेक्षण—रोहित—दीप्तिमान्—ताम्रबन्ध—जलन्धर ये पुत्र हुए थे और उन सबकी चार छोटी बहिनों ने जन्म ग्रहण किया था। जाम्बवती के समिति शोभन साम्ब पुत्र ने जन्म लिया था।१७-१८। मित्रविन्दा के मित्रवान् और मित्रविन्द पुत्र हुए थे। नग्नजिता

की प्रजा चित्रबाहु और सुनीथ हुई थी अर्थात् इन नामों वाले पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया था। इस प्रकार के सहस्रों ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे—ऐसा ही समझ लेना चाहिए। सबको वासुदेव प्रभु के ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे द्विजों में परमोत्तम गण! फिर उन पुत्रों के जो पुत्र हुए थे उनकी संख्या एक लाख थी।१९-२०। उपासङ्ग से वज्र और संक्षिप्त ये दो पुत्र हुए थे। सुरोत्तम सेन और भूरि ये दो पुत्र गवेषण के समुत्पन्न हुए थे।२१।

प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः।
अनिरुद्धो रणे रुद्धः जज्ञेऽस्य मृगकेतनः ॥२२
काम्या सुपार्श्वतनया साम्बाल्लेभे तरस्विनः।
सत्यप्रकृतयो देवाः पञ्च वीराः प्रकीर्तिताः ॥२३
तिस्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्।
षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः।
देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः ॥२४
देवासुरे हता ये च असुरा ये महाबलाः।
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानुषान् ॥२५
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले।
कुलानां शतमेकञ्च यादवानां महात्मनाम् ॥२६
सर्वमेतत् कुलं यावद्वर्तते वैष्णवे कुले।
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः ॥२७

प्रद्युम्न का दायाद बुद्धि सत्तम वैदर्भी में अनिरुद्ध हुआ था जो रण में रुद्ध था फिर उसका पुत्र मृगकेतन प्रसूत हुआ था।२२। साम्ब से काम्या सुपार्श्वतनया को प्राप्त किया था। ये तपस्वी-सत्य प्रकृति वाले पाँच वीर देव कीर्तित किये हैं।२३। प्रबल वीर महान आत्मा वाले यादवों की संख्या तीन करोड़ थी। साठ सौ सहस्र अत्यधिक वीर्य

वाले और महान् बलवान् हुये थे। वे महान् ओज वाले सभी यहाँ पर देवताओं के अंशावतार ही समुत्पन्न हुए थे।२४। देवासुर संग्राम में जो महान् बलवान् असुर हत हो गये थे। वे ही सब यहाँ पर मनुष्यों में समुत्पन्न हो गये थे जो कि सब मानवों को बाधायें पहुँचाया करते हैं। उन सबके उत्सादन करने के लिए ही यादव कुल में उत्पन्न हुए थे। महात्मा यादव कुलों का एक सौ परिवार था यह समस्त कुल अब तक वैष्णव कुल में वर्तमान है। भगवान् विष्णु उनके प्रणेता थे और प्रभुत्व में व्यवस्थित थे। समस्त यादवगण उनके निर्देश में स्थित रहने वाले कहे जाते हैं।२५-२७।

—×—

२६—ययाति वंश की शाखाओं का वर्णन

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चात्मजः ।
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः ।१
करन्धमस्तु त्रैसानिर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः ।
दुष्यन्तः पौरवश्चापि तस्य पुत्रो ह्यकल्मषः ।२
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा ।
तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुत्रकिण ।३
दुष्यन्तस्य तु दायादो वरूथो नाम पार्थिवः ।
वरूथात्तु तथाण्डीरः सन्धानस्तस्य चात्मजः ।४
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च ।
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ।५
द्रुह्योस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च ।
सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चात्मजः ।६
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गन्धारविषयो महान् ।
आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः ।७

महामहर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—तुर्वसु का सुत गर्भ हुआ था और इसका आत्मज गोभानु था। गोभानु का पुत्र अपराजित वीर

त्रिसारि उत्पन्न हुआ था ।१। करन्धम त्रिसारि का आत्मज था और उसका पुत्र मरुत्त समुत्पन्न हुआ था । पौरव का पुत्र दुष्यन्त था तथा उसका पुत्र करूरोम हुआ था ।२। इस प्रकार से प्राचीन काल में ययाति के शाप से पहिले जरा के संक्रमण में तुर्वसु के पौरव वंश ने प्रवेश किया था ।३। दुष्यन्त का आत्मज करूत्थम नाम वाला पार्थिव हुआ था । आक्रीड से सन्तान वीर पुत्र हुआ था । इसके आत्मज पाण्ड्य-केरल-चोल और कर्ण थे । इनके जनपद भी महान् स्फीत थे । जो पाण्ड्य-चोल और केरल नाम वाले ही हुए थे ।४-५। द्रुह्यु के दो पुत्र थे जो बड़े ही शूर थे उनके नाम सेतु और केतु थे । सेतु का पुत्र शरद्वान् हुआ था और फिर उसका पुत्र गान्धार नाम वाला था ।६। इसी के नाम से महान् देश भी गान्धार कहा गया था । उसके आरट्ट देश में उत्पन्न होने वाले अश्वों में परम श्रेष्ठ थे ।७।

गान्धारपुत्रो धर्मस्तु घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
घृताद्विदुषोऽजज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ।८
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः ।९
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः ।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषुस्तथैव च ।१०
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कोलाहलो नृपः ।
कोलाहलस्य धर्मात्मा सञ्जयो नामविश्रुतः ।११
सञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरञ्जयः ।
जनमेजयो महाराज ! पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।१२
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः ।
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशास्तथा ।१३
महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ।
सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः ।१४

उस गान्धार का पुत्र धर्म हुआ और उसका आत्मज धृत नाम वाला था। विद्वान् धृत से प्रचेता ने जन्म प्राप्त किया था ।८। प्रचेता के एक सौ पुत्र हुए थे वे सभी राजा हुए थे। ये सब म्लेच्छ राष्ट्रों के अधिप थे और सभी ने उत्तरी दिशा का समाश्रय ग्रहण किया ।९। अनु के तीन परम धार्मिक तथा वीर पुत्रों ने जन्म प्राप्त किया था। उन तीनों के नाम सभानर—चाक्षुष और परमेषु ये तीन थे ।१०। सभानर का पुत्र परम विद्वान् कोलाहल नामधारी नृप हुआ था फिर इस कोलाहल का पुत्र भी धर्मात्मा सञ्जय नाम से विश्रुत उत्पन्न हुआ था ।११। सञ्जय के पुत्र का नाम वीर पुरञ्जय हुआ था। हे महाराज ! जनमेजय पुरञ्जय के ही आत्मज हुए थे ।१२। राजर्षि जनमेजय के महाशाल नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। यह राजा देवों के ही समान प्रतिष्ठित यश वाला हुआ था ।१३। इस महाशाल के महामना नाम वाला परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। महामना सातों द्वीपों का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट् पैदा हुआ था ।१४।

महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ।
उशीनरञ्च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ ॥१५
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः।
भृशा कृशा नवा दर्शा या च देवी दृषद्वती ॥१६
उशीनरस्य पुत्रास्तु तासु जाताः कुलोद्वहाः।
तपसा ते तु महता जाता वृद्धस्य धार्मिकाः ॥१७
भृशायास्तु नृगः पुत्रो नवायाश्च नर एव च।
कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाः सुव्रतोऽभवत्।
दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिबिरौशीनरो नृपः ॥१८
शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः।
पृथुदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा ॥१९
तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा।

सौवीराश्चैव पौराश्च नृगस्य केकयास्तथा ।२०
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी ।
नवस्य नवराष्ट्रन्तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु ।२१

महाराज महामनः ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को जन्म दिया था। उन दोनों में धर्म का ज्ञाता एक उशीनर था और दूसरे का नाम तितिक्षु था ।१५। उशीनर के पुत्र परम राजर्षि सम्पन्न थे। उशीनर की नृगा कृशा नवा-दर्शा और दृषद्वती ये पत्नियाँ थीं ।१६। उन्हीं से उशीनर के कुल के उद्वहन करने वाले पुत्र समुत्पन्न हुए थे। वे महान् तप के कारण परम धार्मिक हुए थे ।१७। नृगा के पुत्र का नाम नृग था। नवा का नव था। कृशा का कृश हुआ था और दर्शा के पुत्र का नाम सुव्रत था। तथा दृषद्वती के पुत्र का शुभ नाम औशीनर शिवि नृप हुआ था ।१८। राजा शिवि के शिवय चार पुत्र लोक में परम प्रसिद्ध समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम वृषदर्भ-सुवीर-कैकय और मद्रक थे ।१९। इन चारों के जो जनपद थे वे भी अतीव फैले हुए विशाल थे जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध थे। कैकय-मद्रक-सौवीर-पौर तथा नृग कैकय थे। सुव्रत की अम्बष्ठा तथा कृश की पुरी का नाम वृषला था। नव के नव राष्ट्र था। अब यहाँ से आगे तितिक्षु की जो प्रजा हुई थी उसको सुनिये ।२०-२१।

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः ।
उषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत्सुतः ।२२
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः ।
जातो मानुषयोन्यान्तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ।२३
महा योगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना ।
पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान्पञ्च पार्थिवान् ।२४
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च ।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते ।

वाजेयो ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभो ।२५
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः ।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ।२६
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः ।
त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ।२७
जयञ्चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम् ।
चतुरो नियतान् वर्णान् सर्वं स्थापयिता प्रभुः ।२८
तेषाञ्च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुह्मकास्तथा ।
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्यापि निबोधत ।२९

शिविराज पूर्व दिशा में एक महान् प्रसिद्ध राजा हुआ था । इसके भी पुत्र उत्पन्न हुआ था उसका नाम वृषद्रथ था और इसके पुत्र का नाम सेन था ।२२। सेन के यहाँ सुतपा नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था तथा सुतपा का पुत्र बलि हुआ था । वंश के क्षीण होने पर प्रजा की इच्छा से यह मानुष योनि में प्रसूत हुआ था ।२३। यह महान् योगी बलि महात्मा के द्वारा कर्मों से बद्ध हुआ था । इसने क्षेत्रज पाँच पार्थिव पुत्रों को समुत्पादित किया था । इसने अङ्ग—वङ्ग—सुह्म—पुण्ड्र और कलिंग को जन्म दिया था । बालेयक्षत्र कहा जाता है । हे प्रभो ! वालेय और ब्राह्मण उसके वंशकर हुये थे ।२४-२५। बुद्धिमान बलि को परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने वरदान प्रदान किया था कि महायोगित्व प्राप्त होवे—एक कल्प पर्यन्त आयु हो और संग्राम में अजेयत्व की प्राप्ति हो, धर्म में सर्वोत्तम मति होवे, तीनों कालों के देखने का ज्ञान होवे—प्रसव में प्रधानता हो तथा युद्ध में अप्रतिम विजय हो और धर्म में तत्त्वार्थ का दर्शन प्राप्त होवे । ये सभी ब्रह्माजी के प्रदान किये हुए वरदान थे । यह चारों नियत वर्णों का स्थापन करने वाला प्रभु हुआ था ।२६-२७-२८। उनके पाँच दायाद थे—वंग—अंग सुह्मक—

पुत्र और कनिष्ठ । अब अंग के विषय में ज्ञान प्राप्त करो ।२९।

बलिस्तानभिनन्द्याह पञ्च पुत्रान् ।
कृतार्थः सोऽपि धर्मात्मा योगमायावृतः स्वयम् ।३०
अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः ।
तत्राङ्गस्य तु दायादो राजासीद्दधिवाहनः ।३१
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः ।
आसीद्दिविरथापत्यं विद्वान् धर्मरथो नृपः ।३२
स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ ।
सोमः शुक्रेण वै राज्ञा सह पीतो महात्मना ।३३
अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल ।
तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद्दशरथः किल ।३४
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत् ।
अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः ।३५

महाराज बलि ने उन अकल्मष पाँचों पुत्रों का अभिनन्दन किया था और वह धर्मात्मा भी कृतार्थ हो गया था । फिर वह स्वयं योग माया वृत हो गया था ।३०। वह सब प्राणियों से अदृश्य रहते हुए काल की अपेक्षा करने वाला हो गया था । उसी अंग का जो दायाद था वह दधिवाहन राजा हुआ था ।३१। दधिवाहन का जो पुत्र हुआ वह दिविरथ नाम से कहा गया था । फिर दिविरथ से जो सन्तति हुई थी वह परम विद्वान् धर्मरथ नृप हुआ था ।३२। वह धर्मरथ परम श्रीमान् नृप था । उसने विष्णुपद गिरि में महात्मा शुक्र के साथ राजा ने सोम का पान किया था ।३३। इसके अनन्तर उस धर्मरथ के यहाँ चित्ररथ नाम वाले आत्मज ने जन्म लिया था । इसका पुत्र सत्यरथ पैदा हुआ था और सत्यरथ से दशरथ ने जन्म ग्रहण किया था ।३४। वह लोमपाद—इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था । इसकी शान्ता नाम-

शारिणी एक कन्या हुई थी । इसके अनन्तर धर्मरथ का पुत्र महान् यश वाला राजर्षि चतुरंग हुआ था ।३५।

ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः ।
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ।३६
पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह ।
चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनोऽभवत् ।३७
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ।
जज्ञे विभाण्डकात्तस्य वारणः शत्रुवारणः ।३८
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ।
हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल ।३९
अथ भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा जनेश्वरः ।
बृहद्भानुः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे महात्मवान् ।४०
बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ।
नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद्बृहद्रथो नृपः ।४१
आसीद्बृहद्रथाच्चापि विश्वजिज्जनमेजयः ।
दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः ।४२

यह ऋष्यशृंग के प्रसाद से ही कुल के वर्धन करने वाला समुत्पन्न हुआ था । चतुरंग के पुत्र का नाम पृथुलाक्ष कहा गया है ।३६। पृथुलाक्ष के पुत्र चम्प नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । चम्प की पुरी चम्पा थी जो पहिले मालिनी की थी ।३७। पूर्णभद्र के प्रसाद से इसके यहाँ हर्यङ्ग नाम वाले पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया था । विभाण्डक से इसके शत्रुओं का वारण करने वाला वारण ने जन्म लिया था । इसने मन्त्रों के द्वारा इस मही मण्डल में उत्तम वाहन अवतारित किया था । हर्यङ्ग का दायाद अर्थात् आत्मज भद्ररथ ने जन्म ग्रहण किया था ।३९। इसके उपरान्त उस भद्ररथ से बृहत्कर्मा जनेश्वर समुत्पन्न हुआ था । उसके पुत्र का नाम बृहद्भानु था और फिर उससे महात्मा वान् ने जन्म प्राप्त

किया था ।४०। राजाओं में इन्द्र के समान महान् प्रतापी बृहद्भानु ने एक सुत को प्रसूत किया, जिसका नाम जयद्रथ था फिर इससे दृढरथ नृप समुत्पन्न हुआ था ।४१। इस दृढरथ से विश्वजित् जनमेजय ने जन्म प्राप्त किया था । इसका आत्मज अंग हुआ और उस अंग से कर्ण नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था ।४२।

कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः ।
एतेऽङ्गस्यात्मजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया ।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु शृणुत द्विजाः ।४३
कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः ।
एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि ।४४
बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः ।
तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्चैद्यस्यैते तनये शुभे ।
यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशस्तु मे शृणु ।४५
जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत् ।
सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम् ।४६
विजयस्य बृहद्राजस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः ।
बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महात्मनः ।४७
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः ।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः ।
तच्चेह सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम् ।४८

कर्ण नृप का पुत्र वृषसेन हुआ और फिर इससे पृथुसेन ने जन्म लिया था । इतने ये सब अंग के आत्मज हुये थे जो सभी राजा थे । मैंने इन सबके नाम को बतला दिया है । अब हे द्विजगण ! विस्तार-पूर्वक तथा आनुपूर्वी के क्रम से जैसे भी एक के पीछे दूसरा हुआ था पूरो पुत्रान्तर के क्रम से पुत्र के विषय में आप लोग श्रवण करें ।४३। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! सूत का आत्मज कर्ण था वह राजा अंग

का राज्याभिषेक कैसे हुआ था। हम सब यही सुनना चाहते हैं। आप तो सभी कुछ के ज्ञाता एवं परम कुशल हैं।४४। श्रीसूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम वाला राजा उत्पन्न हुआ था। इस राजा की दो पत्नियाँ थीं जो कि शैब्य की परम शुभ पुत्रियाँ थीं। एक यशोदेवी थी और दूसरी सत्या थी। अब उन दोनों के वंश को मुझसे आप श्रवण कीजिए।४५। यशोदेवी ने जयद्रथ नाम वाले राजा को प्रसूत किया था, वह जो दूसरी सत्या नाम वाली पत्नी थी उसने बृहन्मना से विजय नाम वाले परम विश्रुत पुत्र को जन्म दिया था।४६। विजय का बृहत्पुत्र और फिर इसका पुत्र बृहद्रथ था। इस बृहद्रथ का पुत्र का नाम महात्मना सत्यकर्मा हुआ था।४७। सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ था और वह अधिरथ ही सूत कहा गया था जिसने कर्ण को प्रतिगृहीत किया था। इसी कारण से कर्ण सूतजी कहा गया था। यह मैंने सभी कुछ कह दिया है जो कि कर्ण के प्रति कहा गया है।४८

२७—पुरुवंश वर्णन

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः।
प्राचीन्वतः सुतस्तस्य यः प्राचीमकरोद्दिशम्॥१
प्राचीन्वतस्य तनयो मनस्युश्च तथाभवत्।
राजा वीतमयो नाम मनस्योरभवत् सुतः॥२
वीतमयस्तस्य चाप्यासीद्धुन्धुर्नाम महीपतिः।
धुन्धोर्बहुविधः पुत्रः सम्पातिस्तस्य चात्मजः॥३
सम्पातेस्तु रहंवर्चा भद्राश्वस्तस्य चात्मजः।
भद्राश्वस्य घृताच्यां तु दशाप्सरसि सूनवः॥४
औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः।
घृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः॥५

धर्मेयुः सन्नतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश ।
औचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ।६
तस्यां स जनयामास अन्तिनारं महीपतिम् ।
अन्तिनारो मनस्विन्यां पुत्रान् जज्ञे परान् शुभान् ।७

पुरु का पुत्र महान् तेज वाला यह राजा जनमेजय हुआ था। उससे फिर प्राची नामधारी पुत्र हुआ था जिसने प्राची दिशा को विजय किया था ।२। उसके पुत्र का नाम प्राचीन था और फिर इसका तनय मनस्यु हुआ था। मनस्यु का सुत पीताश्रुध राजा हुआ था ।३। उसका भी दायाद धुन्धु नाम वाला महीपति हुआ था। धुन्धु के यहाँ बहुविध नामक पुत्र ने जन्म लिया था फिर इसका आत्मज सम्पाति प्रसूत हुआ था ।३। सम्पाति का दायाद रहंवर्चा था और इसका पुत्र भद्राश्व ने प्रसव प्राप्त किया। भद्राश्व के घृता नाम वाली अप्सरा में दश पुत्र समुत्पन्न हुये थे ।४। उन दशों के नाम औचेयु, हृषेयु, कक्षेयु, सनेयुक, घृतेयु, चितेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, सन्नतेयु और पुण्येयु ये थे। औचेयु की ज्वलना नाम वाली भार्या थी जो तक्षक की आत्मजा थी ।५-६। उस भार्या में औचेयु ने अन्तिनार नामक महीपति को जन्म ग्रहण कराया था। उस अन्तिनार ने मनस्विनी नाम वाली भार्या में परम शुभ पुत्रों को जन्म प्रदान किया है ।७।

अमूर्तरयसं वीरं त्रिवक्रं चैव धार्मिकम् ।
गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा ।८
इलिनां तु यमस्यासीत्कन्या याजनयत् सुतान् ।
ब्रह्मवादपराक्रान्तांस्तु ब्रह्मवादिसिनाह्वयम् ।९
उपदानवी सुतान् लेभे चतुरस्त्वैलिनात्मजान् ।
सुष्मन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा ।१०
चक्रवर्ती ततो जज्ञे दुष्यन्तात् समितिञ्जयः ।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्नात्तु भारताः ।।११

दौष्यन्तिं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी ।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥१२

भरस्व पुत्रं दुष्यन्त ! मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ।
रेतोधाः नयते पुत्रः परेतं यमसादनात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥१३
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल ।
पुत्राणां मातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः ॥१४
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः ।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ॥१५

इन पुत्रों के नाम वसुरोध्य संवीर और परम धार्मिक विश्रुत थे । तीसरी पीढ़ी वाली कन्या थी जो मान्धाता की शुभ जननी हुई थी ।८। इलिना यम की कन्या थी जिसने सूनों को समुत्पन्न किया था । ये ब्रह्मवादन में परायण हुये थे और इलिना गुरुवत्सा थी ।९। उपदानवी ने इलिना के आत्मज से चार पुत्रों का जन्म प्राप्त किया था उन चारों के नाम ऋष्यन्त-दुष्यन्त-प्रवीर और अनघ थे ।१०। इसके पश्चात् राजा दुष्यन्त से चक्रवर्ती भरत ने जन्म ग्रहण किया था तथा शकुन्तला नाम वाली पत्नी में भरत नाम वाला महान् प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ था जिसके नाम से भारत हुए हैं ।११। राजा दौष्यन्ति के प्रति बिना शरीर वाली वाणी ने कहा था कि माता भस्त्रा पिता का पुत्र है जिससे वह ही समुत्पन्न हुआ है । हे दुष्यन्त ! अपने पुत्र का भरण करो और इस रेतोधा शकुन्तला का अपमान मत करो । पुत्र परेत को यम सदन से प्राप्त किया करता है । आप ही इसके गर्भ के धाता हैं—यह बात शकुन्तला जो इस समय में कह रही है यह बिल्कुल सत्य है । ।१२-१३। पुरातन समय में निश्चय ही भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर मातृक कोप से पुत्रों का महान् संक्षय किया गया था ।१४। इसके अनन्तर वह बृहस्पति का पुत्र मरुतों के द्वारा भरद्वाज ने भरत को संक्रामित किया था ।१५।

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ ।
भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतं ऋषिः ॥१६
दायादो वितथस्यासीद्भुवमन्युर्महायशाः ।
महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः ॥१७
बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान् ।
नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रौ महायशाः ॥१८
गुरुधीरन्तिदेवश्च सत्कृत्यास्तावुभौ स्मृतौ ।
गर्गस्य चैव दायादः शिबिर्विद्वानजायत ॥१९
स्मृताः शैब्यास्ततो गार्ग्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
आहार्यतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः ॥२०
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम् ।
त्र्युषणं पुष्करिं चैव कपिं चैव महायशाः ॥२१

इसके अनन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत दिवलोक को चला गया था । भरद्वाज ऋषि भी सुत का अभिषेक करके दिवलोक को चले गये ।१६। वितथ नामधारी महीपति का आत्मज महान् यश वाला भुवमन्यु समुत्पन्न हुआ था । इस भुवमन्यु के महाभूतों के तुल्य चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । इन चारों के नाम बृहत्क्षत्र—महावीर्य—नर और वीर्यवान् गर्ग थे । इस नर का पुत्र संकृति हुआ था और संकृति का सुत महायशा समुत्पन्न हुआ था ।१७-१८। गुरुधी और अन्तिदेव ये उनके नाम थे । ये दोनों सत्कृत्यान्त कहे गये थे । गर्ग का जो दायाद उत्पन्न हुआ था उसका नाम शिबि था और वह बहुत बड़ा विद्वान् हुआ था । इसके उपरान्त गार्ग्य शैब्य और क्षत्रोपेत द्विजाति कहे गये हैं । आहार्य का पुत्र परम बुद्धिमान् उरुक्षव उत्पन्न हुआ था ।१९-२०। उसकी भार्या विशाला थी जिसने तीन पुत्रों को प्रसूत किया था । ये महान् यश वाले इन तीनों के नाम त्र्युषण—पुष्करि और कपि थे ।२१।

उरुक्षवाः स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः ।
काव्यानां तु वरा ह्येते त्रयः प्रोक्ता महर्षयः ।२२
गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
संभूताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्य क्षितिः ।२३
बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह ।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरन्तु गजसाह्वयम् ।२४
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रयः परमकीर्तयः ।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ।२५
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रः कुरुकुलोद्वहाः ।
नीलिनी धूमिनी चैव केशिनी चैव विश्रुताः ।२६
स तासु जनयामास पुत्रान् वै देववर्चसः ।
तपसोऽन्ते महातेजा जाता वृद्धस्य धार्मिकाः ।२७
भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु ।
अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत्किल ।२८

ये सब ब्राह्मणत्व को प्राप्त उरुक्षव-इस नाम से विख्यात हुए थे । काव्यों के श्रेष्ठ ये तीनों महर्षि कहे गये थे ।२२। गर्ग—संकृति—काव्य-क्षत्रोपेत द्विजाति—संभूताङ्गिरस—दक्ष बृहत्क्षत्र क्षिति ये उत्पन्न हुए थे । इनमें बृहत्क्षत्र का दायाद हस्ति नाम वाला उत्पन्न हुआ । उसी ने इस गजसाह्वयपुर को पूर्व में निर्मित किया था ।२३-२४। इस हस्ति के तीन पुत्रों ने जन्म लिया और ये परमोत्तम कीर्ति-वाली थे । इनके नाम अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ थे ।२५। अज-मीढ़ की कुरु कुल के वहन करने वाली तीन पत्नियाँ थीं । उनके शुभ नाम नीलिनी—धूमिनी और केशिनी विश्रुत थे ।२६। उस राजा ने उन तीनों पत्नियों में देवोपम के तुल्य वर्चस वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था । ये तपश्चर्या की अन्तिम सीमा वाले—महान् तेजस्वी और परम धार्मिक हुए थे ।२७। अब महर्षि भारद्वाज के प्रसाद से उनके विषय

में विस्तार का वर्णन आप लोग मुझसे भली भाँति करिये । अब उस अजमीढ़ का पुत्र केशिनी में जो उत्पन्न हुआ था उसका नाम कण्व था ।२८।

मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजाः ।
अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहद्वसुर्नृप ।२९
बृहद्वसोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः ।
बृहन्मनः सुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः ।३०
बृहद्धनोर्बृहद्दिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः ।
अश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः ।३१

अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।
रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा ।३२
वत्सश्चावर्तको राजा परिवत्सकाः ।
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः ।३३
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान् ।
नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम् ।३४
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ।
तेषां वंशकरः श्रीमान् नीपानां कीर्तिवर्द्धनः ।३५

इस कण्व के पुत्र का नाम मेधातिथि था जिससे ये काण्वायन द्विज कहे गये थे । उसी अजमीढ़ का धूमिनी नाम वाली पत्नी में बृहद्वसु नृप ने जन्म प्राप्त किया था ।२९। बृहद्वसु का पुत्र बृहन्त और इसके भी पुत्र हुआ वह बृहन्मना नामधारी था । इसके सुत का नाम बृहद्धनु था जो कि विश्रुत था ।३०। बृहद्धनु का दायाद बृहद्दिषु था और इसके आत्मज का नाम जयद्रथ हुआ । जयद्रथ का पुत्र अश्वजित और उसका पुत्र सेनजित समुत्पन्न हुआ था ।३१। इस सेनजित के चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था जो लोक में अधिक विश्रुत थे । जिनके नाम ये हैं—रुचिराश्व—काव्य—राजा दृढ़रथ—वत्स और आवर्त्तक राजा था जिसके

से परिचायक हैं। वापरावत का दायाद महान् यशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेन का पुत्र पौर और उसका आत्मज नीप ने जन्म लिया था। इस नीप के एक सौ अमित ओज वाले पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी।२३-२४। वे सभी राजा लोग 'नीप'—इस नाम से समाख्यात थे। उन नीपों का वंश करने वाला श्रीमान् कीर्तिवर्धन था।२५।

काव्याच्च समरो नाम सर्वेष्टसमयोऽभवत्।
समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः।३६
पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि।
पारपुत्रः पृथुर्जातिः पृथोस्तु सुकृतोऽभवत्।३७
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः।
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान्।३८
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः।
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः।३९
युग्मदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः।
विभ्राजः पुनराजातः सुकृतेनेह कर्मणा।४०
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः।
उग्रायुधेन तस्यार्थे नीपाः प्रणाशिताः।४१
उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते।
किमर्थं चैव ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिताः।४२

काव्य से समर नाम वाला सर्वेष्ट समय हुआ। उस समर के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे—पार—सम्पार और सदश्व—ये उनके नाम थे।३६। वे सभी सुत सकल गुण गणों से समन्वित थे और भूमण्डल में परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले हुए थे। पार का पुत्र पृथु हुआ और पृथु से सुकृत पुत्र की उत्पत्ति हुई थी।३७। इसका आत्मज सब गुणों से

सुकृत विभ्राज ने जन्म लिया था। विभ्राज का पुत्र महान् बलवीर्य वाला अणुह नाम वाला हुआ था।३८। शुक का जामाता और महायशा कृत्वी का भर्त्ता हुआ। इस अणुह का आत्मज महीपति ब्रह्मदत्त समुत्पन्न हुआ।३९। उसका दायाद युगदत्त हुआ था और उसका पुत्र महायश वाला विष्वक्सेन हुआ था। यहाँ पर सुकृत कर्म से विभ्राज पुनः आजात हुआ था।४०। विष्वक्सेन के सुत का नाम दण्डसेन था और इसका पुत्र भल्लाट तथा भल्लाट का सुत जनमेजय था। उग्रायुध ने उसके लिये समस्त नीपों को प्रणाशित कर दिया था।४१। ऋषियों ने कहा—उग्रायुध किसका पुत्र था और किसके वंश में कहा जाता है? उसने किस लिये सब नीपों का विनाश कर दिया था?।४२।

उग्रायुधः सूर्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे ।
स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रन्तं भेजे जनमेजयः ।४३

तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानामखिलान्नृपम् ।
उग्रायुधात्तान्निखिलं जघ्नुस्तेषाञ्च भार्यया ।४४

हन्यमानान् गणानुच्चे यस्माद्द्वेषान्ते मे वधः ।
शरणागतरक्षार्थं तस्मात्वेनां शपामि वः ।४५

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं सर्वान्नयतु वो यमः ।
ततस्तान् कृष्यमाणांस्तु यमेन पुरतः स तु ।४६

कृपया परयाविष्टो जनमेजयमूचिवान् ।
गणानेतानिमान् वीरोऽद्य मे रक्षितुमर्हसि ।४७

अरे पापाः ! दुराचाराः ! भवितारोऽथ किं क्रूराः ।
तथेद्वृत्तस्ततो राजा यमेन युयुधे चिरम् ।४८

व्याधिभिर्नरकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात् ।
विजित्य मुनये प्रादात्सर्वभूतमिवाऽभवत् ।४९

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस सूर्य के वंश में समुत्पन्न हुआ

था उसने वराश्रम में अत्यन्त घोर तपस्या की थी । पश्चात् युक्त होकर साठ सहस्र वर्षों तक तप किया था। उसको अजमेजय ने वेधित किया था ॥४३॥ उसके राज्य को परिक्षुत करके उस शत्रु ने नीपों का हनन किया था । विविध प्रकार के सान्त्वना के वचन बोला था । उन्होंने दोनों का हनन कर दिया था ॥४४॥ कृध्यमान गर्व युक्तों से बोला था कि जिस कारण से मेरा वचन नहीं है । इसी से शरणागत रक्षा के लिये मैं आपको शाप दे देता हूँ ॥४५॥ मेरा तप तप्त है तो यमराज आप सबको ही ले जावें । इसके पश्चात् यम के द्वारा कृष्यमाण उनको आर्त होकर उसने अत्यन्त कृपा से समाविष्ट होकर अजमेजय से कहा था कि गये हुए इन मेरे नीपों की आप रक्षा करने के योग्य हैं ॥४६-४७॥ उनमें यम ने कहा---अरे पापियो ! हे दुष्ट आचार वालो ! इनके किङ्कर होओगे । इसके पश्चात् तथा इस प्रकार से कहे गये उस राजा ने फिर काल तक यम के साथ युद्ध किया था । नारकीय और व्याधियों से यम के साथ बल पूर्वक उनको विजित करके मुनि को दे दिया था—यह सब परम अद्भुत सा ही हुआ था ॥४८-४९॥

यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम् ।
सर्वं यथोचितं कृत्वा जग्मुस्ते कृष्णमव्ययम् ॥५०

येषान्तु चरितं पुण्यं दुष्यन्ते नामभूत्युभि: ।
इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते ॥५१

अजमीढस्य धूमिन्यां विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः ।
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः ।
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ॥५२
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ।
आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥५३
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड्भुवि ।
तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः ॥५४

महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ।
अथ रुक्मरथः स्यासीत् सुपार्श्वो नाम पार्थिवः ।५५
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ।
सुमतेश्चापि धर्मात्मा राजा सन्नतिमानपि ।५६

इसके अनन्तर यमराज उससे परम संतुष्ट हो गया था और उसने परम मुक्ति का ज्ञान प्रदान किया था । उसने फिर यथोचित किया था और फिर वे अव्यय श्रीकृष्ण के समीप चले गये थे ।५०। जिनके चरित्र को ग्रहण करके मनुष्यों से कभी भी दुःखमान नहीं हुआ करते हैं । इस लोक में और परलोक में उत्पन्न अक्षय सुख का उपभोग किया करता है ।५१। अजमीढ की एक पत्नी धूमिनी नाम वाली थी उस से परम विद्वान् यवीनर ने जन्म प्राप्त किया था । उसका सुत धृतिमान् और इसका सुत फिर सत्यधृति समुत्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् सत्यधृति का दायाद महान् प्रताप वाला दृढ़नेमि हुआ था ।५२। इस दृढ़नेमि से सुधर्मा नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था । इस सुधर्मा का सुत प्रताप वाला सार्वभौम हुआ था ।५३। वह सार्वभौम इसी नाम से विख्यात था । वह इस पृथिवी में एक ही राजा अभिषिक्त हुआ था । उसके वंश में जो एक महान् था महापौरव नाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ था ।५४। इस महापौर का जो सुत हुआ था वह राजा रुक्मरथ नाम से कहा गया था । इसके पश्चात् उसका जो दायाद हुआ था वह सुपार्श्व नाम वाला महीपति था ।५५। सुपार्श्व का पुत्र परम धार्मिक सुमति समुत्पन्न हुआ था । इस सुमति का आत्मज भी अत्यन्त धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् था ।५६।

तस्यासीत् सन्नतिमतः कृतो नाम सुतो महान् ।
हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौथुमस्य महात्मनः ।५७
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः ।
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्तीनामेह सामगाः ।५८

कार्तिकजापुत्रः सो वै महापौरववर्द्धनः ।
बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ॥५९
नीलो नाम महाराजः पञ्चालाधिपतिर्वशी ।
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥६०
क्षेमात् सुनीथः संजज्ञे सुनीथस्य नृपञ्जयः ।
नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥६१

इस सन्नतिमान् का सुत कृत नाम वाला एक महान् पुरुष हुआ था। यह महान् महात्मा वाले हिरण्य नाभ कौशल्य का शिष्य था ।५७। जिसने सामवेद की संहिता के चौबीस भेद कहे हैं । वे प्राच्य सामगा स्मृत किये गये हैं यहाँ पर कार्ती के सामग थे ।५८। यह उग्रायुध कीर्ति महापौरव वर्धन हुआ था जिसने अपना विक्रम करके पृथुक के पिता को हत कर दिया था ।५९। नील नाम वाला महाराज वशी और पञ्चाल का अधिपति था । उग्रायुध के दायाद का नाम महायशस्वी क्षेम था । क्षेम से सुनीथ हुआ और सुनीथ का पुत्र नृपञ्जय से विरथ हुआ था—ये सब पौरव कहे गये थे ।६०-६१।

२८—कुरुवंश वर्णन

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः ।
नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुपपद्यत ॥१
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुजः ।
भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयाञ्छृणु ॥२
मुद्गलश्च जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ।
यवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः ॥३

पञ्चानामेव पञ्चालानेतान् जनपदान् विदुः ।
पञ्चानां रक्षिणो ह्येते देशानामिति नः श्रुतम् ॥४
मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
एते ह्याङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः ॥५
मुद्गलस्य सुतो जज्ञे ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः ।
इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्य चात्मजः ॥६
विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः ।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥७

महा महर्षि श्रीसूतजी ने कहा—अजमीढ की एक पत्नी का नाम नलिनी था उसमें नील नृप ने जन्म ग्रहण किया था । नील का अति उग्र तप था उसके प्रभाव से उसके सुशान्ति नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई थी ।१। सुशान्ति का पुत्र पुरुजानु और इसका आत्मज पृथु उत्पन्न हुआ था । पृथु का पुत्र भद्राश्व हुआ था । अब भद्राश्व के जो तनय समुत्पन्न हुए थे उनके विषय में श्रवण करिए ।२। मुद्गल-जय राजा बृहदिषु—यवीनर और पाँचवाँ महान् कीर्तिशाली कपिल था ।३। इन पाँचों के ही ये पञ्चाल जनपद हुए थे । हमने ऐसा श्रवण किया है कि पंचाल देशों के ये रक्षा करने वाले महीपति हुए हैं ।४। मुद्गल के भी जो हुए थे वे मौद्गल्य क्षत्रोपेत द्विजाति थे । ये काण्व मुद्गल अंगिरा पक्ष के संश्रय करने वाले हुए थे ।५। मुद्गल के जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था वह सुन्दर और महान् यश वाला ब्रह्मिष्ठ था । इसका पुत्र इन्द्रसेन नामधारी हुआ था तथा फिर इस इन्द्रसेन का सुत विन्ध्याश्व हुआ । इस विन्ध्याश्व से मेनका में एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था—ऐसा सुना जाता है । दिवोदास एक राजर्षि हुआ था और परम यशस्विनी अहल्या ने जन्म ग्रहण किया था ।६-७।

शरद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः ॥८

सुतः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ।
आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिकस्य तु ॥९
स्कन्नं रेतः सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसं जले ।
मिथुनं तत्र सम्भूतं तस्मिन् सरसि सम्भृतम् ॥१०
ततः सरसि तस्मिंस्तु क्रममाणं महीपतिः ।
दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः ॥११
एते शारद्वताः पुत्रा आख्याता गौतमावराः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य वंशजाः ॥१२
दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः ।
मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः ॥१३
एतेवंश्यायतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः ।
राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः ॥१४

उस अहल्या ने शरद्वान् से एक दायाद का प्रसव किया था जो शतानन्द परम श्रेष्ठ महर्षि थे। उसके भी सुमहान् तपस्वी सत्यधृतिनाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ था जो धनुर्विद्या पारगामी और विद्वान् था। परम धार्मिक उस सत्यधृति का शुक्रवीर्य अमोघ था ।८-९। उस सत्य-धृति का वीर्य जल में स्कन्न हो गया था। उसको देखकर वहाँ पर सरोवर में अप्सराओं का एक मिथुन सम्भूत हो गया था ।१०। इसके पश्चात् उस शर में क्रममाण होते हुए उसको देखकर मृगया करने के लिए गए हुए महीपति शन्तनु ने कृपा करके उसे ग्रहण कर लिया था ।११। ये सब गौतम वर शरद्वान् के पुत्र विख्यात हुए थे। अब इसके आगे मैं दिवोदास की जो सन्तति समुत्पन्न हुई थी उसे बतलाता हूँ ।१२। दिवोदास का पुत्र अतीव धर्मिष्ठ नृप मित्रयु उत्पन्न हुआ था। वह मैत्रायण वर था और इसके अनन्तर मैत्रेय कहा गया था ।१३। ये वंशापति के पक्ष हैं जो क्षत्रोपेत भार्गव थे। मैत्रेय के पुत्र का नाम चैद्यवर हुआ था ।१४।

अथपंचजनात् विद्वान् सुदासस्तस्य चात्मजः ।
अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः ॥१५
सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिन् शतं बभौ ।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः ॥१६
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी ।
पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम् ॥१७
हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना ।
अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता ॥१८
तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान् ।
ऋक्षं सा जनयामास धूम्रवर्णं शताग्रजम् ॥१९
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्ततः ।
यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत् ॥२०
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ ।
कृष्यमाणस्ततः शक्रो भयात्तस्मै वरं ददौ ॥२१

इसके उपरान्त उस पंचजन से विद्वान् सुदास उसका पुत्र उत्पन्न हुआ था । अजमीढ पुनः क्षीण वंश में सोमक नाम से समुत्पन्न हुआ था ।१५। सोमक का पुत्र जन्तु हुआ था जो उसके हत हो जाने पर भी वर्ष तक दीप्तिमान् रहा था । महात्मा अजमीढ सोमक के पुत्रों में यह ऐसा हुआ था ।१६। अजमीढ की एक पत्नी धूमिनी थी जो पुत्र वर्धिनी थी । उसने पुत्रों के अभाव में सौ वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तपश्चर्या की थी ।१७। विधि-विधान के साथ भली-भाँति अग्नि में हवन करके पवित्रीकृत भोजन वाली वह रहा करती थी । इस तरह अग्निहोत्र के क्रम से ही वह महान् व्रत वाली शयन करती थी ।१८। वह धूम्रवर्णा में अजमीढ प्राप्त हो गया था और उसने धूम्र वर्ण शताग्रज ऋक्ष को प्रसूत किया था ।१९। फिर उस ऋक्ष से संवरण ने जन्म प्राप्त किया था और संवरण से कुरु की समुत्पत्ति हुई थी । जिसने प्रयाग अतिक्रमण

करके कुरुक्षेत्र की कल्पना की थी ।२०। बहुत वर्षों तक महाराज कृषण हुए थे । इस प्रकार से जब कृष्यमाण हुआ तो इन्द्र ने भय से उसको वरदान दिया है ।२१।

पुण्यञ्च रमणीयञ्च कुरुक्षेत्रं तु तत्स्मृतम् ।
तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्ना तु कौरवाः ।२२
कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च ।
परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः ।२३
सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतांवरः ।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ।२४
च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः ।
कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यात इन्द्रसमो विभुः ।२५
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः ।
चैद्यो परिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान् ।२६
महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः ।
प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः ।२७
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी ।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ।२८

परम पुण्यमय और रमणीय वह कुरुक्षेत्र विख्यात हुआ था । उसका वंश भी बहुत विशाल था जिसके नाम से ये सब कौरव हुए हैं ।२२। महाराज कुरु के प्रिय पुत्र सुधन्वा और जह्नु थे । राजा महान् तेजयुक्त परीक्षित और शत्रुओं का मर्दन करने वाला प्रजन था ।२३। उस सुधन्वा का पुत्र मतिमानों में परम श्रेष्ठ च्यवन हुआ जो धर्मार्थ तत्त्व का वेत्ता राजा हुआ था ।२४। च्यवन के पुत्र का नाम कृमि था जो महान् तपस्वी ऋक्ष से समुत्पन्न हुआ था । इस कृमि का पुत्र इन्द्र के समान विभु और महावीर्य ख्यात हुआ था ।२५। चैद्य परिचर वीर वसु नाम वाला अन्तरिक्ष गामी था । चैद्य से परिचर ने

गिरिका तथा पुत्रों को जन्म दिया था ।२६। सर्वप्रथम् महारथ का जो बृहद्रथ विश्रुत हुआ । प्रत्यग्रह-कुश और चौथा हरिवाहन था ।२७। पाँचवाँ यदु तथा मत्स्य और काली इनकी सन्तति थी । बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र नाम वाला विश्रुत हुआ था ।२८।

कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नामवीर्यवान् ।
वृषभस्य तु दायादः पुष्पवान्नाम पार्थिवः ।२९
पुण्य पुष्पवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः ।
दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्चजज्ञिवान् ।३०
सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद्राजा बृहद्रथः ।
द्वे तस्य शकले जाते जरया सन्धितश्च सः ।३१
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततः स्मृतः ।
जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासन्धो महाबलः ।३२
जरासन्धस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान् ।
सहदेवात्मजः श्रीमान् सोमाधिश्च महातपाः ।३३
श्रुतश्रवास्तु सोमाधेर्मागधः परिकीर्तितः ।
अयुतायुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नामभूमिपम् ।३४
सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः ।
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः ।३५

इस कुशाग्र का पुत्र वृषभ नामधारी था जो अत्यन्त वीर्य वाला हुआ था । इस वृषभ का दायाद पुष्पवान् नाम वाला पार्थिव समुत्पन्न हुआ था । पुष्पवान् का पुत्र पुण्य हुआ और राजा सत्यधृति हुआ था । इसका जो दायाद हुआ था वह धनुष था और इससे सर्व ने जन्म प्राप्त किया ।२९-३०। सर्व के सम्भव पुत्र हुआ और फिर इससे राजा बृहद्रथ हुआ था । उसके दो शकल हो गये थे जरा से और सन्धि से हुए थे ।३१। क्योंकि जरा और सन्धि से ऐसा हुआ था इसलिए वह जरासन्ध नाम वाला हो गया था । यह समस्त क्षत्रियों को जीत लेने वाला

जरासन्ध महान् बलवान् हुआ था।३२। इस जरासन्ध का पुत्र प्रताप वाला सहदेव उत्पन्न हुआ। सहदेव का आत्मज श्रीमान् सोमवित् था और वह महा तपस्वी था।३३। फिर सोमापि से श्रुतश्रवा हुआ था। ये सब मागध नाम से ही परिकीर्तित हुए हैं। जह्नु ने सुरथ नामक भूमिपति पुत्र को उत्पन्न किया था।३४। इस सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ और विदूरथ का पुत्र सार्वभौम नाम से प्रसिद्ध हुआ।३५।

सार्वभौमात् जयत्सेनो रुचिरस्तस्य चात्मजः।
रुचिरात्तु ततो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत्।३६
अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद्देवातिथिः स्मृतः।
देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह।३७
भीमसेनस्ततो दक्षाद्दिलीपस्तस्य चात्मजः।
दिलीपस्य प्रतीपस्तु तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः।३८
देवापिः शन्तनुश्चैव बाह्लीकश्चैव ते त्रयः।
बाह्लीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्लीश्वरा नृप।
देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन् मुनिः।३९
प्रजाभिस्तु किमर्थं वै ह्यपध्यातो जनेश्वरः।
को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिः समुदाहृतः।४०
किलासीद्राजपुत्रस्तु कुष्ठितं नाभ्यपूजयन्।
भविष्यं कीर्तयिष्यामि शन्तनोस्तु निबोधत।४१
शन्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् सो वै महाभिषक्।
इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषक्।४२

सार्वभौम से जयत्सेन ने जन्म ग्रहण किया था। फिर इसका पुत्र रुचिर उत्पन्न हुआ था। रुचिर का पुत्र भौम और भौम का सुत त्वरितायु हुआ।३६। त्वरितायु का अक्रोधन और फिर उससे देवातिथि ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी। देवातिथि का दायाद दक्ष नाम वाला हुआ

।३७। उस वंश में भीमसेन ने जन्म प्राप्त किया था और इसका आत्मज दिलीप हुआ था । दिलीप का पुत्र प्रतीप उत्पन्न हुआ और इसके फिर तीन पुत्र बताये गए हैं ।३८। वे तीन देवापि—शान्तनु और बाह्लीक थे । बाह्लीक के दायाद हे नृप ! सात बाह्लीश्वर हुए थे ।३९। देवापि अब अनाथ होकर प्रजाओं के फिर मुनि हो गया था । मुनिगण ने कहा—वह जनेश्वर प्रजाओं से किस प्रकार अपध्यात हो गया था । प्रजाओं ने उस राजपुत्र का कौन सा दोष बतलाया था ? ।४०। सूतजी ने कहा—वह राजपुत्र कुष्ठिल था अतएव प्रजाओं ने उसका पूजन नहीं किया । मैं भविष्य का कीर्त्तन करूँगा । अब शान्तनु के विषय में समझ लो ।४१। शन्तनु जो राजा हुआ था परमोत्तम कीर्ति का विद्वान् था और महान् भिषक् भी था । इस विषय में यह श्लोक उस महाभिषक के सम्बन्ध में उदाहृत किया जाता है ।४२।

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च ।
पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः ।४३
तत्तस्य शान्तनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते ।
ततो वृणुत भार्यार्थं शन्तनुर्जाह्नवीं नृप: ।४४
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः ।
काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयत् सुतम् ।४५
शन्तनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम् ।
कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ।४६
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ।
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयत् शतम् ।४७
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः ।
माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ।४८
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे ।
धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ।४९

उस राजा शन्तनु में ऐसी एक विशेषता थी कि वह जिस-जिसके शरीर को अपने करों से केवल स्पर्श ही करता था वह चाहे कैसा ही जीर्ण रोगी क्यों न हो सब रोगों से मुक्त होकर पुनः युवा हो जाया करता था। इसी कारण से उसका नाम शन्तनु यह कहा गया।४३। उस राजा के शन्तनु होने को उसकी प्रजाओं के द्वारा कीर्तित किया जाता था। इसके उपरान्त उस राजा शन्तनु ने अपनी भार्या बनाने के लिए जाह्नवी का वरण किया था।४४। उस गंगा ने उस विभु से देवव्रत नाम वाले कुमार को उत्पन्न किया था। काली ने विचित्र वीर्य को जन्म दिया था। जिसने धाम में शुक को जन्म दिया।४५। शान्तनु का पुत्र अत्यन्त प्रिय-शान्तात्मा और कल्मष रहित था। कृष्ण द्वैपायन ने विचित्रवीर्य के क्षेत्र में धृतराष्ट्र-पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली भार्या में सौ पुत्रों को जन्म दिया था।४६-४७। उन एक सौ पुत्रों में दुर्योधन श्रेष्ठ था जो समस्त क्षत्रियों का प्रभु हुआ था। माद्री और कुन्ती ये दो भार्यायें पाण्डु की हुई थीं।४८। देवों के द्वारा दिए हुए पाँच पुत्र पाण्डु के वंश में समुत्पन्न हुए थे। धर्म से युधिष्ठिर ने जन्म ग्रहण किया और मारुत से वृकोदर की समुत्पत्ति हुई थी।४९।

इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः।
नकुलं सहदेवञ्च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत्।।५०
पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः।
द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात्।।५१
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्त्तिं धनञ्जयात्।
चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत।।५२
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः।
तेभ्योऽपरे पाण्डवेभ्यः षडेवान्ये महारथाः।।५३
हैडम्बो भीमसेनात्तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः।

काश्यां बलन्धरात्भीमाज्जज्ञे सर्वगसुतम् ।९४

सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत ।
करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः ।९५

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात् ।९६

महाराज इन्द्रदेव से धनञ्जय का जन्म हुआ जो पूर्वजों के इन्द्र के समान ही पराक्रम वाला था । माद्री ने नकुल और सहदेव को अश्विनी कुमारों से जन्म दिया था ।९०। ये पाँच पाण्डवों के द्रौपदी से पुत्र उत्पन्न हुए थे । द्रौपदी ने युधिष्ठिर से ज्येष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्यको जन्म दिया था । भीमसेन से श्रुतसोम को और श्रुतिकीर्ति को धनञ्जय से तथा श्रुतकर्मा को सहदेव से एवं शतानीक नामक सुत को नकुल से उत्पन्न किया था । ये सभी पुत्र द्रौपदेय कीर्तित हुए थे । इनके भी दूसरे सात अन्य महारथ भी पाण्डवेय हुए थे ।९१-९३। भीमसेन से हिडम्बा का पुत्र हैडम्ब घटोत्कच उत्पन्न हुआ । काशिकायाम् भीम से सर्वग पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ।९४। माद्री ने सहदेव से सुहोत्र नामक तनय को उत्पन्न किया था । करेणुमती चैद्या में नकुल से नाकुलि निरमित्र नामक पुत्र ने जन्म धारण किया ।९५। पार्थ अर्जुन से सुभद्रा पत्नी में रथी अभिमन्यु ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवकी ने यौधेय नामधारी पुत्र धर्मपुत्र युधिष्ठिर से जन्म दिया था ।९६।

अभिमन्योः परिक्षित्तु पुत्रः परपुरञ्जयः ।
जनमेजयः परीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः ।९७

ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम् ।
स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा ।९८
न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचनं भुवि ।

यावत् स्थास्यसि त्वं लोके तावदेव प्रपत्स्यति ।५९

क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः ।

अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपञ्च जनमेजयम् ।६०

ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः ।

उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः ।६१

क्षत्रस्य याजिनः केचित् शापात्तस्य महात्मनः ।

पौर्णमासेन हविषा इष्ट्वा तस्मिन् प्रजापतिम् ।

स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः ।६२

परीक्षितः सुतः सो वै पौरवो जनमेजयः ।

द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः ।६३

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने परपुरञ्जय अर्थात् शत्रुओं के पुरों पर विजय प्राप्त करने वाले परीक्षित नामक पुत्र का जन्म हुआ था । परीक्षित् से परम धार्मिक जनमेजय पुत्र ने जन्म धारण किया था ।५७। उसने समस्त वेद को वाजसनेयक कल्पित किया था । उसको महर्षि वैशम्पायन ने शाप दे दिया था ।५८। महर्षि ने यही शाप दिया था कि हे दुष्ट बुद्धि वाले ! यह तेरा वचन भूमण्डल में स्थिर नहीं रहेगा । जब तक तू इस लोक में स्थित रहेगा तभी तक यह रहेगा ।५९। क्षत्रिय की विजय को जानकर तभी से लेकर सभी ओर से नृप जनमेजय के समीप में अभिगमन करके स्थित हो गये थे ।६०। तब से ही लेकर यजन करने वाले क्षत्रिय के शाप से सभी ओर से याज्ञिकगण यज्ञ में उत्सन्न हो गये थे ।६१। कुछ क्षत्रिय के याजी उस महात्मा के शाप से पौर्णमास हवि के द्वारा उसमें प्रजापति का यजन करके फिर वह वैशम्पायन के द्वारा ही प्रवेश करते हुए वारित हुआ था ।६२। उस परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेधों का आहरण करके वह महावाजसनेयक हो गया था ।६३।

प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम् ।

विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ ।६४

जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान् ।६५
अथाश्वमेधेनततः शतानीकस्य वीर्यवान् ।
जज्ञेऽधिसोमकृष्णाख्यः साम्प्रतं यो महायशाः ।६६
तस्मिन् शासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहृतम् ।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे ।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ।६७
भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजा लोमहर्षणे ।
पुरा किल यदेतद्वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया ।६८
येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये ।
तेषामायुः प्रमाणञ्च नामतश्चैव तान्नृपान् ।६९
कृतयुगप्रमाणञ्च त्रेताद्वापरयोस्तथा ।
कलियुगप्रमाणञ्च युगदोषं युगक्षयम् ।७०

उस यज्ञ वाजसनेयक को प्रवृत्ति में प्रवृत्त कराकर ब्राह्मणों के साथ विवाद में अभिशप्त होकर वह फिर वन में चला गया था ।६४। उस जनमेजय से महान् वीर्य वाले शतानीक ने जन्म धारण किया था । जनमेजय ने उस अपने पुत्र शतानीक को राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया था ।६५। फिर शतानीक के अश्वमेध से वीर्यवान् अधिसोम कृष्ण नामधारी ने जन्म ग्रहण किया था। जो इस समय में महान् यश वाला है ।६६। उसी के द्वारा सम्पूर्ण इस राष्ट्र पर शासन करने पर ही आप लोगों ने इस दुराप दीर्घसत्र को तीन वर्ष तक पुष्कर में समाहृत किया था । हे द्विजोत्तमो ! दो वर्ष तक दृषद्वती में कुरुक्षेत्र में किया था ।६७। मुनिगण ने कहा—हे लोमहर्षण ! अब हम हम उन प्रजाओं के भविष्य को श्रवण करने की इच्छा वाले हैं जिसको आपने पहिले व्यतीत कीर्तित किया है ।६८। जिनमें क्षत्रिय स्थित रहेंगे और जो नृप उत्पन्न होंगे । उन सबकी आयु प्रमाण तथा उन नृपों के नाम

से बतलाने की कृपा कीजिए । कृतयुग का प्रमाण तथा त्रेता और द्वापर का प्रमाण और कलियुग का प्रमाण भी बतलाइये । युगों के दोष तथा युगों का क्षय भी कहने की अनुकम्पा कीजिएगा ।६८-७०।

सुखदुःखप्रमाणञ्च प्रजानाञ्च युगस्य तु ।
एतदन्यं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो ॥७१
यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा ।
भाव्यं कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि च ॥७२
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा ॥७३
ऐडेक्ष्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वये तथा ।
येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम् ।
तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान् ॥७४
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः ।
क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथान्ये ये महीश्वराः ॥७५
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा ।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः ।
पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥७६
अधिसोमकृष्णश्चैतेषां प्रथमं वर्त्तते नृपः ।
तस्यान्ववायं वक्ष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान् ॥७७

सुख और दुःख का प्रमाण तथा युग का प्रजा का दोष—यह सभी बतलाकर हमको बोध दीजिए । हे प्रभो ! हम लोग सभी आपसे यह पूछ रहे हैं ।७१। महर्षि सूतजी ने कहा जिस प्रकार से अक्लिष्ट कर्म वाले श्री व्यासदेव ने पहिले मुझको बतलाया है । भाव्य कलियुग तथा मन्वन्तर जो कि सभी अब तक अनागत ही हैं उन सबको मैं बतला रहा हूँ आप मुझसे इनको जानलो । इसके आगे यह भी बतलाऊँगा जो नृप भविष्य में होंगे ।७२-७३। इक्ष्वाकु के वंश में तथा पौरव वंश में

जिनमें भविष्य होंगे वह इक्ष्वाकुकुल नृपति है । इन सभी भविष्य में कथित नृपों को मैं बतलाऊँगा ॥७४॥ इनसे भी और दूसरे जो अन्य नृप पुनः उत्पन्न होंगे वे क्षत्रिय-पारशव शूद्र तथा अन्य भी जो महीपाल भविष्य में होंगे उन्हें भी बतला दिया जायगा ॥७५॥ अन्ध्र, शक, पुलिन्द चूलिक, यवन, कैवर्त, आभीर, शबर और जो अन्य म्लेच्छ सम्भव हैं इन सब को मैं पर्याय से तथा नाम से नृपों को बतलाऊँगा ॥७६॥ इन सब में अधिसोम कृष्ण प्रथम नृप है । अब उसके अन्वय (वंश) में भविष्य में कथित नृपों में आप लोगों को सब बतलाऊँगा । आप लोग ध्यान पूर्वक श्रवण कीजिए ॥७७॥

अधिसोमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृपः ।
गङ्गयापहृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये ॥७८
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति ।
भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमाः ॥७९
भूरिर्ज्येष्ठः सुतस्तस्य तस्माच्चित्ररथः स्मृतः ।
शुचिद्रथश्चित्ररथात् वृष्णिमांश्च शुचिद्रथात् ॥८०
वृष्णिमतः सुषेणश्च भविष्यति शुचिर्नृपः ।
तस्मात् सुषेणाद्भविता सुनीथो नाम पार्थिवः ॥८१
नृपात् सुनीथाद्भविता नृचक्षुः सुमहायशाः ।
नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः ॥८२
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिप्लवः ।
परिप्लवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः ॥८३
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशयः ।
मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जयः ॥८४

अधिसोम कृष्ण का पुत्र विवक्षु नाम वाला नृप होगा । इस नाग-साह्वय नगर में गङ्गा के द्वारा हृत हो जाने पर अर्थात् गङ्गा के नगर को बहा देने पर वह राजा विवक्षु उस अपने नगर का त्याग

करके फिर कौशाम्बी में निवास करेगा। उसके आठ पुत्र समुत्पन्न होंगे जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित होंगे।७८-७९। उनमें सबसे ज्येष्ठ जो पुत्र होगा वह भूरि होगा। फिर इसका भी पुत्र होगा उसका नाम चित्ररथ होगा। उस चित्ररथ के शुचिद्रथ जन्म लेगा। फिर उस शुचिद्रथ से वृष्णिमान् समुत्पन्न होगा।८०। वृष्णिमान् राजा का पुत्र परम शुचि नृप सुषेण जन्म ग्रहण करेगा। फिर उस सुषेण से सुनीथ नाम वाला नृप समुत्पन्न होगा।८१। इसके अनन्तर उस सुनीथ नामक नृप का पुत्र महान् यश से समुत्पन्न नृचक्षु होगा। इस नृचक्षु राजा का इसके बाद सुखीबल जन्म ग्रहण करेगा।८२। सुखीबल का पुत्र भविष्य में होने वाला राजा परिप्लव उत्पन्न होगा। इस परिप्लव का पुत्र सुनय नाम वाला नृप होगा।८३। इस सुनय का आत्मज मेधावी उत्पन्न होगा- इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मेधावी का पुत्र पुरञ्जय होगा।८४।

उर्वोभाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः।
तिग्मात् बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात् ।८५
वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः।
भविष्यते च वचनात् वीरो राजा वहीनरः ।८६
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति।
दण्डपाणे निरामित्रो निरामित्रात्तु क्षेमकः ।८७
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः।
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृत।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे ।८८
इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्तितः।
धीमतः पाण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्य महात्मनः ।८९

इस पुरञ्जय का भावी पुत्र उर्व उत्पन्न होगा और उसका आत्मज तिग्मात्मा होगा। तिग्मात्मा का पुत्र बृहद्रथ नाम वाला और बृहद्रथ

से व सुनन्दा का पुत्र शतानीक जन्म धारण करेगा और फिर शतानीक से उदयन पैदा होगा। उस उदयन के पुत्र का नाम वीर राजा वहीनर होगा। वहीनर राजा का आत्मज दण्डपाणि समुत्पन्न होगा फिर दण्डपाणि से निरामित्र पुत्र की उत्पत्ति होगी और निरामित्र से क्षेमक नाम वाला जन्म लेगा। यहाँ पर पुराणज्ञ विप्रों के द्वारा यह मनु वंश का श्लोक गाया गया है। ब्राह्मण और क्षत्रिय की जो योनि है वह वंश देवर्षियोंके द्वारा सत्कृत है। क्षेमक राजा को प्राप्त करके इस कलियुग में संस्थित होगा।८६-८८। इस प्रकार से यह पौरव वंश यहाँ पर यथावत् कीर्तित कर दिया गया है जो धीमान् पाण्डु के पुत्र महान् आत्मा वाले अर्जुन का है।८९।

२६—अग्नि वंश वर्णन

ये पुत्र्याः स्युर्हविर्भाजीनामग्नयः सूत ! सर्वदा ।
तानिदानीं समाचक्ष्व सार्द्धं चानुपूर्वशः ।१
योऽसावग्निरभिमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजीजनत् ।२
पावकं पवमानञ्च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः ।
निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः ।३
शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः ।
पवमानात्मजो ह्यग्निर्हव्यवाहः स उच्यते ।४
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहमुखः शुचिः ।
देवानां हव्यवाहोऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः सुतः ।५
सहरक्षाः सुराणान्तु त्रयाणान्ते त्रयोऽग्नयः ।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्तथैव च ।६

प्रवक्ष्ये नामतस्तांस्तु प्रविभागेन तान् पृथक् ।
पावकोऽयं लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः ।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! जो अग्निगण द्विजातियों की परम पूज्य हैं उनके विषय में इस समय में बतलाइए और उन का वंश तथा आनुपूर्वी के क्रम से कहने की कृपा कीजिए ।१। महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जो यह अग्नि अभी मानी है जो कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में कहा गया है वह तो ब्रह्मा का मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न पुत्र है फिर उससे स्वाहा ने जन्म ग्रहण किया था ।२। पावक, पवमान, शुचि और अग्नि के नाम इनके कहे गये हैं । निर्मथ्य-पवमान अग्नि में तथा पावकात्मज वैद्युत अग्नि है ।३। शुचि सौर होता है । ये सब स्थावर ही कहे गये हैं । पवमानात्मज जो अग्नि है वह कव्यवाह कहा जाता है ।४। पावकि सहरक्ष होता है और हव्यवाह पुत्र शुचि होता है । देवों का अग्नि हव्यवाह होता है । प्रथम अग्नि ब्रह्मा का पुत्र था ।५। असुरों का सहरक्ष होता है । ये तीनों के तीन अग्नियाँ हैं । इन अग्नियों के पुत्र और पौत्र चालीस हैं । अब उनके नाम लेकर प्रविभाग के द्वारा उनको पृथक् बतलायेंगे । लौकिक अग्नि पावक होता है जो प्रथम ब्रह्मा का पुत्र है ।६-७।

ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ।
वैश्वानरो हव्यवाहो वहन् हव्यं महायशाः ।८
स्मृतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करोदधिः ।
सोऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स उच्यते ।९
भृगोः प्रजायताथर्वा ह्यङ्गिरा अथर्वणः स्मृतः ।
तस्माल्लौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निस्ततः ।१०
अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते ।
स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः ।११
ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ ।

ततः षोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः ।
यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥१२
कावेरीं कृष्णवेणीं च नर्मदां यमुनां तथा ।
गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा ।
सीतां मनस्विनीं चैव ह्लादिनीं पावनां तथा ॥१४

जो पवमानाग्नि है उसका पुत्र पावक—इस नाम से विश्रुत है। वैश्वानर-हव्यवाह और हव्य को वहन करता हुआ समाहरण और स्मृत वह अथर्वण अग्नि होता है। सहित पुष्करों दधि पुत्र है। जो शुचि है वह लौकिक अग्नि है और वह दक्षिणाग्नि कहा जाया करता है।८-९ अथर्वा भृगु से उत्पन्न हुआ था और अथर्वण अङ्गिरा कहा गया है। उसका अलौकिक अग्नि है वह दक्षिणाग्नि कहा गया है।१०। इसके अनन्तर जो पवमान है वह निर्मन्थ अग्नि कहा जाता है। और वह गार्हपत्य अग्नि है जो प्रथम ब्रह्मा का कहा गया है।११। इसके पश्चात् सभ्य और आवसथ्य ये दोनों शंसी के सुत थे। इसके अनन्तर हव्यवाहन ने षोडश नदियों की कामना किया था। जो आहवनीय अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है।१२। कावेरी कृष्णवेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा कौशिकी शतद्रु, सरयू, सीता, मनस्विनी, ह्लादिनी, पावनी ये षोडश नदियाँ हैं उनमें षोडश रूपों में आत्मा को पृथक्-२ प्रविभक्त करके उस समय में उन नदियों में विहार करते हुए वह धिष्ण्येच्छ हो गया था। १३-१५

तासु षोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक्-पृथक् ।
तदा तु विहरं स्तासु धिष्ण्येच्छः स बभूव ह ॥१५
स्वाभिधानस्थिता धिष्ण्यास्तास्वुत्पन्नाश्च धिष्णयः ।
धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्ण्यवः स्मृताः ॥१६

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे ।
तेषां विहरणीया वै उपस्थेयाश्च ताञ्छृणु ।
विभुः प्रवाहणोऽग्नीऽध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।१७
विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे ।
अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम् ।१८
वाशर्योऽग्निः कृशानुर्योद्वितीयोत्तरवेदिकः ।
सम्राडग्निः सुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्तितान्द्विजा ।१९
पर्जन्यः पावमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदृश्यते ।
पावकोष्मः समूह्यस्तु उत्तरेसोऽग्निरुच्यते ।२०
हव्यसूदो ह्यसंमृष्टः शामित्रः संविभाव्यते ।
शतधामासुधाज्योतिः रौद्रैश्वर्यः स उच्यते ।२१

अपने अधिष्ठान में स्थित धिष्ण्य उनमें समुत्पन्न हुए और विष्णु हैं। क्योंकि उन्होंने धिष्ण्यों में जन्म ग्रहण किया था अतएव वे विष्णु में प्रतिपन्न हुए थे। जो उनके विहरणीय तथा उपस्थेय हैं उनके विषय में भी सुनलो। प्रवाहण अग्नीध्र विभु है और उसमें स्थित अपर विष्णु है।१७। किसी पुण्याह के समुपक्रम होने पर यथास्थान में विहार किया करते हैं। अनिर्देश्य और अनिवार्य अग्नियों का क्रम श्रवण करो।१८। प्रथम अग्नि कृशानु और जो द्वितीय उत्तरवेदिक है। सम्राट अग्नि है द्विजगण ये आठ उनका उपस्थान करते हैं।१९। पर्जन्य पवमान वह द्वितीय अनुदृश्यमान होता है। पावकोष्म और समूह्य अग्नि उत्तर में कहा जाता है।२०। हव्य सूद और असंमृष्ट शामित्र संविभावित होता है। शतधामा—सुधा ज्योति वह रौद्र ऐश्वर्य कहा जाया करता है।२१।

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते ।
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखीयकः ।२२

अनिर्देश्योऽह्यहिर्बुध्न्यो बहिरन्ते तु दक्षिणाः ।
पुत्रास्ते वै तु सर्वस्य उपस्थेया द्विजैः स्मृताः ।२३
ततो विहरणीयांस्तु वक्ष्याम्यष्टौ तु तान् सुतान् ।
हविषस्य सुतो ह्यग्निर्बर्हिषो हव्यवाहनः ।२४
प्रशंस्योऽग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः संसहायकः ।
सुतो ह्यग्नेर्विश्ववेदा ब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते ।२५
अपांयोनिः स्मृतः स्वाम्भः सेतुर्नाम विभाव्यते ।
धिष्ण्याहरणा ह्येते सोमेनेज्यन्त वै द्विजैः ।२६
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योनिरुच्यते ।
अग्निः सोऽवभृथे ज्ञेयो वरुणेन सहेज्यते ।२७
हृच्छयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन् ।
मन्युमाञ्जाठरश्चाग्निर्विद्धाग्निः सततं स्मृतः ।२८

ब्रह्म-ज्योति और वसुधाम। अग्नि ब्रह्मस्थानीय कहा जाता है। अजैकपाद उपस्थेय क्योंकि वह शालामुख होता है।२२। अनिर्देश्य—अहिर्बुध्न्य बाहिर अन्त में दक्षिण हैं ये सबके पुत्र हैं और द्विजों के द्वारा उपस्थान करने योग्य कहे गए हैं।२३। इसके अनन्तर विहरणीय उन आठ सुतों के विषय में बतलाते हैं। हविष का बर्हिष वाहन अग्नि सुत है।२४। प्रशंस्य अग्नि प्रचेता दूसरा संसहायक होता है। विश्ववेदा अग्नि का सुत है और ब्राह्मणच्छंसि कहा जाता है।२५। अपांयोनि स्वाम्भ कहा गया है तथा सेतु नाम विभावित होता है। ये सब धिष्ण्य आहरण हैं और द्विजों के द्वारा सोम से इज्यमान होते हैं।२६। इसके पश्चात् जो पावक सत्पुरुषों के नाम से योनि कहा जाता है वह अग्नि अवभृथ में ही जानना चाहिए वह वरुण के साथ यज्यमान होता है।२७। जो मनुष्यों के जठरों में खाये हुए पदार्थों का पाचन करता है वह हृच्छय की अग्नि का सुत है। जाठर अग्नि मन्युमान् है निरन्तर वह विद्धाग्नि कहा गया है।२८।

परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन् ।
अग्नेर्मन्युमतः पुत्रो घोरः सम्वर्त्तकः स्मृतः ।२९
पिबन्नग्निः स वसति समुद्रे वडवामुखे ।
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते ।३०
सहरक्षस्तु वै कामान्गृहे स वसते नृणाम् ।
क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान्योऽत्ति वै मृतान् ।३१
इत्येते पावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।
ततः सुतास्तु सौचीकाद्गन्धर्वैरसुरैर्हृताः ।३२
मथितो यस्त्वरण्यान्तु सोऽग्निराप समिन्धनम् ।
आयुर्नाम्ना तु भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।३३
आयुषो महिमान्पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः ।
पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः ।३४
सर्वस्मादेव लोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः ।
पुत्रोऽस्य सहितो ह्यग्निरद्भुतः स महायशाः ।३५

परस्पर में समुत्थित अग्नि यहाँ पर विभुभूतों का दाह करता है वह अग्नि का मन्युमान घोर पुत्र सम्वर्त्तक कहा गया है। पीता हुआ वह अग्नि समुद्र में वड़वा के मुख में वास किया करता है। समुद्र में वास करने वाले का वह पुत्र सहरक्ष विभावित होता है ।२९-३०। जो सहरक्ष नाम वाला अग्नि है वह सब कामों को पूर्ण किया करता है और मनुष्यों के घर में ही निवास करता है। क्रव्याद नामक अग्नि उसका पुत्र है जो मृत हुए मनुष्यों को खा जाता है अर्थात् शव को भस्मीभूत कर दिया करता है ।३१। ये इतने द्विजों के द्वारा पावक अग्नि के पुत्रों का संकीर्तन किया गया है। इसके अनन्तर जो सुत हुए थे वे सौचीक से गन्धर्व और असुरों के द्वारा हृत हो गए हैं ।३२। जो अरणी में मंथित करके समुत्पन्न हुआ अग्नि है वह आप समिन्धन होता है। वह भगवान अग्नि नाम से आयु होता है जो पशु में प्रणीयमान होता।

है।३३। भानु नामक अग्निका महिमान् नाम वाला पुत्र है और उसके आगे सहस्र उसका पुत्र होता है—ऐसा कहा गया है। पाक यज्ञों में अभिमानी अग्नि है जो हुत किये हुए द्रव्य का भोग किया करता है।३४। जो सम्पूर्ण लोक के हव्य और कव्य को खा जाता है वह इसके अतिरिक्त पुत्र भरित अद्भुत और सुमहान् यश वाला होता है।३५।

प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतंकव्यं भुनक्ति यः।
अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान्स्मृतः॥३६
विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः।
विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौ सुताः स्मृताः॥३७
काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहा यतिकृच्च यः।
सुरभिर्वसुमान्नादो हर्यश्वश्च सोऽभवत्पुरा॥३८
अनर्घ्यं शमनं चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिताः।
शुचेरग्नेस्तु प्रजा ह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश॥३९
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे।
व्यतीते तु सर्गे वै यामैः सह सुरोत्तमैः॥४०
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः।
एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेष्विह॥४१
स्थानाभिमानिनोऽग्नीध्राः प्रागासन्हव्यवाहनाः।
काम्यनैमित्तिकाजस्रे ये ते कर्मस्ववस्थिताः॥४२

जो पापों के दोषों में निवारणार्थ किये हुए प्रायश्चित्तों में अभीमानी नामक अग्नि हुत और कव्य को खा लेता है। अद्भुत का पुत्र महान् वीर है जो महान् देवांश कहा गया है।३६। फिर उससे विविध अग्नि होता है और इसका आत्मज महाकवि होता है। विविध नामक अग्नि के सुत अर्क से आठ सुत अग्नियाँ कही जाती हैं।३७। जो काम्य इष्टियाँ हैं उनमें अभीमानी रक्षोहा और यतिकृत् जो है वह पहिले सुरभि वसुमान् नाद और हर्यश्व हुआ था।३८। अनर्घ्य और शम

वायु से आठ कीर्तित किये गये हैं। यह संक्षेप से शुच्यग्नि का है और इस तरह से चौदह अग्नि हैं। इतने ये अग्नि बतला दिए गए हैं जो अध्वर में प्रणीत होते हैं। सर्ग के समतीत होने पर जो सुरोत्तम यामों के सहित स्वायम्भुव अन्तर में पूर्व में अग्नि हैं वे सब अभिमानी हैं। ये विहार करने के योग्य चेतन और अचेतनों में यहाँ पर स्थानाभिमानी हव्य वाहन आत्मीय गहिने थे।३८-४१। काम्य और नैमित्तिक आत्म ये हैं जो कर्मों में समवस्थित रहा करते हैं।४२।

पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैस्तु तैः सह ।
एते देवगणैः सार्द्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः ।४३
इत्येता योनयो ह्युक्ताः स्थानाख्या जातवेदसाम् ।
स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सवर्णान्तेषु सप्तसु ।४४
तैरेवन्तु प्रसंख्यातं साम्प्रतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ।४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ।
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्नयः ।४६
अनागतैः सुरैः सार्द्धं वत्स्यन्त्यनागताश्च ये ।
इत्येष प्रचयोऽग्नीनामियान्प्रोक्तो यथाक्रमम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।४७

पूर्व मन्वन्तर के अतीत हो जाने पर उन शुक्र यामों के सहित प्रथम मनु के अन्तर में ये सब देवगणों के साथ में हैं।४३। इतनी ये सब स्थानाख्य जात वेदाओं की योनियाँ बतलायी गई हैं, ये सब सप्तान्त तक स्वारोचिष आदि में जाननी चाहिए।४४। इस प्रकार से उनके द्वारा ही प्रसंख्यात हैं। इस समय में यहाँ पर अनागत सब मन्वन्तरों में नाना रूप वाले प्रयोजनों से युक्त और वर्तमान याम तथा देवों के साथ अग्नि हैं।४५। अनागत सुरों के साथ में भी आगत नहीं हैं—इस प्रकार से यह अग्नियों का प्रचय मैंने क्रम के अनुसार बता

दिया है जो विस्तार के साथ और सम्पूर्णता से युक्त ही कहा गया है । अब इसके आगे आप लोग मुझसे क्या श्रवण करना चाहते हैं ।४७।

३०—कर्मयोग वर्णनम्

इदानीं प्राह यद्विष्णुः पृष्टः परमपुरुषम् ।
तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मेण विस्तरम् ।१
एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः ।
विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम् ।२
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे ।
कर्मयोगञ्च सांख्यञ्च यथावद्विस्तरान्वितम् ।३
श्रोतुमिच्छामहे सूत ! कर्मयोगस्य लक्षणम् ।
यस्मादविदितं लोके न किञ्चित्तव सुव्रत ।४
कर्मयोगञ्च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम् ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते ।५
कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात्तत्परमं पदम् ।
कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः ।६
तस्मात्कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम् ।
वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम् ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! इस समय में पूछे गये भगवान् विष्णु ने जो परम उत्तम कहीं था उसी धर्म और अधर्म के विस्तार को आप हमको बतलाइए ।१। महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—जिस प्रकार से जब सम्पूर्ण विश्व एकार्णव हो गया था अर्थात् कहीं केवल एक समुद्र ही दिखलाई देता था उस समय में भगवान् मत्स्य के स्वरूप धारण करने वाले जनार्दन प्रभु ने आदि सर्ग और सम्पूर्ण प्रतिसर्ग का विस्तार विश्वात्मा ने सूर्य के पुत्र मनु से कहा था और यथावत् विस्तार

से युक्त कर्म योग तथा सांख्य योग को भी बतलाया था ।२-३। ऋषि-गण ने कहा—हे सूतजी ! हम इस समय में कर्म योग का लक्षण श्रवण करना चाहते हैं । हे सुव्रत! कारण यह है कि आप तो सर्वज्ञाता महान् पुरुष हैं फिर ऐसा अवसर हमको कब मिलेगा । ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसको आप नहीं जानते हैं ।४। सूतजी ने कहा—जिस प्रकार से पहिले भगवान विष्णु ने भाषित किया था उसी कर्म योग को हम बतलाते हैं। कर्म योग की बड़ी प्रशंसा भी है । यह एक सहस्र ज्ञानयोग से भी कहीं अधिक प्रशस्त माना जाता है ।५। कर्मयोग से समुत्पन्न जो ज्ञान है उसी से वह परम पद प्राप्त होता है । कर्म ज्ञान से उद्भूत होने वाला ब्रह्म है ज्ञान कर्म उद्भूत होने वाला नहीं है ।६। इसलिए कर्मयोग की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है । जो मनुष्य कर्म में युक्त आत्मा वाला है वह परम तत्व को प्राप्त किया करता है । अखिल वेद मूलधन है और उसका हित करने वाला आचार भी है।७

अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः ।
दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षातुरस्य च ।८
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः ।
अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ।९
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च ।
तथा स्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ।१०
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः ।
अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ।११
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते ।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत्प्रयत्नतः ।१२
देवतानां पितॄणाञ्च मनुष्याणाञ्च सर्वदा ।
कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ।१३
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः ।१४

आत्मा के आठ गुण हैं जो कि इस आत्मा में प्रधान रूप से संस्थित हैं। समस्त प्राणी मात्र पर दया और जो आतुर पुरुष हो उनकी रक्षा करना भी आत्मा का एक प्रधान गुण है।८। लोक में अनसूया (किसी के भी गुण-दोषों का वर्णन करके बुराई न करना) है द्विजगण! बाहिर और अन्दर की शुचिता बिना ही अनायास (श्रम) के होने वाले कार्यों में माङ्गल्य आचार का सेवन करना भी गुण है। जो भार्य हैं उनके विषय में उपार्जित किए धनों से कृपणता नहीं करनी चाहिए। यह स्पृहा भाव भी एक विशेष गुण होता है। पराई स्त्री और पराया धन से कभी भूलकर भी स्पृहा नहीं करनी चाहिए। माता के समान पराई स्त्री और पराये सुवर्ण को भी मिट्टी के ढेले के समान ही रखना आत्मा का एक विशेष गुण है।९-१०। इस प्रकार से पुराणों के विद्वानों ने ये आठ आत्मा के गुण बतलाये हैं—यही आत्मयोग का साधक क्रिया योग है।११। इस कर्मयोग के बिना यहाँ पर लाभ किसी को भी नहीं हुआ करता है जो दिखलाई देवे। अतएव श्रुति तथा स्मृति के द्वारा कहा गया जो धर्म है उसी में प्रयत्नपूर्वक उपस्थित रहना चाहिए।१२। देवगणों का, पितृगणों का और फिर मनुष्यों का सर्वदा प्रतिदिन यज्ञों के द्वारा मूल और ऋषिगण का तर्पण करना चाहिए।१३। ऋषियों का अर्चन वेदों के स्वाध्याय के द्वारा करना चाहिए और विद्वान् पुरुष को विधान के अनुसार होमों के द्वारा भी यजन करना परमावश्यक है। पितृगण अन्वाधान श्राद्धों के द्वारा तथा अन्न के दानों से तथा बलि कर्मों के द्वारा समस्त भूतों का समर्चन करना चाहिए।१४।

पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये।
कण्डनं पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी ।१५
पञ्चसूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति ।
तत्पापनाशनायामी पञ्चयज्ञाः प्रकीर्त्तिताः ।१६

द्वाविंशति तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्त्तिताः ।
तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः ॥१७
तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म्म समाचरेत् ।
गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ॥१८
गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च ।
पूजयेद् ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम् ॥१९
व्रतोपवासैर्विधिवत् श्रद्धया च विमत्सरः ।
योऽसावतीन्द्रियः शान्तः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
वासुदेवो जगन्मूर्त्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यमा ॥२०
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्त्तण्डो वृषवाहनः ।
अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादशगणाधिपाः ।
लोकपालाधिपाश्चैव पितरो मातरस्तथा ॥२१
इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः ।
ब्रह्माद्याश्चतुरो मूर्त्तिरव्यक्ताधिपतिः स्मृतः ॥२२

गार्हस्थ्य आश्रम में रहने वालों को प्रतिदिन स्वाभाविक रूप से ही स्वतः पाँच प्रकार के पाप कर्म अनजान में बन जाया करते हैं। उन पाँच पाप कर्मों की अपनुत्ति के लिये ही पाँच प्रकार के यज्ञों के करने का विधान करना परमावश्यक है। वे पाँच पाप ये हैं—कण्डनी कर्म जो आवश्यक रूप से घरों में होता ही है। कण्डनी से छानना ही कण्डनी कहा जाता है। पेषणी चक्की आदि से पीसने का काम—चुल्ली चूल्हा जलाना—जलकुम्भी वह स्थल जहाँपर जल आदि को रखा जाता है और पाँचवाँ प्रमार्जनी बुहारी आदि परिष्कार करना। ये पाँच सून (पाप या हत्या) गृहस्थ को हुआ ही करते हैं। इसी से वह स्वर्ग को प्राप्त नहीं किया करता है। उनके होने वाले पापों के नाश के लिए ही ये पाँच दैनिक अत्यावश्यक यज्ञ कीर्तित किए गये हैं ॥१७-१८॥ बाईस और आठ जो आत्मा के संस्कार बताये गये हैं, जिनसे आत्मा की

शुद्धि हुआ करती है इन संस्कारों से युक्त भी हो तो भी जो आत्मा के एक सद्गुणों से रहित होता है उसको मोक्ष नहीं होती है। अतः यह सिद्ध है कि कल्याण के लिए अभीष्ट आत्मा के गुणोंका होना परमावश्यक है।१७। अतएव आत्मा के गुणों युक्त होकर श्रुतिविहित कर्मों का समाचरण करना चाहिए। जो धन पास में न्यायोपार्जित हो उससे सर्वदा गौ और ब्राह्मणों का कल्याणों का कल्याण कर्म करना चाहिए।।१८। गौ-हिरण्य, वस्त्र, गन्ध, माला, जल आदि के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु सर्व, रुद्र और वसु स्वरूप शिव का नित्य पूजन करना चाहिए।१९। सत्पुरुषों के साथ में सहित होकर परम श्रद्धा से विधि पूर्वक व्रत एवं उपवासों का समाचरण करे। जो इन्द्रियों की पहुँच से दूर है—परम शान्त—सूक्ष्म स्वरूप वाला—अव्यक्त-सनातन-जगन्मूर्ति भगवान् वासुदेव हैं उन्हीं की ये सब सम्भूतियाँ हैं।२०। ब्रह्मा, विष्णु, भगवान् मार्तण्ड, वृषवाहन, आठ वसुगण, एकादश गणों के अधिप लोक पाल और अधिपालों के सहित पितृगण तथा मातृ गण ये सब चर अचर के समन्वित विभूतियाँ बताई गयी हैं। ब्रह्मा आदि चार मूल हैं जो अव्यक्त के अधिपति बताये गये हैं।२१-२२।

ब्रह्मणा त्वाथ सूर्येण विष्णुनाथ शिवेन वा ।
अभेदात्पूजितेन स्यात्पूजितं सचराचरम् ।२३
ब्रह्मादीनां परमधामं त्रयाणामपि संस्थितिः ।
वेदमूर्तावतः पूज्या पूजनीयः प्रयत्नतः ।२४
तस्मादग्निद्विजमुख्यान् कृत्वा सम्पूजयेदिमान् ।
दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः ।२५
इति क्रियायोगपरायणस्य वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य ।
विकर्मभीतस्य सदा न किंचित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके।२६

ब्रह्मा—सूर्य—विष्णु और शिव ये सब एक ही हैं इनको अभेद समझकर ही इनका पूजन करे ऐसा अभेद भावसे इनका समर्चन करने

पर सभी चराचर का समर्पण हो जाया करता है ।२३। ब्रह्मा आदि तीनों की जहाँ संस्थिति है वही परम धाम है । देव मूर्ति पूजा का सदा प्रयत्न पूर्वक पूजन करना चाहिए ।२४। इसीलिए इन सबका पूजनकर अग्नि और द्विजों को तुष्ट बनाकर ही करना चाहिए अर्थात् अग्नि तथा द्विजों के द्वारा ही इनका अभ्यर्चन हुआ करता है । दान-व्रत-उपवास जप और होम आदि के द्वारा मनुष्य को उन अभीष्ट देवों का समभ्यर्चन करते रहना चाहिए ।२५। इसी क्रिया योग में तत्पर तथा वेदान्त शास्त्र और स्मृति के प्रचार करने वाला और विकर्मों अर्थात् बुरे कर्मों से भीत रहने वाले को सब। इस लोक और परलोक में कुछ भी प्राप्त करने के योग्य नहीं रहता है ।२६।

३१—पुराणसंख्या वर्णन

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत ! विस्तरशः क्रमात् ।
दानधर्ममशेषन्तु यथावदनुपूर्वशः ।१
इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा ।
यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत ।२
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।३
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।४
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण च मया ।
अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणं न्यायविस्तरम् ।५
मीमांसा धर्मशास्त्रञ्च परिगृह्य मयाकृतम् ।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ।६
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च ।
श्रुत्वा जगाद स मुनीन् प्रति देवान् चतुर्मुखः ।७

मुनिगण ने कहा—हे सूतजी ! अब आप पुराणों की संख्या बतलाइए और विस्तार के साथ क्रम से कहने की कृपा कीजिए और यथावत् सम्पूर्ण दान धर्मों आनुपूर्वी के सहित बतलाइए ।१। सूतजी ने कहा—इस समय में विश्व की आत्मा उन पुराण पुरुष ने जो यह ही भी पुराणों में मनु को कहा था उसको आप लोग समझ लीजिए ।२। भगवान् ने कहा—ब्रह्माजी ने समस्त शास्त्रों में पुराण को ही सबसे प्रथम कहा था । इसके अनन्तर उनके मुखों से वेदों का निर्गमन हुआ था ।३। हे अनघ ! उस समय में कल्पान्तर में एक ही पुराण था । वह त्रिवर्ग का साधन, पुण्यमय और शतकोटि विस्तार वाला था ।४। सब लोक निर्दग्ध हो गए थे तब मैंने वाजि रूप से चारों वेद-उनके अङ्ग शास्त्र पुराण-न्याय का विस्तार-मीमांसा और धर्म शास्त्र परिगृहीत करके मैंने लिए थे । फिर कल्प के आदि में उदकार्णव में मत्स्यरूप से यह अविद उदक में अन्तर्गत रहते हुए कहे गये थे । इसका श्रवण करके चतुर्मुख ब्रह्माजी ने मुनियों और देवों के प्रति इनको कहा था ।५-७।

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ! ।८
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।९
तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ।१०
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् ।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।११
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ! ।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।१२
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ।
लिखित्वा तच्च यो दद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ।१३

वैशाखपूर्णिमायाञ्च ब्रह्मलोके महीयते ।१३

एतदेव यथा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत् ।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।
पाद्मं तत् पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणीह कथ्यते ।१४

फिर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण से ही हुई थी। फिर कुछ काल में पुराण का ग्रहण न देखकर हे नृप ! मैं फिर व्यास रूप को धारण युग-युग में संग्रहण किया करता हूँ। सदा द्वापर में चार लाख के प्रमाण से संग्रहण किया था ।८-९। फिर उन पुराणों के अठारह भेद करके इस लोक में प्रकाशित किया जाता है। इस समय में भी देव लोक में सौ करोड़ विस्तार है ।१०। उसके यहाँ पर चार लाख संक्षेप से विनिर्मित किया है ? ।११। हे मुनि सत्तमो ! अब उनके नाम लेकर कहता हूँ। आप श्रवण कीजिए। पहिले ब्रह्माजी ने मरीचि के लिये आख्यान कहा था ।१२। ब्राह्म पुराण तेरह सहस्र परिकीर्तित किया जाता है। जो कोई इसको हाथ से लिखकर जलधेनु से संयुत करके वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि में दान करता है वह अन्त में ब्रह्म लोक में जाकर प्रतिष्ठित होता है।१३। यह ही जैसे जगत् हैरण्मय पद्म हो गया था उसी के वृत्तान्त का आश्रय ग्रहण करके उसी की भाँति बुध लोगों के द्वारा 'पाद्म'—यह नाम कहा जाता है। यह पद्मपुराण यहाँ पर पचपन सहस्र कहा जाता है ।१४।

तत्पुराणञ्च यो दद्यात् सुवर्णकलशान्वितम् ।
ज्येष्ठेमासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफलं लभेत् ।१५
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
यत्प्राह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ।१६
तदाषाढे च यो दद्यात् घृतधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यां विपूतात्मा स पदं याति वारुणम् ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ।१७

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद्वायवीयं स्याद् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ॥१८
श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितम् ।
यो दद्याद् वृषसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ॥१९
यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥२०
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः ।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ॥२१

इस पुराण को जो कोई पुरुष सुवर्ण की कमल से युक्त करके तथा तिलों से समन्वित ज्येष्ठ मास में दान में दान में देता है वह अश्वमेध यज्ञ के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है।१५। वाराह कल्पके वृत्तान्त का आश्रय लेकर पराशर ने जो समस्त धर्मों का कहा था उसमें युक्त वैष्णव जानना चाहिए।१६। उसको आषाढ़ मास में घृत धेनु से समन्वित करके पूर्णमासी तिथि में जो मनुष्य दान में देता है वह विशेष रूप से पूत आत्मा वाला होकर वारुण पद को प्राप्त किया करता है। कुछ लोग इसका प्रमाण तेईस सहस्र पुराण बतलाया करते हैं।१७। यहाँ पर वायुदेव ने श्वेत कल्प के प्रसङ्ग से धर्मों को बताया था। जिसमें इन धर्मों का कथन किया था वही वायवीय अर्थात् वायुपुराण हुआ था जो भगवान् रुद्र के माहात्म्य से समन्वित था। वह पुराण चौबीस सहस्र श्लोकों की संख्या के प्रमाण वाला पुराण कहा जाता है।१८। श्रावण मास में श्रावणी पूर्णिमा तिथि में गुड़ और धेनु से समन्वित तथा वृष से संयुत करके जो कोई कुटुम्बी ब्राह्मण के लिए दान में देता है वह मनुष्य पवित्र आत्मा वाला होकर एक कल्प पर्यन्त शिवलोक में निवास किया करता।१९। जिसमें गायत्री का अधिकार करके जो धर्म के

विस्तार का वर्णन किया जाता है । यह वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त भागवत पुराण कहा जाता है ।२०। सारस्वत कल्प के मध्य में जो नरोत्तम हुए थे उनके वृत्तान्त के उद्भव वाले की ओर में उसी को भागवत कहा जाता है ।२१।

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां स याति परमां गतिम् ।
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रचक्षते ।२२
यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च ।
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।२३
तदिदं पञ्चदश्यान्तु दद्याद्धेनुसमन्वितम् ।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।२४
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा ।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ।२५
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ।२६
प्रतिलिख्य च यो दद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम् ।
कार्त्तिक्यां पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग्भवेत् ।२७
यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ।२८

इसको हाथ से लिखकर हेम के सिंह से समन्वित करके जो प्रौष्ठपदी पूर्णिमा तिथि में अर्थात् भाद्रपद मास की पूर्णमासी में दान किया करता है उस मनुष्य की परम गति हो जाया करती है । इस पुराण के अनुष्टुप श्लोकों का प्रमाण अठारह सहस्र कहा जाता है ।२२ जिसमें बृहत् कल्प का आश्रय लेकर देवर्षि नारदजी ने धर्मों का वर्णन किया है । वह नारदीय अर्थात् नारद पुराण कहा जाता है । इसके श्लोकों का प्रमाण पच्चीस सहस्र है । इस पुराण को पूर्णिमा तिथि में

धेनु से समन्वित करके दान में दिया जाता है तो वह दानदाता पुरुष परम सिद्धि को प्राप्त किया करता है जो सिद्धि पुनरावृत्ति शून्य होती है ।२३-२४। जिसमें शकुनियों को अधिकृत करके धर्म और अधर्म के विषय में विचार किया है और वह व्यासपान मुनि के प्रश्न पर धर्मचारी मुनियों के द्वारा ही किया है ।२५। मार्कण्डेय मुनि ने यह सभी कुछ बड़े विस्तार के साथ कहा है । यह पुराण जो नौ सहस्र अनुष्टुप् श्लोक के प्रमाण वाला है और यहाँ पर यह मार्कण्डेय पुराण के नाम से कहा जाता है ।२६। इस पुराण को हाथ से लिखकर सुवर्ण के निर्मित हाथी सहित जो इसका कोई दान किया करता है और यह भी कार्तिकी पूर्णिमासी को किया जाता है तो उस दान के दाता को पुण्डरीक यज्ञ के पुण्य का फल प्राप्त हो जाता है।२७। जो यह ईशानक कल्प का वृत्तान्त है उसको अधिकृत करके अग्निदेव ने महर्षि वसिष्ठजी से कहा था यही पुराण आग्नेय नामसे प्रसिद्ध है अर्थात् इसी को अग्नि पुराण कहा जाता है ।२८।

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमपद्मसमन्वितम् ।
मार्गशीर्ष्यां विधानेन तिलधेनुसमन्वितम् ।
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।२९
यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम् ।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ।३०
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
भविष्यचरितप्रायं भविष्यन्तदिहोच्यते ।३१
तत्पौषेमासियोदद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः ।
गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलंभवेत् ।३२
रथन्तरस्यकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
सावर्णिनानारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ।३३

यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णितं मुहुः ।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ।२४
पुराणं ब्रह्मवैवर्तं यो दद्यान्माघमासि च ।
पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते ।२५

इसको हाथ से लिखकर जो हेमनिर्मित पद्म से समन्वित दान देता है। और मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा में दान पूर्वक तिल तथा धेनु से संयुत करके यह दान किया जाता है वो समस्त ऋतुओंके पुण्य फल को प्रदान करने वाला होता है। इस पुराण के श्लोकों का प्रमाण सोलह सहस्र है।१६। जिस पुराण में चतुर्मुख भगवान् ने आदित्य देव के माहात्म्य का आश्रय प्राप्त करके अघोर कल्प के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से इस जगत की स्थिति की भूतग्राम का लक्षण महाराज मनु से कहा था।२०। जिसका प्रमाण चौदह सहस्र पाँच सौ है और जिसमें बहुधा भविष्य में होने वाले चरित हैं उसको ही भविष्य पुराण कहा जाता है।२१। उसको पौष मास की पूर्णिमा तिथिके दिन विगत मत्सरतावाला होकर दान किया करताहै और इसके साथ गुड़ कुम्भ भी होना चाहिए तो इस दाता को अग्निष्टोम योग का फल मिला करता है।२२। रथन्तर एक कल्प है उस कल्प में जो कुछ घटित हुआ उसी वृत्तान्त को अधिकृत करके सावर्णि ने देवर्षि नारद के लिए अरपुराम कृष्ण का माहात्म्य बतलाया है जिनमें पुनः ब्रह्मवराह का चरित्र किए हुए जो वर्णित किया है वह अठारह सहस्र अनुष्टुप श्लोकों के प्रमाण वाला पुराण ब्रह्मवैवर्त नामसे कहा जाता है।२३-२४। माघ मास की पूर्णिमा तिथि के शुभ दिन में जो कोई इसका लिखकर दान किया करता है वह ब्रह्म लोक में महान प्रतिष्ठित पदपर अभिषिक्त हुआ करता है।२५

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ।२६
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्त पुराणंब्रह्मणा स्वयम् ।

तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति ।
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम् ।३७
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ।३८
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत् पुराणमिहोच्यते ।३९
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यां मधौ दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम् ।४०
यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः ।
कल्पे तत्पुरुषं वृत्तञ्चरितैरुपबृंहितम् ।४१
स्कन्दं नाम पुराणञ्च ह्येकाशीतिर्निगद्यते ।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ।४२

जिसमें अग्निलिङ्ग के मध्य में स्थित महेश्वर देव ने अग्नि को अधिकृत करके धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को कहा है कल्प के अन्त में ब्रह्माजी ने स्वयं यह लैङ्ग पुराण है—ऐसा कहा है। इसका प्रमाण ग्यारह सहस्र श्लोकों का है। इसको लिखकर जो कोई फाल्गुन मास की पूर्णमासी तिथि में तिल और धेनु से समायुक्त करके दान दिया करता है निश्चय ही भगवान् शिव की साम्यता को प्राप्त हो जाया करता है। ।३६-३७। फिर महावराह के माहात्म्य को अधिकृत करके भगवान ने स्वयं पृथ्वी से कहा था उसी को वाराह पुराण-इस नाम से कहा जाता करता है ।३८। हे मुनिसत्तमो ! मानव कल्प के प्रसङ्ग से कहा गया है और इसके श्लोकों का प्रमाण चौबीस हजार है ऐसा यह पुराण कहा है ।३९। एक सुवर्ण का गरुड़ निर्मित करवाकर तिल धेनु से उसी संयुत करके मधु मास की पूर्णिमा के दिन किसी कुटुम्बी ब्राह्मण के लिए दान देता है वह मनुष्य भगवान वराह के प्रसाद से वैष्णव पद को प्राप्त किया

करता है ।४०। जिसमें माहेश्वर धर्मों का अधिकार करके षण्मुख प्रभु ने कल्प में चरितों से उपबृंहित पुरुष वृत्त का वर्णन किया है वही स्कन्द नाम वाला पुराण है जिसके अनुष्टुप् श्लोकों का प्रमाण इक्यासी हजार है ऐसा कहा जाता है । एक सौ एक सहस्र है—यह मनुष्यों में कहा जाता है ।४१-४२।

परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम् ।
शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ ।४३
त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः ।
त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च वामनं परिकीर्तितम् ।४४
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम् ।
यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौ पदम् ।४५
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ।४६
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ ।
अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ।४७
यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम् ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः ।४८
श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः ।
मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम् ।४९
अधिकृत्याब्रवीत्सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः ।
तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश ।५०

जो कोई हेम के शूल से समन्वित करके इसे लिखकर मीन राशि पर रवि के आ जाने पर दान दिया करता है वह निश्चय ही शैवके पद को प्राप्त किया करता है ।४३। भगवान् त्रिविक्रम के माहात्म्य का आश्रय ग्रहण करके चतुर्मुख प्रभु ने त्रिवर्ग का वर्णन किया है इसी को वामन पुराण कीर्तित किया है । यह कूर्म कल्प का अनुगमन करने

वाला परम शिव पुराण है जिसका प्रमाण चौदह सहस्र श्लोकों का होता है। जो कोई पुरुष श्रावण विषुवमें इसका दान किया करता है वह वैष्णव पद की प्राप्ति किया करता है।४४-४५। जिसमें भगवान् कूर्म रूप-धारी जनार्दन ने धर्म-अर्थ-कामों का और रसातल में मोक्ष का माहात्म्य कहा है तथा इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग में इन्द्र की सन्निधि में ऋषिगण को बतलाया गया है वह लक्ष्मीकल्प का अनुषङ्गिक है तथा इसका प्रमाण अठारह सहस्र माना गया है। इसको जो भी कोई पुरुष अयन के द्वारा निर्माण कराये हुए कूर्म से युक्त कूर्म पुराण का दान किया करता है वह मनुष्य एक हजार गौओं के दान करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है। ।४६-४८। जिस कल्प के आदि में भगवान् जनार्दन ने श्रुतियों की प्रवृत्ति के लिए मत्स्य के स्वरूप से मनु के लिए नरसिंह भगवान् का वर्णन किया है। हे मुनीश्वरो! सात कल्पों का वृत्त का आश्रय लेकर बोला है उसी को मात्स्य जानलो। इसका प्रमाण चौदह सहस्र होता है।४९-५०।

विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम् ।
यो दद्यात्पृथिवी तेन दत्ता भवति चाखिला ॥५१
यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद् गरुडोद्भवम् ।
अधिकृत्याब्रवीत्कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते ॥५२
तदष्टादशकञ्चैव सहस्राणीह पठ्यते ।
सौवर्णं हंससंयुक्तं यो ददाति पुमानिह ।
स सिद्धिं लभते मुख्यां शिवलोके च संस्थितिम् ॥५३
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः ।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम् ॥५४
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।
तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥५५
दद्यात्तद्व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम् ।

राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।
हैमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम् ।५६

जो कोई पुरुष विषुव में हेम का निर्मित मत्स्य और धेनु के सहित इसका दान किया करता है उसका इतना बड़ा पुण्य होता है मानों उसने सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का ही दान कर दिया हो ।५१। जिस समय में गारुड़ कल्प में इस विश्वाण्ड से गरुड़का उद्भव हुआ था उसीको अधिकृत करके भगवान श्री कृष्ण ने कहा उसी पुराण को गरुड़ पुराण कहा जाता है । वह भी अठारह सहस्र ही प्रमाण वाला कहा जाता है इस लोक में जो कोई दानशील मानव सुवर्ण का एक हंस का निर्माण करके उसके साथ इस पुराण का दान देता है वह परम पुण्य सिद्धि को प्राप्त करता है और फिर शिवलोक में सन्निधि प्राप्त किया था ।५२-५३। ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड के माहात्म्य का अधिकार करके पुनः बोला है वह जो सौ बारह सहस्र प्रमाण वाला ब्रह्माण्ड पुराण है । भविष्य कल्पोंका विस्तार जिसमें श्रवण किया जाता है । वह ब्रह्माण्ड साक्षात् स्वयं ब्रह्माजी ने ही व्याहृत किया है । इसको जो भी कोई भी कोई पीत ऊन के युग से संयुत करके व्यतीपात में दान में देता है वह पुरुष एक सहस्र राजसूय यज्ञों के पुण्य-फलों की प्राप्ति किया करता है । हेमकी धेनु के पुण्य-फलों की प्राप्ति किया करता है । हेमकी धेनु के सहित इसका दान ब्रह्मलोक के फल को प्रदान करने वाला होता है।५४-५६।

चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।
मत्पितुर्मम पित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम् ।५७
इह लोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा ।
इदमद्यापि देवेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ।५८
उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः ।
पाद्मे पुराणे तत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम् ।
तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ।५९

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्त्तिकेयेन वर्ण्यते ।
नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते ।६०
यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्येऽपि कथानकम् ।
प्रोच्यते तत्पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः ! ।६१
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम् ।
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगद्यते ।६२
अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदिश्यते ।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठा ! तदेतेभ्यो विनिर्गतम् ।६३

अद्भुत कर्मों वाले भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने इसको चार लाख प्रमाणवाला बतलाया है, मेरे पितामहने पितामहों को पितरों ने मुझको मैंने आप से निवेदित कर दिया है ।५७। पराशरमुनि ने लोकके हित का सम्पादन करने के लिए इसको संक्षिप्त किया है । यह आजभी देवों में सौ करोड़ विस्तार से सम्पन्न है ।५८। अब इसके उपभेदों को बतलाऊँगा जोकि लोक प्रसिद्ध हैं । जहाँ पद्म पुराणमें नरसिंह भगवान का वर्णन किया गया है । उसका प्रमाण अठारह सहस्र है और यहाँ पर वह नारसिंह पुराण के नाम से कहा जाता है ।५९। जिसमें नन्दा के माहात्म्य को स्वामी कार्तिकेय भगवान् के द्वारा वर्णन किया जाता है उसी को लोगोंके द्वारा नन्दी पुराण नाम से कहा जाता है—ऐसा ही कीर्तन किया जाता है ।६०। जिसमें भगवान् साम्ब को पुरस्कृत करके भविष्य में कथानक है ऐसा कहा जाता है कि वह पुनः लोक में हे मुनिव्रतो ! साम्ब-इस नाम वाला हो गया है । परम पुरातन कल्प के पुराणों को बुध पुरुष जानते हैं । पुराणोंका अनुक्रम परम कल्प के पुराणों को बुध पुरुष जानते हैं । यह पुराणों का अनुक्रमपरम धन्य-आयु की वृद्धि करने वाला है । इस प्रकार से यहीं पर आदित्य संज्ञा भी कही जाती है ।६१-६२। अठारह पुराणों में पृथक् पुराण

जो भी कुछ प्रक्षिप्त किया जाता है हे द्विजर्षभो ! उसे इन्हीं पुराणों विनिर्गत हुआ समझ लेना चाहिए ।६३।

पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम् ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।६४
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च ।
ससंहारप्रदानाञ्च पुराणे पञ्चवर्णके ।६५
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते ।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धञ्च यत्फलम् ।६६
सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ।६७
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणाञ्च निगद्यते ।६८
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
भारताख्यानमखिलञ्चक्रे तदुपबृंहितम् ।
लक्षणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ।६९
वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ।
ब्रह्मणाऽभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ।७०

इन समस्त पुराणों के पाँच अङ्ग हुआ करते हैं जो आख्यानक कहा गया है। सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश और मन्वन्तर तथा वंशों का अनुचरित जिसमें होता है—वही पुराण कहा जाता है और यही पुराणों का पञ्च लक्षण होता है ।६४। ब्रह्मा-विष्णु-सूर्य और रुद्र इनका माहात्म्य और भुवन का संहार प्रदानों का वर्णन होता है जो भी उपर्युक्त पाँच वर्ण वाला पुराण होता है अर्थात् जिसमें पाँचों लक्षण हों ऐसा पुराण होता है ।६५। इनमें धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का कीर्तन किया जाया करता है। सभी पुराणों में उसके विरुद्ध जो फल है सात्त्विक पुराणों

में हरि का माहात्म्य ही अधिक होता है। जो राजस पुराण होते हैं उन में ब्रह्माजी का माहात्म्य अधिक होता है। इसी भाँति तामस पुराणों में अग्नि का और शिव का माहात्म्य अधिकतया वर्णित हुआ करता है। जो संकीर्ण पुराण हैं उनमें सरस्वती देवी का तथा पितृगण का माहात्म्य अधिक कहा जाया करता है।६५-६८। सत्यवती के पुत्र भगवान श्री कृष्ण द्वैपायन मुनि ने अठारह पुराणों की रचना करके उनसे उपबृं-हित सम्पूर्ण भारत के आख्यान का वर्णन किया है जो एक लक्षण से वेदों के अर्थ से परिबृंहित ही बनाया है अर्थात् कहा है।६९। वाल्मीकि महर्षि ने जो परमोत्तम श्रीराम का आख्यान कहा है और जो ब्रह्माजी ने कहा है वह सौ करोड़ विस्तार वाला है।७०।

आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः।
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्।
एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः।७१
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमाङ्गतिम्।७२
इदं पवित्रं यशसो निधानं इदं पितॄणामतिवल्लभञ्च।
इदञ्च देवेष्वमृतायितञ्च नित्यन्त्विदं पापहरञ्च पुंसाम्।७३

उसका आहरण करके नारद के लिए और फिर उसने वाल्मीकि के लिए कहा था और फिर इसके पश्चात् आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने लोकों में इसको धर्म कामार्थ का साधन स्वरूप कहा था। इस प्रकार से ये सवा पाँच लाख की संख्या वाले हैं जो इस मनुष्य लोक में प्रकीर्तित किये जाते हैं।७१। परम प्राचीन कल्प में जो जो पुराण हुए हैं उनको तो विद्वान पुरुष ही जानते हैं। यह अवश्य ही है कि ऐसा यह पुराणों का जो अनुक्रम है यह परम धन्य है—आयु के वर्धन करने वाला तथा यश की वृद्धि प्रदान करने वाला है।७२। इन पुराणों का

जो भी कोई मानव इसको पुण्य पठन किया करता है या इसका केवल श्रवण ही करता वह निश्चित रूप से परम गति को प्राप्त करता है ।७२। यह परम पवित्र है—यश की खान है और यह पितृगण का अत्यन्त प्यारा होता है । यह देवों में अमृतापित होता है और पुरुषों का यह नित्य ही पापों के हरण करने वाला होता है ।७३।

३५—नक्षत्र पुरुष नाम व्रत कथन

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषतः ।
व्रतोपवाससंयुक्तान् यथा मत्स्योदितानिह ॥१
महादेवस्य संवादे नारदस्य च धीमतः ।
यथा वृत्तं प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थसाधनम् ॥२
कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदः पुरा ।
त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गहरं हरम् ॥३
भगवन् ! देव ! देवेश ! ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायक ! ।
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा ।
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत् ॥४
नारीवाविधवासर्वगुणसौभाग्यसंयुता ।
क्रमान्मुक्तिप्रदं देव ! किञ्चिद्व्रतमिहोच्यताम् ॥५
सम्यक् पृष्टं त्वया ब्रह्मन् ! सर्वलोकहितावहम् ।
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यं तद्वदतश्शृणुनारद ! ॥६
नक्षत्रपुरुषं नामव्रतं नारायणात्मकम् ।
पादादि कुर्याद्विधिवद् विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥७

महामहिम महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके आगे अब इन दान के धर्मों को पूर्ण रूप से कहता हूँ जो कि व्रत और उपवासों से ही

सम्मन्वित है । जिस प्रकार से भगवान् महेश ने यहाँ पर कहे हैं ।१। श्रीमान् देवर्षि नारद के और महादेव के सम्वाद में जो जिस तरह से धर्मार्थ काम का साधक हुआ था उसे ही मैं कहता हूँ ।२। परम प्राचीन समय की बात है जब कि देवर्षि नारदजी ने कैलाश गिरि के शिखर पर समासीन—तीन नेत्रों वाले-अनङ्ग को भस्म करने वाले तथा अनङ्ग के अङ्गों का हरण करने वाले—भगवान हर से पूछा था ।३। देवर्षि नारद जी ने कहा—हे भगवान् ! हे देव ! हे देवों के स्वामिन् ! आप तो ब्रह्मा—विष्णु और इन्द्र इन सबके नायक हैं तथा श्रीमान्—आयु, आरोग्य, रूप, भाग्य और सौभाग्य की सम्पदा से संयुत हैं । कृपया यह बतलाइये कि आपका तथा भगवान् विष्णु का भक्त पुरुष कैसे होता है ? ।४। हे देव ! नारी चाहे वह विधवा हो अथवा सर्वगुण और सौभाग्य से संयुक्त हो, आप ऐसा कोई व्रत बतलाइए जो जन्म से मुक्ति के प्रदान करने वाला हो ।५। ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने इस समय में यह बहुत ही श्रेष्ठ प्रश्न पूछा है । यह सभी लोकों के हित का आवाहन करने वाला है । यहाँ पर शान्ति के लिए ऐसा श्रुत भी किया है । हे नारद ! उसी व्रत का श्रवण करो ।६। एक नक्षत्र पुरुष नाम वाला व्रत है जो साक्षात् नारायण के स्वरूप से परिपूर्ण है । इसका पादादि विधिपूर्वक विष्णु नामों का अनुकीर्तन करे ।७।

प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्क्षादिषु चार्चयेत् ।
चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।८
मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।
जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव द्वे जानुनी चाश्विकुमार ऋक्षे ।९
पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।
पूर्वोत्तराफल्गुनियुग्मके च मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्यम् ।१०
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः संपूजयेन्नारद ! कृत्तिकासु ।

यथाऽर्चयेत् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नमः केशिनिषूदनाय ।।११
कुक्षिद्वयं नारद ! रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।
वक्षोऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरःस्थलमेव पूज्यम् ।।१२
पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तद्वत् ।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ।।१३
हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः ।
पुनर्वस्वावङ्गुलिपर्वभागाः साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः ।।१४

मूल नक्षत्र आदि में भगवान् वासुदेव की प्रतिमा का अर्चन करना चाहिए। जब चैत्र मास आ जावे तो उसको प्राप्त करके ही ब्राह्मणों का वाचन करना चाहिए। इसमें प्रत्येक नक्षत्र में भगवान के प्रत्येक अङ्गों का अभ्यर्चन करे। मूल नक्षत्र में विश्वधर के लिए उनके चरणों को नमस्कार करे। अनन्त भगवान् के लिए उनके गुल्फों को रोहिणी नक्षत्रों में समर्पित करना चाहिए। अश्विनी नक्षत्र में वरद प्रभु के लिए उनकी दोनों जंघाओं का तथा जानुओं का अभिपूजन करे।।१०। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा इन दोनों नक्षत्रों में भगवान् शिव के लिए उनके दोनों ऊरुओं का पूजन करना चाहिए। पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी—इन दोनों नक्षत्रों में कन्दर्प प्रभु के मेढ़ू का पूजन करे।१०। हे नारद ! कृत्तिका आदि नक्षत्रों में पीताम्बर भगवान् विष्णु की कटि का अर्चन करना चाहिए। पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद इन दोनों नक्षत्रोंमें भगवान केशिनिषूदन को नमस्कार करे और उनके दोनों पार्श्वों का पूजन करना चाहिए।११। हे नारद ! रेवती नामक नक्षत्र में भगवान दामोदर की दोनों कुक्षियों का अर्चन करे। अनुराधा नक्षत्र में माधव प्रभु को नमस्कार करे, उनके उरःस्थल का अभिपूजन करना चाहिए।१२। अघों के ओघ का विध्वंस करने वाले प्रभु के पृष्ठ भाग का अर्चन धनिष्ठाओं में करे। श्री शंख, चक्र, असि, और गदा के धारण करने वाले प्रभु को नमन करके विशाखा नक्षत्र में

उनकी गुल्फों का पूजन करना चाहिए ।१३। मूल नक्षत्र में कैटभ के अरि प्रभु मधुसूदन के लिए नमस्कार कर जाँघों का पूजन करे। सामों के मनीश प्रभु को नमस्कार पुनर्वसु नक्षत्र में उनकी अंगुलियों के पूर्व भागों का अभिपूजन करना चाहिए ।१४।

भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि संपूजयेन्मत्स्यशरीरधारिणः ।
कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि ज्येष्ठासु कण्ठं हरिरर्चनीयः ।१५
श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्ये जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक् ।
पुष्ये मुखं दानवसूदनाय नमो नृसिंहाय च पूजनीयम् ।१६
नमो नमः कारणवामनाय स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम् ।
आस्यं हरेर्भार्गवनन्दनाय सम्पूजनीयं द्विजमारणे तु ।१७
नमोऽस्तु रामाय मघासु नासा संपूजनीया रघुनन्दनस्य ।
मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्ये नमोऽस्तु ते राम विघूर्णिताक्ष ! ।१८
बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं चित्रासु संपूज्यतमं मुरारेः ।
शिरोऽभिपूज्यं भरणीषु विष्णोर्नमोऽस्तु विश्वेश्वर ! कल्किरूपिणे ! ।१९
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य सम्पूजनीया हरये नमस्ते ।
उपोषिते ऋक्षदिनेषु भक्त्या द्विजपुङ्गवाः स्युः ।२०

भुजङ्ग नक्षत्र के दिन में मत्स्य स्वरूप के धारण करने वाले भगवान् के नखों का पूजन करना चाहिए । भगवान् कूर्म के चरणों की शरणागति में जाता हूँ—यह निवेदन करते हुए ज्येष्ठा नक्षत्र में भगवान् हरि के कण्ठ का समर्चन करना चाहिए ।१५। श्रवण नक्षत्र में वराह के लिए नमन करके जनार्दन प्रभु के श्रोत्रों का भली भाँति पूजन करे। पुष्य नक्षत्र में दानवों के सूदन करने वाले प्रभु को प्रणाम करके और नृसिंह प्रभु को नमस्कार करके उनके श्री मुख का पूजन करना चाहिए ।१६। स्वाती नक्षत्र में कारण के अर्थ वामन स्वरूप धारण करने वाले प्रभु को बारम्बार नमस्कार करके उनके दन्तों के अग्रभाग का पूजन करे। भार्गव नन्दन के लिए नमन करके द्विज मारण में भगवान् हरि के

आस्य का भली भाँति अर्चन करना चाहिए ।१७। राघवेन्द्र श्रीराम के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र का उच्चारण करके मघा नक्षत्र में श्री रघुनन्दन भगवान् की नासिका का पूजन करना चाहिए। हे विद्युन्निभ नेत्रों वाले श्रीराम ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित हो-यह प्रार्थना करते हुए पूर्वोत्तमाङ्ग में भगवान् के दोनों नयनों का पूजन करे ।१८। परम शान्त स्वरूप भगवान् सूक्ष्म के लिए नमस्कार है—यह कहकर चित्रा नक्षत्र में मुरारि प्रभु के ललाट का भली भाँति पूजन करना चाहिए। हे विश्वेश्वर ! कल्कि रूप वाले आपके लिए नमस्कार है—यह मन्त्र उच्चारण करके भरणी नक्षत्र में भगवान् विष्णु के सिर का अभिपूजन करना चाहिए ।१९। भगवान् हरि के लिए नमस्कार है—यह कहकर आर्द्रा नक्षत्र में पुरुषोत्तम प्रभु के केशों का समर्चन करे उपोषित होने पर ऋक्ष दिनों में भक्ति की भावना से द्विज श्रेष्ठों का अच्छी रीति से पूजन करना चाहिए ।२०।

५३—आदित्य शयन व्रत कथन

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः ।
अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुत्तमम् ।१
उपवासेऽप्यशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत् ।२
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्कराचर्नम् ।
येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञा प्रचक्षते ।३
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।
सूर्यस्य चाथ संक्रान्तिस्तिथिः सा सार्वकामिकी ।४
उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत् सूर्यनामभिः ।
सूर्यार्चां शिवलिङ्गं च प्रकुर्वन् पूजयेद्यतः ।५

उमापतेरवेश्चापि न भेदो दृश्यते क्वचित् ।
यस्मात्तस्मान्मुनिश्रेष्ठ ! गृहे शम्भुं समर्चयेत् ।६
हस्ते च सूर्याय नमोऽस्तु पादावर्काय चित्रासु च गुल्फदेशम् ।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रे विशाखासु च जानुदेशम् ।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—यदि कोई उपवास करने में असमर्थ हो और फल वही चाहता हो तो उसके लिए कौन सा व्रत इष्ट एवं उत्तम होता है। उपवास करनेमें असफलता अभ्यास के न होनेसे अथवा किसी भी रोग के कारण हो सकती है।१। ईश्वर ने कहा—जो दिनभर का पूरा उपवास न कर सकें उनको रात्रि में एक बार भोजन करना भी अभीष्ट हो जाता है। जो अहोरात्र के पूरे व्रत का फल होता है वही इसमें भी होता है। इसका अक्षय महत्व श्रवण करो।२। आदित्य शयन नाम वाला व्रत यथारीति भगवान शङ्करको समर्पण है। पुराणों के ज्ञाता विद्वान जिन नक्षत्रों के योगों में यह होता है उन्हें कहते हैं।३। जिस समय में हस्त नक्षत्र के साथ सप्तमी तिथि में आदित्य का दिन होवे और सूर्य की संक्रान्ति होवे तो यह तिथि समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है।४। उमा और महेश्वरी की अर्चा को सूर्य के नामों से अंचित करना चाहिए। और सूर्य की अर्चा को शिव के लिङ्ग में करता हुआ पूजना चाहिए।५। उमा के पति भगवान् शिव का और रवि का कहीं पर भी कोई भेद नहीं दिखलाई देता है। इस कारण से हे मुनिश्रेष्ठ ! गृह में शम्भु का अर्चन करना चाहिए।६। हस्त नक्षत्र में भगवान् सूर्य के लिए नमस्कार हो यह उच्चारण कर चरणों का पूजन करे। चित्रा नक्षत्र में अर्क के लिए नमस्कार हो—यह कहकर गुल्फ देश का अर्चन करना चाहिए। स्वाती में पुरुषोत्तम के लिए नमस्कार है—इसके द्वारा दोनों जंघाओं का पूजन करे और विशाखा में धाता के लिए नमस्कार हो—इससे जानु देश का पूजन करे।७।

तथानुराधासु नमोऽभिपूज्यमूरुद्वयं चैव सहस्रभानोः ।

ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय सोमाय कटी च मूले । ८
पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय । ९
वक्षःस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षे परिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदाद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ । १०
साम्नामधीशाय करद्वयन्तु संपूजनीयं द्विज ! रेवतीषु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय । ११
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीयः ।
ग्रीवाग्नि ऋक्षे अधरं मृगेऽपि संपूजयेन्नारद ! रोहिणीषु । १२
मृगोत्तमाङ्गं दशना पुरारेः संपूजनीया हरये नमस्ते ।
नमः सवित्रे रसना शङ्करे च नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च । १३
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्येऽलका वेदशरीरधारिणे ।
शर्वश्च मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति गोगणेशे । १४

तथा अनुराधा नक्षत्र में नमस्कार करके सहस्रभानु के दोनों ऊरुओं का अभिपूजन करना चाहिए। ज्येष्ठा नक्षत्र में अनंग के लिए नमस्कार होवे—इसके द्वारा गुह्य का पूजन करे। मूल में सोम के लिए नमस्कार होवे—कटि और मूल में पूजन करे।८। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा इन दोनों में त्वष्टा के लिए तथा सप्ततुरंगमों वाले के लिए नमस्कार होवे—यह उच्चारण करके नाभि का पूजन करे। श्रवण में तीक्ष्ण किरण वाले के लिए नमस्कार अर्पित होवे—इससे कुक्षि में पूजन करे तथा धनिष्ठा में विकर्तन के लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा पृष्ठ भाग का अर्चन करना चाहिए।९। ध्वान्तहर (अन्धकार) के विनाश करने वाले के लिए प्रणाम समर्पित होवे—यह कहकर वक्षःस्थल का पूजन करे और इस अर्चना को शतभिष नक्षत्र में करना चाहिए। पूर्वा भाद्रपदा में और उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र में चण्डकरके लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा दोनों बाहुओं का पूजन करना चाहिए।१०। कौशिक

रेवती में चरणों के अशोक के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र को कहकर दोनों चरणों का पूजन करना चाहिए। तथा अश्विनी में जाल अरणों में शुक्लधर को प्रणाम अर्पित हो—इसके द्वारा जङ्घाओं का अभ्यर्चन करे।११। भरणी में कर्पोत धान्य दिवाकर की सेवा में नमस्कार होवे—इस मन्त्रसे उरु का अभिपूजन करे और अश्विनी नक्षत्र में ... का यजन करना चाहिए। हे नारद! रोहिणी में अच्युतेश को प्रणाम हो—इससे कटि का पूजन करे।१२। मृगशिरा में हरि को नमन हो—इससे मुरारि के दर्शनों का यजन करना चाहिए। पुनर्वसु में सविता के लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा रचना का तथा शङ्कर को नमस्कार हो—इससे नासिका का अभिपूजन करना चाहिए।१३। अश्लेषाओं के वल्लभ के लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा पुष्य नक्षत्र में ललाट का पूजन करे। वेदों के कारीष को धारण करने वाले को प्रणाम होवे—इससे नाग में पूजन करें। पितृगणों के प्रिय के लिए नमस्कार हो—इससे भौतिका यजन करे और मनाओं मणि को प्रणाम हो—इससे दोनों कानों का पूजन करना चाहिए।१४।

पूर्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः ।
अथोत्तराफाल्गुनि भे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च सम्पूजनीये ।१५
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशशङ्खपद्मकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ।१६
इत्यादि चास्त्राणि च नित्यं विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्य ।
भोक्तव्यमत्रैव मतल्लशाकंसमांसमक्षारमभुक्तगौरम् ।१७

पूर्वा फाल्गुनी में गौ और ब्राह्मणों के नन्दन के लिए नमस्कार है—इसे कहकर शम्भु के नेत्रों का भली-भाँति से पूजन करे। इसके अनन्तर उत्तराफाल्गुनी में विश्वेश्वर के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र के द्वारा दोनों भ्रुवों का पूजन करना चाहिए।१५। पाश-अंकुश-शङ्ख-पद्म कपाल-सर्प-इन्दु और धनुष धारण करने वाले तथा गज-

असुर, अनङ्ग, पुर, अन्धक आदि के विनाश करने के मूल भगवान् शिव के लिए नमस्कार समर्पित होवे—इस मन्त्र के द्वारा इत्यादि मन्त्रों का पूजन करके विश्वेश्वर के लिए प्रणाम है—इससे शिर का अभिपूजन करे और फिर वहाँ पर ही तैल शाक-मांस और क्षार से रहित अमुक गोरस का भोजन करना चाहिए ।१५-१७।

६४—रोहिणीचन्द्र शयन व्रत कथन

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्तः पुमान् रूपकुलान्वितः स्यात्।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक् व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ! ।१

त्वया पृष्टमिदं सम्यक् अनन्ताक्षय्यकारकम् ।
रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ।२
रोहिणीचन्द्रशयनं नामव्रतमिहोत्तमम् ।
तस्मिन्नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ।३
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् ।
अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ।४
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः ।
आप्यायस्वेति च जपेद् विद्वानष्टशतं पुनः ।५
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाषण्डालापवर्जितः ।
सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः ।६
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम्
पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्त्तयन् ।७

देवर्षि नारदजी ने कहा—बार-बार जन्म में जिससे भली भाँति से पुरुष दीर्घ आयु वाला—स्वरूपता से सम्पन्न तथा कुल की अभिवृद्धि से युत और रूप के कुल से संयुत होता है हे इन्दु को मौलि में धारण करने वाले ! उस व्रत को आप कहने की कृपा कीजिए ।१। श्रीभगवान्

ने कहा—आपने यह बहुत ही अच्छा पूछ लिया है इसको अत्यन्त सात्त्विक बतलाया है। अब उसका जो स्वरूप है उसे बतलाता हूँ जिसे पुराणों के ज्ञाता विद्वान् जानते हैं।४। रोहिणी चन्द्र शयन नाम वाला व्रत सर्वोपर एक अति उत्तम व्रत है। उसमें भगवान् नारायण की अर्चा होती है जो इन्दु के नामों के द्वारा अर्चन करना चाहिए।५। जब भी किसी समय में सोमवार के दिन में मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चदशी पूर्णिमा तिथि हो अथवा ब्रह्म नक्षत्र पौर्णमासी होवे तो उस समय में मनुष्य को सर्षप (सरसों) और पञ्चगव्य से स्नान करना चाहिए। फिर विद्वान् पुरुष को 'आप्यायस्व'—इत्यादि मन्त्र का एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए।४-५। यदि कोई शूद्र वर्ण वाला भी हो तो उसको भी इसी प्रकार की भक्ति से पाखण्ड और आलाप से रहित 'कल्याण देने वाले सोम और विष्णु के लिए बारम्बार प्रणाम है'—इसका जप करके अपने भवन जाकर सोम के नामों का कीर्तन करते हुए फल-पुष्पों के द्वारा भगवान् मधुसूदन का पूजन करना चाहिए।६-७।

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजंघे ।
ऊरुद्वयञ्चापि जलोदराय सम्पूजयेदिन्दुमनन्तबाहवे ।८
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया ।
तथोदरञ्चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या॥९
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखञ्च पूज्यं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्या ।
हास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय ।१०
नासा च नाथाय वनौषधीनामानन्दभूताय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दोरिन्दीवरश्यामकराय शौरेः ।११
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियायकेशाः सुषुम्नाधिपते प्रपूज्याः ।१२
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने ।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मीःसौभाग्यसौख्यामृतसागराये।१३

देवीं च संपूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीम् ।
सुप्त्वाऽथ भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ।।१४

पूजन करने का क्रम और प्रत्येक अङ्ग तथा उनके अर्चन करने के भिन्न-भिन्न मन्त्रों को बतलाते हुए कहते हैं—शान्त शोभा के लिए प्रणाम है इसे कहकर मधुसूदन के सर्व प्रथम चरणों का अभ्यर्चन करे । अनन्त-धाम वाले को नमस्कार है—इससे जानु और जंघाओं का यजन करे । जलोदर को नमन है—इसके द्वारा दोनों ऊरुओं को पूजे । अनन्त बाहुओं वाले की सेवा में प्रणाम है—इससे मेढ्र का यजन करे ।८। काम के सुख को प्रदान करने वाले के लिए बारम्बार नमस्कार है—इस मंत्र से शशाङ्क की कटि अर्चन करना चाहिए । अमृतोदर की सेवा में प्रणाम अर्पित है—इससे उदर का अभ्यर्चन करे और शशाङ्क के लिए नमस्कार है—इसे कहकर नाभि का पूजन करे ।९। चन्द्र को प्रणाम है—इससे मुख और स्त्रियों के अधिप के लिये नमस्कार है—इसके द्वारा दाँतों का पूजन करना चाहिए । चन्द्रमस को प्रणाम है—इससे आस्य कुमुदों के वन के परम प्रिय की वन्दना है—इसका उच्चारण करके दोनों ओष्ठों का पूजन करना चाहिए ।१०। वनौषधियों के नाथ की वन्दना है इसके द्वारा तथा फिर आनन्द स्वरूप को नमस्कार है—इससे पुनः दोनों भौंहों का यजन करे । इन्दीवर के समान श्याम करों वाले को प्रणाम है—इससे कौशिके तथा पद्मिनी के भर्ता—इन्दु के दोनों नेत्रों का अर्चन करे ।११। समस्त अध्वरों में वन्दित और दैत्यों के निषूदन करने वाले को प्रणाम है—इससे दोनों गालों की अर्चना करे । उदधि के परम मित्र की सेवा में प्रणाम है—इस मन्त्र से इन्दु के ललाट का तथा सुषुम्ना के अधिपतिके केशों का पूजन करना चाहिए ।१२। शशाङ्क के लिए प्रणाम है—इससे शिरका पूजन करे तथा विश्वेश्वर किरीटधारी को नमस्कार है इससे मुरारि का शिर का यजन करे । हे पद्मों की प्यारी ! हे रोहिणी ! लिखता नाम लक्ष्मी है । हे सौभाग्य और सौख्य

रूपी अमृत के धाम वाली ! ये कहते हुए सुगन्धित पुष्पों के तथा नैवेद्य आदि अन्य उचित पूजनोपचारों से इन्दु की पत्नी देवी का भली भाँति पूजन करना चाहिए और फिर भूमि में ही शयन करे और पुनः उठकर स्नान करे तब। इतिहास युक्त होकर विप्र के लिए प्रातःवेला में पापों के विनाश करने वाले को नमस्कार है—इसमें सुवर्ण का निर्मित जल का कुम्भ दान करना चाहिए ।१३-१४।

यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ।
भुक्तिमुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मे सदा ।१५
इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ! ।
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् ।१६
इदमेव पितृणां च सर्वदा वल्लभं मुने ! ।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् ।
चन्द्रलोकमवाप्नोति विशुद्धः भूत्वा तु मुच्यते ।१७
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् ।
साऽपि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।१८
इति पठति शृणोति वा य इत्थं ।
मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तनेन नित्यम् ।१९
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः ।
परिपूज्यतेऽमरौघैः ।२०

इसके अनन्तर प्रार्थना करे—हे देव ! जिस प्रकार से आप ही सब को परम आनन्द और मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं उसी तरह से हे चन्द्र ! मेरी सदा आप में भक्ति होवे और मुक्ति एवं भुक्ति भी मुझे प्राप्त होवे । हे अनघ! यह व्रत संसार की बाधाओं से भीत और मुक्ति प्राप्त करने की कामना वाले को अतीव उत्तम है जो रूप-आरोग्य और आयु का करने वाला होता है ।१५-१६। हे मुने ! यही व्रत पितृगण को भी सर्वदा प्रिय होता है । इसको करने वाला पुरुष सम्पूर्ण त्रिलोकी का

स्वामी होकर तीन सौ साठ कल्प तक चन्द्र लोक की प्राप्ति किया करता है तथा विद्वान् होकर ही मुक्त हुआ करता है ।१६। चाहे कोई पुरुष हो या नारी हो जो भी इस रोहिणी चन्द्र शयन नामक व्रत का समाचरण करता है वह नारी भी पुनः आवृत्ति अर्थात् संसार में जन्म ग्रहण करने की पुनरावृत्ति आगमन से दुर्लभ यह फल है और उसी फल को प्राप्त किया करती है ।१७। इस तरह से भगवान् मधु दैत्य के संहार करने वाले का अभ्यर्चन जो इनके शुभ नामों के कीर्तन के द्वारा सम्पन्न किया जाता है उसका पठन या श्रवण मात्र किया करता है और अपनी बुद्धि को भी इसमें लगा देता है वह पुरुष भी भगवान् मुरारि के ही भवन में पहुँच कर अमरों के समुदाय के द्वारा परिपूजित हुआ करता है ऐसा इस व्रत के श्रवण पठन और मनन मात्र का ही माहात्म्य होता है ।१८-२०।

३५—तड़ागारामकूपादि प्रतिष्ठा विधि वर्णन

जलाशयगतं विष्णुमुवाच रविनन्दनः ।
तड़ागारामकूपानां वापीषु नलिनीषु च ।१
विधिं पृच्छामि देवेश ! देवतायतनेषु च ।
के तत्र ऋत्विजो नाथ ! वेदी वा कीदृशी भवेत् ।२
दक्षिणा वलयः कालः स्थानमाचार्य एव च ।
द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्ष्व तत्त्वतः ।३
शृणु राजन्महाबाहो ! तडागादिषु यो विधिः ।
पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते वेदवादिभिः ।४
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।५
प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः ।

चतुर्हस्तां शुभां वेदिं चतुरस्रां चतुर्मुखाम् ।६

तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ।

वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः ।७

महामहिम महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रवि के पुत्र ने एक बार जलाशय अर्णव् और सागर में गत अर्थात् शेष शय्या पर शयित भगवान् विष्णु से कहा था—तालाब—आराम (उद्यान) और कूपों का तथा बावड़ी और नलिनियों के निर्माण कराने की विधि मैं आपसे पूछता हूँ। हे देवेश्वर ! हे नाथ ! और देवों के आयतनों की रचना कराने में यहाँ पर कौन ऋत्विज होते हैं और किस प्रकार की वेदी की रचना की जाया करती है ? दक्षिणामण्डप-काल-स्थान और आचार्य कैसा कौन होना चाहिए तथा इनके सम्पादन करने के लिए समस्त द्रव्य कौन से होते हैं ? यह सभी तात्विक रूप से कथन करने की कृपा कीजिए। १-३। मत्स्य भगवान ने कहा—हे महान बाहुओं वाले राजन् ! अब आप श्रवण कीजिए। तालाब आदि की रचना कराने में जो भी कुछ विधान है उसे बतलाया जाता है। पुराणों में वेदों के वाद करने वाले विद्वानों के द्वारा यह इतिहास कहा जाया करता है।४। उत्तरायण के आगमन होने पर अत्यन्त परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके किसी भी विप्र के द्वारा बताये गए परम पुण्य दिवस में ब्राह्मण वाचन करे। ।५। जो देश ऐसा हो जिसमें जल की अधिकता रहती है उस उत्तम प्रदेश में तड़ाग के ही समीप में एक शुभ वेदी की रचना करावे जो चार हाथ प्रमाण वाली हो—चौकोर और चार मुखों वाली होनी चाहिए।६। तथा वहाँ पर सोलह हाथ प्रमाण वाला एक चतुर्मुख मण्डप बनावे। और वेदी के चारों ओर गर्त होवें तथा रत्नि प्रमाण वाली मेखला होनी चाहिए।७।

नव सप्ताथ वा पञ्च नातिनिम्ना नृपात्मज ।

वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता ।८

गर्ताश्चतस्रः शस्ताः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखला ।
सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः ।९
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु ।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ।१०
शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै ।
अष्टौ तु जापकाः कार्याः ब्राह्मणा वेदपारगाः ।११
सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।
कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद् द्विजोत्तमः ।१२
प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च ।
व्यजनं चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते ।१३
ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम् ।
आचार्यः प्रक्षिपेद् भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः ।१४

हे नृपात्मज ! यह मेखला भी चार अथवा पाँच होनी चाहिए इससे अतिरिक्त न होवे । छै-सात अंगुलियों के समान विस्तृत एक त्रिवलि (त्रिवलय) प्रमाण वाला वेदी की योनी होनी चाहिए ।८। चार ही गर्त प्रशस्त होते हैं और तीन पर्वों के तुल्य उच्छ्रित मेखलायें होनी चाहिए । सभी ओर से वर्णों से युक्त तथा पताका एवं ध्वजाओं से युक्त होनी चाहिए ।९। अश्वत्थ (पीपल) उदुम्बर (गूलर) प्लक्ष (पाखर) और वट (बड़) की शाखाओं के द्वारा बनाये गये प्रत्येक दिशा में मण्डप के द्वार बनवाने चाहिए ।१०। वहाँ पर आठ ही होता परम शुभ हैं तथा आठ ही द्वारपाल होने चाहिए । आठ ही जप करने वाले जापक एवं वेदों के पारगामी विद्वान ब्राह्मण होने चाहिए ।११। इनका जो पुरोहित हो वह सभी लक्षणों से परिपूर्ण हो—मन्त्रों का ज्ञाता-विजित इन्द्रियों वाला तथा कुल और शील से समन्वित श्रेष्ठ द्विज होना चाहिए ।१२। प्रत्येक गर्त में कलश होवें और यज्ञ के सभी उपकरण भी रहने चाहिए—व्यजन—शुभ्र चामर तथा।

सुविस्तृत तथा चार हाथ वाला होवे ।१३। इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक वर्णों वाले अनेक देवता के चरु होने चाहिए । विचक्षण अर्थात् परम कुशल आचार्य को अनुमन्त्रित करके भूमि में प्रक्षेप करना चाहिए । ।१४।

अरत्निमात्रो यूपःस्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः ।
यजमानप्रमाणोवासंस्थाप्योभूतिमिच्छता ।१५
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः ।१६
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ।१७
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निस्वनेन च ।
अञ्जसा मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ।१८
षोडशारन्ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ।
चतुरस्रञ्च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् ।१९
वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहान् लोकपतींस्तथा ।
विन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः ।२०
झषादि स्थापयेन्मध्ये वारुण्यां मन्त्रमाश्रितः ।
ब्रह्माणञ्च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः ।२१

तीन अरत्नि के प्रमाण वाला यज्ञीय यूप होना चाहिए जो किसी ऐसे वृक्ष से बनाया गया है जिसमें दूध रहता हो । अथवा भूति की इच्छा रखने वाले को यूपका यजमान के तुल्य ही प्रमाण रखना चाहिए ।१५। यजमान को शुक्ल वर्ण के वस्त्र और माला धारण करने वाला होना चाहिए । जो गन्ध का अनुलेपन किया जावे वह भी शुक्ल ही होना चाहिए । वहाँ पर जो वेदों का ज्ञान रखने वाले पारगामी मनीषी हैं उनके द्वारा सर्वौषधि समन्वित जलों के द्वारा ही उसे यजमान को स्नापित कराना चाहिए ।१६। फिर वह यजमान अपनी पत्नी के

सहित तथा पुष्पमालादि से संयुक्त होकर जो मण्डप का पश्चिम दिशा में द्वार है उसी से यह याग मण्डप में प्रवेश प्राप्त करे ।१७। इसके अनन्तर मङ्गलमय शब्दों की ध्वनि से तथा भेरियों के उद्घोष के साथ ही यजमान का प्रवेश होता है। सबों के वेत्ता आचार्य को चाहिए कि तुरन्त ही मण्डप को पञ्चगव्य से युक्त कर देवे ।१८। इसके पश्चात् सोलह अरों वाला चक्र करे जिसके गर्भ में पद्म हो और बाहर चुन्नी से युक्त हो—चौकोर चारों ओर से वृत तथा मध्य में शोभन होना चाहिए ।१९। फिर विद्वान् पुरोहित को वेदी के ऊपर समस्त ग्रहों तथा लोकपालों को स्थापित करे और प्रत्येक दिशाओं में सबका स्थापन मन्त्रों के द्वारा ही करना चाहिए ।२०। मन्त्रों का उच्चारण ग्रहण करने वाले को वारुणी दिशा में मध्य में कूर्म आदि की स्थापना करनी चाहिए और शुभ पूजन का कर्त्तव्य है कि यहीं पर ब्रह्मा-शिव और भगवान् विष्णु की स्थापना भी करें ।२१।

विनायकञ्च विन्यस्य गन्धमातृगणं तथा ।
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः ।२२
पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवं कृत्वाऽधिवासनम् ।
कुम्भान्सजलगर्भांस्तान्वासोभिः परिवेष्टयेत् ।२३
पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः ।
पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत् ।२४
बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ।
सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणौ ।२५
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ।
यजध्वमिति तान्ब्रूयाद् होतृकान्पुनरेव तु ।२६
उत्कृष्टान् मन्त्रयोगेन तिष्ठध्वमिति जापकान् ।
एवमादिश्य तान् सर्वान् पर्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित् ।२७
जुहुयाद्वारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा ।

ऋत्विग्भिरग्नयश्चैव होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः ।२८

वहाँ पर विघ्न विनायक विनायक-कमला-अम्बिका का विशेषरूप से न्यास करे तथा सम्पूर्ण लोकों की शान्ति-रक्षा के लिए भूतग्राम का भी न्यास वहाँ पर करे ।२२। पुष्प-अक्षत कलशों से युक्त इस प्रकार से वहाँ अधिवास करे । जो कुण्ड वहाँ पर जलों से भरे-पूरे स्थापित हैं उनको वस्त्रों से परिवेष्टित कर देना चाहिये ।२३। सभी ओर में जो द्वारपाल हों उनको पुष्प और बलि से सन्तुष्ट करके फिर उनसे आचार्य को निवेदन देना चाहिए कि आप लोग पाठ आरम्भ कर देवें और उसी फिर अधिपूजन करना चाहिए ।२४। ऋत्विजों में बह्वृच हों उन्हीं को पूर्व दिशा में स्थापित करे अर्थात् ऋग्वेद के ज्ञाताओं को पूर्व दिशा में रक्खे । यजुर्वेद के विद्वानों को दक्षिण में सामवेद के ज्ञाताओं को पश्चिम में और जो अथर्व के विद्वान् हों उनको उत्तर दिशा में संस्थापित करे ।२५। जो यजमान है उसको उत्तर की ओर मुख करके दक्षिण दिशा में उपस्थित होना चाहिए । जब यह व्यवस्था पूर्ण होकर सभी यथास्थान स्थित हो जावें तो पहिले आचार्य को चाहिए कि उन सबको निर्देश देवे कि यजन का आरम्भ कर देवें फिर जो होतिक हों उनको भी आदेश देवे ।२६। जो वहाँ पर मन्त्रों के जापक ब्राह्मण हैं उनके भी ऐसा निर्देश करना चाहिए कि आप लोग अमुक मन्त्रों के जप का आरम्भ करने वाले संस्थित होवें । इस तरह से उन सबको यथोचित कर्म समारम्भ करने का आदेश देकर फिर उन मन्त्रों के वेत्ता आचार्य को अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए ।२७। फिर वारुण मन्त्रों के द्वारा घृत और समिधाओं का हवन करे और जो ऋत्विक होता वहाँ पर है उन सबको भी सब ओर से वारुण मन्त्रों के द्वारा ही हवन करना चाहिए ।२८।

ग्रहेभ्यो विधिवद्दत्त्वा तथेन्द्रायेश्वराय च ।
मघवद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विजसत्तमाः ।२९

राशिसूक्तञ्च रौद्रञ्च पावमानं सुमङ्गलम् ।
जपेयुः पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वृचाः पृथक् ।३०
शाक्रं रौद्रञ्च सौम्यञ्च कूष्माण्डं जातवेदसम् ।
सौरसूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः ।३१
वैराज्यं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम् ।
शैशवं पञ्च निधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ।३२
वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं सरथन्तरम् ।
गवां व्रतं च काण्वञ्च रक्षोघ्नं वयसस्तथा ।
गायेयुः सामगा राजन् ! पश्चिमं द्वारमाश्रिताः ।३३
अथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा ।
जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम् ।३४
पूर्वेद्युरभितो गत्वा कृत्वाधिवासनम् ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा ।३५

समस्त ग्रहों के लिए विधि के साथ हवन करके इन्द्र—ईशान मरुद्गण—लोकपाल और विश्वकर्मा के लिए विधान के अनुसार ही आहुतियाँ देनी चाहिए ।२९। पूर्व दिशा में जो बह्वृच स्थित हैं उनको राशि सूक्त, रौद्र, पवमान, सुमङ्गल और पुरुष सूक्त का पृथक् जाप करना चाहिए।३०। जो यजुर्वेद के ज्ञाता ऋत्विज दक्षिण दिशा में स्थित रहते हैं उनको शाक्र (इन्द्र का सूक्त) रौद्र (रुद्रदेव का सूक्त) सौम्य अर्थात् सोम का सूक्त—कूष्माण्ड-जातवेदस और सौर अर्थात् सूर्य के मन्त्रों का जाप करना चाहिए ।३१। पश्चिम दिशा को समवलंबन करके द्वार पर समाश्रित जो सामवेदी सामगानी ऋत्विज समुपस्थित हैं उन्हें वैराज्य, पौरुष सूक्त, सौपर्ण, रुद्रसंहिता, शिशु, पञ्चनिधन गायत्र, ज्येष्ठ साम-वामदेव्य, बृहत्साम, रौरव सरथन्तर, गौओं का व्रत, काण्व रक्षोघ्न तथा वयस इन सबका हे राजन् ! गायन करना चाहिए ।३२।

उत्तर दिशा में अथर्ववेद के विज्ञ ऋत्विज स्थित हैं उनको शान्तिक और पौष्टिक सूक्तों का जप करना चाहिए तथा जल से प्रभु वरुण देव का समावाप ग्रहण करके ही जाप करने का विधान है। अतः ऐसा ही करना चाहिए।३४। पूर्व दिशा में सभी ओर से इस वरुण राशि में अधिवासन करे तथा गज, अश्व, रथ्या, वल्मीक, सङ्गम ह्रद, गोकुल, इन स्थलों से मृत्तिका का ग्रहण करके तथा कलश से ग्रहण करके कुम्भों में प्रक्षेप उसका करना चाहिए।३५।

रोचनाञ्च ससिद्धार्थं गन्धं गुग्गुलमेव च ।
स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितम् ।३६
प्रत्येकन्तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः ।
एवं रात्रिव्यतिक्रान्तं विधियुक्तेन कर्म्मणा ।३७
ततः प्रभाते विमले सञ्जातेऽथ शतं गवाम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिरथापि वा पुनः ।
पञ्चाशद्वाथ षड्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरथापि वा ।३८
ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने ।
वेदशब्देश्च गान्धर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः पुनः ।३९
कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् ।
सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाम्पते ।४०
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ।
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः ।
धृतां चतुर्भिर्विप्रैश्च वेदवेदाङ्गपारगैः ।४१

सिद्धार्थ के सहित रोचना—गन्ध और गुग्गुल को भी प्रक्षिप्त करे। फिर उसका पंचभङ्ग समन्वित स्नपन करना चाहिए।३६। महा-मन्त्रों के द्वारा इस प्रकार से प्रत्येक का विधान के साथ करके फिर विधियुक्त से इस रात्रि को इसी भाँति अति वाहन करे।३७। इसके अनन्तर जब यह अधिवास की रात्रि समाप्त होकर विमल प्रभात बेला

हो जावे तो उस समय में एक सौ अथवा अड़सठ गौओं का दान ब्राह्मणोंके लिए देना चाहिए। इतनी न होसके तो पचास अथवा छत्तीस या पच्चीस ही गौओं का दान अवश्य करना चाहिए।३८। इसके अनन्तर सान्तानिक होम अर्थात् वर्गों में कथित शुभ गान्ध और शुक्ल विलय वेदों के शब्दों की ध्वनियों से तथा अनेक प्रकार के गान्धर्व वाद्यों से सुवर्ण से समलंकृत करके गौ को जल में अवतारित करे। हे द्विजश्रेष्ठो! फिर उस गौको साम वेदके गायक ब्राह्मणके लिए दान में देनी चाहिए।३९।४०। सुवर्ण के द्वारा विनिर्मित तथा पाँच प्रकार के रत्नों से संयुक्त लेकर फिर मत्स्य-कच्छप आदि का निवेश करके वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् चार प्रकार के विप्रों के द्वारा वह धारण कीजिए।४१।

महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम् ।
उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत् ।४२
आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामित्यथेति च ।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डलम् ।४३
पूजयित्वा सरस्तत्र बलिं दद्यात् समन्ततः ।
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ।४४
चतुर्थी कर्म कर्त्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः ।
दक्षिणा राजशार्दूल ! वरुणक्षमापनं ततः ।४५

किसी महा नदी के जलसे समुपेत तथा दधि अक्षतों से युक्त और उत्तर दिशा की ओर मुख करने वाली उस धेनु को जल के मध्य में करा देवे।४२। अथर्ववेद के 'पुनर्मामि' इत्यादि मन्त्र से संस्नान करके फिर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से क्षेपण करे और फिर मंडल में आगमन करे।४३। वहाँ पर सर का पूजन करके सभी ओर बलि देनी चाहिए। हे मुनिश्रेष्ठो! पुनः चार दिन पर्यन्त हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् चतुर्थी कर्म करना चाहिए वहाँ पर शक्ति पूर्वक दक्षिणा

भी देनी चाहिए । हे राजशार्दूल ! इसके अनन्तर वस्त्रवेष्टन से समापन करना चाहिए ।४४-४५।

३६—सौभाग्य शयन व्रत कथन

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् ।
सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ॥१
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु ।
सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत्तदा ।
वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षःस्थलस्थितम् ॥२
ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप ! ।
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते ॥३
स्पर्धायाञ्च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः ।
लिङ्गाकारासमुद्भूता वह्निज्वालातिभीषणा ।
तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ॥४
वक्षस्थलं समाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम् ।
रसरूपमतोयावत्प्राप्नोतिवसुधातलम् ॥५
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद्ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
दक्षेण पीतमात्रन्तद्रूपलावण्यकारकम् ॥६
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः ।
शेषं यदपतद्भूमावष्टधा समजायत ॥७

मत्स्य भगवान् ने कहा—इसी प्रकार से एक अन्य समस्त मनोरथों के फलों का प्रदान करने वाले व्रत का वर्णन करता हूँ जिस व्रत का नाम सौभाग्य शयन है जिसे पुराणों के वेत्ता विद्वान् पुरुष भली भाँति जानते हैं ।१। पुरातन समय में भूः—भुवः—स्वः और महर्लोक आदि लोकों के

नष्ट हो जाने पर उस महान् भीषण काल में समस्त भूतों का सौभाग्य एकमें ही स्थित हो गया था।२। वह सौभाग्य वैकुण्ठ और स्वर्गमें पहुँच कर भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में स्थित हो गया था। हे नृपो! इसके पश्चात् बहुत अधिक काल के हो जाने पर पुनः सर्गकी विधि प्राप्त हुई तो उस समय में यह लोक अहङ्कार से आवृत और प्रधान-पुरुषसे समन्वित था।३। भगवान् श्री कृष्ण और कमलासन ब्रह्माजी इन दोनों में स्पर्द्धा की भावना की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी। ऐसी दशा में एक लिङ्ग के आकार वाली अग्नि की भीषण ज्वाला समुद्भूत हुई थी और अत्यन्त अभिलक्ष्य भगवान् हरि के वक्षःस्थल से वह निःसृत हुई थी।४। इस वसुधा के तलमें जो भी कुछ रस और रूप जितना भी प्राप्त होता है वह सभी भगवान् विष्णुके वक्षःस्थल का समाश्रय ग्रहणकरके समस्त सौभाग्य वहीं पर समस्थित हो गया था।५। परम धीमान् ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने पीतमात्र इस रूप लावण्य के करने वाले को अन्तरिक्ष में उत्क्षिप्त कर दिया था।६। परमेष्ठी दक्ष का बल और तेज महान् हो गया था। शेष जो भी कुछ भूमण्डल में गिरा था वह आठ प्रकार का हो गया था।७।

ततो जातानि सञ्जाताः सप्तसौभाग्यदायकाः ।
इक्षवो रसराजश्च निष्पावाजाजिधान्यकम् ॥८
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा ।
लवणं चाष्टमं तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥९
पीतं यद् ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुरा ।
दुहिता साऽभवत्तस्य या सतीत्यभिधीयते ॥१०
लोकानतीत्य लालित्यात् ललिता तेन चोच्यते ।
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् ॥११
या देवी सौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
तामाराध्य पुमान् भक्त्या नारी वा किन्न विन्दति ॥१२

इसके उपरान्त सतो के साथ सौभाग्य के देने वाले द्रव्य हैं—इक्षु (ईख-गन्ना) रसराज-निष्पाव-अजाजि-धान्य-विकार वाला गौ का दुग्ध कुसुम्भ, कुंकुम और आठवाँ लवण । इनको आठ प्रकार का सौभाग्य का अष्टक कहा जाता है ।८-९। योग ज्ञान के वेत्ता ब्रह्माजी के पुत्र ने जो पी लिया था वह उसकी दुहिता हुई थी जो सती इस नामसे कही जाया करती है ।१०। उस दक्ष प्रजापति की पुत्री सती का लालित्य इतना अधिक था कि समस्त लोकों के लालित्य को भी अतिक्रान्त कर दिया था । इस लालित्य की अत्यधिकता के कारण ही उसका शुभ नाम ललिता लोकमें कहा जाता है यह सती त्रैलोक्य की एकही परमसुन्दरी थी । इसके साथ भगवान पिनाकधारी शङ्कर ने परिणय किया था ।११। जो देवी परम सौभाग्य से परिपूर्ण है और भुक्ति अर्थात् सांसारिक सब प्रकार के सुखों उपभोग और मुक्ति अर्थात् इस संसार में, जीवनमरण के आवागमन से छुटकारा, इन दोनों के फल को प्रदान करने वाली है उसका आराधन भक्तिभाव से करके चाहे पुरुष हो या नारी हो क्या कुछ प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् सभी कुछ प्राप्त हो जाता है ।१२। मनु ने कहा—हे जनार्दन हे जगन्नाथ ! उस महान् की पत्नी उस देवी का आराधन किस प्रकार से किया जाता है ? इसका जो भी विधान हो वह सम्पूर्ण कृपा करके मुझे बतलाइये ।१३।

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन ! ।
तद्विधानं जगन्नाथ ! तत् सर्वञ्च वदस्व मे ।१३
वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय ! ।
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत् ।१४
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती ।
पाणिग्रहणकैर्मन्त्रै रुपयेमे वरवर्णिनी ।१५
तया सहैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत् ।
फलैर्नानाविधैर्धूपदीपनैवेद्यसंयुतैः ।१६

प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन तु ।
स्नापयित्वार्चयेद् गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥१७
नमोऽस्तु पाटलायेति पादौ देव्याः शिवस्य तु ।
शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोर्द्वयोः ॥१८
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जंघयोर्युगम् ।
शिवा रुद्रेश्वराय च विजयायेति जानुनी ।
संकीर्त्य हरिकेशाय तथोरू वरदे नमः ॥१९
ईशायैति कटिं देव्याः शङ्करायेति शंकरम् ।
कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये ॥२०
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभि पूजयेत् ।
सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम् ॥२१

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे धर्मप्रिय ! वसन्त मास को प्राप्त करके शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि में पूर्वाह्न के समयमें तिलों से स्नान करना चाहिए ।१४। उस दिन ही यह भगिनी वह देवी सती विश्वात्मा के साथ पाणिग्रहण के मन्त्रों से विवाह करने वाली हुई थी ।१५। उसी देवी के साथही तृतीयामें देवेश का भी अर्चन करना चाहिए । फल भी अनेक प्रकार के ही उनसे धूप-दीप और नैवेद्य से संयुत करके प्रतिमा का पञ्चगव्य से और गन्धोदक से स्नपन कराकर फिर इन्दु शेखर से समन्वित गौरी का समभ्यर्चन करना चाहिए ।१६-१७। पाटला के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र का उच्चारण करके देवी और शिव के चरणों का यजन करे । शिवाय नमः—जयायै नमः—इनका संकीर्तन करके दोनों देवों के दोनों गुल्फों का अर्चन करे ।१८। त्रिगुण रुद्र का नमस्कार है भवानी के लिए नमस्कार है—इन मन्त्रों से दोनों जंघाओं की अर्चना करनी चाहिए। शिवा रुद्रेश्वर को तथा विजया को नमस्कार है—इनसे दोनों जानुओं का पूजन करें । हरिकेश और वरदा के लिए नमस्कार है—इनका संकीर्तन करके दोनों ऊरुओं का यजन करे ।१९। ईशा को नमस्कार—इससे देवी की कटि । तथा शङ्कर के लिए

प्रणाम है—इससे भगवान् शंकर की कटि का पूजन करें। कोटवी तथा शूलपाणि शर्वा की सेवा में प्रणाम अर्पित हो—इन से दोनों कुक्षियों का अर्चन करना चाहिए।२०। मङ्गला आपके लिए नमस्कार है—इसका उच्चारण करके उदर का पूजन करें। सर्वात्मा के लिए नमस्कार है इससे वक्ष का अर्चन करें तथा ईशानी की सेवा में प्रणाम है—इससे देवी दोनों स्तनों का अभ्यर्चन करना चाहिए।२१।

शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत्।
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम्।२२
त्रिलोचनाय च हरं बाहू कालानलप्रिये।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत्।
स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम्।२३
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ।
स्थापयेत्तु हरं तद्वदास्यं चन्द्रमुखप्रिये।२४
नमोऽर्द्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम्।
नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ।२५
शर्वाय पुरहन्तारं वासन्त्यै तथालकान्।
नमः श्रीकण्ठनाथायै शितिकेशास्ततोऽर्चयेत्।
भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः।२६
शिवमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः।
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान्।२७
रसराजञ्च लवणं कुस्तुम्बुरुमथाष्टकम्।
दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः।२८

वेदात्मा को प्रणाम है—इससे शिवका और रुद्राणी को प्रणाम है इससे देवी के कण्ठ का पूजन करे। त्रिपुर के हनन करने वाले को प्रणाम है—इससे देवी के दोनों करों का पूजन करे।२२। त्रिलोचनाय नमः अर्थात् तीन लोचनों वाले को प्रणाम है—इस मन्त्र को पढ़कर

भगवान् रुद्र का तथा हे बाहु कालानल प्रिये! सौभाग्य भवनाके लिए प्रणाम है—इससे सर्वदा भुजाओं का अभ्यर्चन करना चाहिए । स्वाहा स्वधा को नमस्कार है—इससे देवी के मुख का और ईश्वर के लिए नमस्कार है—इससे शूलि की अर्चना करे ।२२। अशोक मधुवासिनी को प्रणाम अर्पित हो—इस मन्त्र से देवी के मुदित प्रदान करने वाले ओष्ठों का पूजन करना चाहिए । उसी भाँति स्थाणु के लिए नमस्कार है-इससे रुद्र का अर्चन करे । हे चन्द्रमुख प्रिये ! आपको नमस्कार है—इससे आनन अर्चन करे अर्धनारीश रुद्र को तथा असिताङ्गी को नमस्कार है इन मन्त्रों के द्वारा नासिका का अभ्यर्चन करे । उग्र के लिए प्रणाम है—इससे लोकेश का तथा ललिता को प्रणाम है—इससे देवी के दोनों भ्रुकुटियों का अर्चन करना चाहिए ।२४-२५। 'पुरारि नमः' अर्थात् पुर की सेना से नमस्कार अर्पित है—इस मन्त्र से पुर के हनन करने करने वाले प्रभु का और 'वासुक्यै नमः' अर्थात् वासुकी के लिए प्रणाम है—इससे देवीके श्रवणों का अर्चन करे । 'श्री कण्ठनाथायै नमः' अर्थात् कण्ठ की स्वामिनी को नमस्कार है इससे देवी के केशों का और शिव शिव के केशों का पूजन करें । 'भीमोग्र सम रूपिण्यै नमः'—इस मन्त्र से देवी के तथा 'सर्वात्मने नमः'—इस मन्त्र से देवेश के शिर का पूजन करना चाहिए ।२६। इस प्रकार से विधि के साथ भगवान् शिव का समर्चन करके उनके आगे फिर सौभाग्याष्टक की स्थापना करनी चाहिए उस सौभाग्य के आठ पदार्थों के नाम, घृत, निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीर, जीरक, तवराज, लवण और कुस्तुम्बुरु ये हैं । इन्हीं का सबका समुदाय अष्टक होता है इस अष्टक से सौभाग्य का प्रदान किया था अतएव इसका नाम सौभाग्याष्टक हो गया है ।२७-२८।

एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः ।
रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद्भूमावरिन्दम ॥२९
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः ।
संपूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः ।३०

सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् ।
प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।३१
एवं संवत्सरं यावत् तृतीयायां सदा मुने ! ।
कर्त्तव्यं विधिवद्भक्त्या सर्वसौभाग्यमीप्सुभिः ।३२
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे ।
शृङ्गोदकं चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः ।३३
ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् ।
श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम् ।३४
क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्तिके पृषदाज्यकम् ।
मार्गशीर्षे तु गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम् ।३५

इस प्रकार से उन दोनों को शिव और शिवा के आगे निवेदन करके रात्रि में शृङ्गोदक का प्राशन करके उसी भाँति भूमि में अधिशयन को करावे ।२९। पुनः प्रातःकाल की वेला में स्नान और जाप करके परम शुचि होकर वस्त्र-माला और भूषणों के द्वारा ब्राह्मण दम्पति का भली भाँति पूजन करना चाहिए ।३०। सौभाग्याष्टक से समन्वित सुवर्ण निर्मित दो चरणों को इसमें ललिता देवी प्रसन्न हों—यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को दान देना चाहिए इसी प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त हे मुने ! तृतीया तिथि में सदा विधि के सहित भक्ति की भावना से सर्व सौभाग्य के इच्छुक पुरुषों को इस व्रत को करना चाहिए ।३१-३२। प्राशन में और दान के मन्त्र में यह यहाँ पर विशेषता है उसे आप मुझसे समझ लो । चैत्र मास में शृङ्गोदक वैशाख में गोमय का प्राशन करना चाहिए ।३३। ज्येष्ठ मास में मन्दार का कुसुम और आषाढ़ में बिल्व पत्र कहा गया है । श्रावण में दधि का सम्प्राशन करे और भाद्रपद में कुशोदक का प्राशन करना चाहिए ।३४। आश्विन मास में क्षीर और कार्तिक में पृषदाज्य तथा मार्गशीर्ष में गोमूत्र का प्राशन करे । पौष मास में घृत का प्राशन करना चाहिए ।३५।

माघे कृष्णतिलांस्तद्वत् पञ्चगव्यञ्च फाल्गुने ।
ललिताविजयाभद्रा भवानी कुमुदाशिवा ।३६
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती ।
उमा च दानकालेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ।३७
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालती ।
कुब्जकं करवीरञ्च बाणमम्लानकुङ्कुमम् ।३८
सिन्दुवारञ्च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् ।
जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ।३९
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरञ्च सर्वदा ।
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ।४०
स्त्रीभक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः ।
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ।४१
उमामहेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह ।
स्थापयित्वाथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।४२

माघ मास में काले तिलों का तथा फाल्गुन में पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिये । बारहों मासों के दान कालके भी पृथक् २ नाम हैं क्रम से समझ लेना चाहिये—ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा शिवा, वासुदेवी, गौरी, मंगला, कमला, सती और उमा ये बारह नाम पूर्वोक्त क्रम से दान के समय में प्रत्येक नामका उच्चारण करके प्रसन्न हों ऐसा कीर्तन करें तथा 'उमा प्रीयताम्' यही क्रम है ।३६-३७। इसी प्रकार से पुष्पों का भी एक क्रम है उसी के अनुसार ग्रहण करके अर्चन करें—मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल, मालती, कुब्जक करवीर, बाण, अम्लानकुंकुम, सिन्धुवार इन पुष्पों से सभी मासों में क्रमपूर्वक पूजन करना कहा गया है । जपा—कुसुम्भ कुसुम मालती शतपत्रिका के पुष्प यथा लाभ ही प्रशस्त होते हैं और करवीर तो सभी समयों में प्रशस्त है इस तरह से एक वर्ष जब तक पूर्ण हो मनुष्य को

को विधि के साथ उपदान करना चाहिए ।३८-४०। चाहे कोई स्त्री हो या कोई कुमारी हो भगवान् शिव का भक्ति भाव से अर्चन करके जब व्रत की समाप्ति हो तो उस व्रत करने वाले को सभी उपस्करों से युक्त शय्या का दान करना चाहिए । उमा और महेश्वर और वृषभ सुवर्ण के निर्मित कराकर गौ के साथ शयन में स्थापित कराकर ब्राह्मण को दान में देनी चाहिए ।४१-४२।

अन्यान्यपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभिः ।
धान्यालंकारगोदानैरन्यैश्च धनसञ्चयैः ।
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद् गतविस्मयः ।४३
एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति पदमनन्त्यमश्नुते ।
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत्समाचरेत् ।४४
यशःकीर्तिमवाप्नोति प्रतिमासं नराधिप ।
सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालंकारभूषणैः ।
न वियुक्तो भवेद्राजन् ! नवार्बुदशतत्रयम् ।४५
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ।
करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः ।
पूज्यमानो वसेत् सम्यक् यावत्कल्पायुतत्रयम् ।४६
नारी वा कुरुते यापि कुमारी वा नरेश्वर ! ।
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ।४७
शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ।
सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत् ।४८
इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं शतधनुषा कृतवीर्यसुनुना च ।
कृतमथ वरुणेन नन्दिना वा किमु जगनाथ ततो यदुद्भवरूपात् ।४९

अन्य-अन्य भी मिथुनों को यथा शक्ति वस्त्र आदि के द्वारा तथा धान्य-अलङ्कार और गो-दानों एवं धन के सञ्चयों के द्वारा अभ्यर्चन करे । पूजन वित्त की शठता से रहित होकर ही विस्मय से हीन रह

कर ही करना चाहिए ।४३। इस विधान से जो भी कोई इस सौभाग्य शयन व्रत को भली भाँति किया करता है वह सभी कामनाओं का फल प्राप्त कर लिया करता है और फिर अत्यन्त उत्तम पद को प्राप्त करता है एक फल के त्याग से इस व्रत का समाचरण करना चाहिए । ।४४। जो यथोक्त चाहता है वह बहुमान्य कीर्ति की प्राप्ति किया करता है । हे राजन् ! इस व्रत को करने वाला पुरुष सौभाग्य-आयु-आरोग्य-रूप, लावण्य, वस्त्र, अलंकार और भूषणों से तीन सौ वर्ष अर्बुद पर्यन्त कभी वियुक्त नहीं हुआ करता है ।४५। जो पुरुष बारह वर्ष तक इस सौभाग्य शयन व्रत को करता रहता है अथवा सात या आठ वर्ष तक किया करता है वह अपर गणों के साथ भगवान् श्रीकण्ठ के भवन में पूज्यमान होकर तीन अयुत कल्प तक अच्छी तरह निवास किया करता है।४६। हे नरेश्वर ! नारी हो या या कुमारी हो जो भी कोई इस व्रत को करती है वह भी देवी के अनुग्रह से लालित होकर इसके फल को पूर्णतया प्राप्त कर लिया करती है ।४७। जो कोई इस व्रत की कथा का श्रवण कर लेता है या इसमें औरों की मति को लगा देता है वह पुरुष भी विद्याधर होकर स्वर्गलोक में चिरकाल पर्यन्त निवास किया करता है ।४८। इस व्रत को पूर्व में यहाँ पर मदन ने किया था फिर शत धनुषों वाले कृतवीर्य के पुत्र ने इसको किया था । इसके अनन्तर वरुण ने, नन्दी ने किया था । हे वनों के नाथ ! इसके जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसके विस्तार में क्या कहाँ तक कहा जावे । तात्पर्य है कि कोई भी अप्राप्य शेष नहीं रहता है-यह इस महाव्रत का माहात्म्य है ।४९-५२।

६७—अक्षय तृतीया और सरस्वती व्रत

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम् ।
यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता ।
अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ॥२
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता ।
तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते ॥३
अक्षया सन्ततिस्तस्यास्तस्यां सुकृतमक्षयम् ।
अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षतान् ॥४
विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान् ।
यथान्नभुक् महाभागः फलमक्षयमश्नुते ॥५
एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः ।
एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत् ॥६
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम् ।
राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्र्याञ्च विन्दति ॥७

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर मैं 'अक्षय' तृतीया के व्रत का भी वर्णन करता हूँ जो सब कामनाओं को प्रदान करने वाला है । जिसमें दिया हुआ जो भी हो हवन-जप आदि सभी अक्षय हो जाया करते हैं ।॥१॥ वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया होती है उसका जिन पुरुषों ने उपवास किया है या किया करते हैं वे सभी सुकृत का अक्षय फल पाने का लाभ किया करते हैं ॥२॥ यह तिथि कृत्तिका से उपेत होती विशेष रूप से सुपूजित होती है । उसमें जो दान किया हुआ—हवन किया हुआ और जाप किया हुआ अक्षय कहा जाता है ॥३॥ उसकी सन्तति भी अक्षय अर्थात् कभी भी क्षीण न होने वाली होती है और उसमें किया हुआ सुकृत भी अक्षय हुआ है । अक्षतों से स्नान किए

हुए मनुष्य भगवान् विष्णु की सेवा में अन्नों को समर्पित करके उन्हीं को सुसंस्कृत मधुआ कराकर पितरों को दान में दिया करते हैं वे परम अभ्युदय महाफल उसका अक्षय फल प्राप्त किया करते हैं।६-७। उक्त विधान के अनुसार मनुष्य एक भी तृतीया का व्रत किया करते हैं वे इन सभी तृतीयाओं का फल प्राप्त कर लिया करते हैं। तृतीया के दिन उपवास के सहित रहकर जो भगवान जनार्दनका अभ्यर्चन करता है वह मनुष्य राजसूय यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त करके अन्तम गतिकी प्राप्ति किया करते हैं।६-८।

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन ! ।
तथैव जनसौभाग्यं मति विद्यासुकौशलम् ।८
अभेदश्चापि दम्पत्यो स्तथा बन्धुजनेन च ।
आयुश्च विपुलं पुंसा तन्मे कथय माधव ! ।९
सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् ! शृणु सारस्वतं व्रतम् ।
यस्य संकीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती ।१०
यो यद्भक्तः पुमान् कुर्यादेतद्व्रतमनुत्तमम् ।
तद्वासरादौसम्पूज्य एर्वविधानेतानुसमाचरेत् ।११
अथवादित्यवारेण ग्रहताराबलेन च ।
पायसं भोजयेद्विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।१२
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः ।
गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।१३
यथा न देवि ! भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः ।
त्वां परित्यज्य संतिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ।१४

मनु ने कहा—हे मधुसूदन ! यह मधुरा भारती किस व्रतसे प्राप्त हुआ करती है ? तथा जनोंका सौभाग्यवति और विद्याओंमें पारमार्थिक कौशल-दम्पतिमें किसी भी प्रकार के भेद-भाव का न होना तथा बन्धु जन के साथ भी भेद की भावना का अभाव आयु की विपुलता ये सब

पृथ्वी को कौन से व्रत-विधान से तुष्ट करता है ? हे माधव ! यही आप कृपा करके हमको बतलाइये ।८-९। भगवान मत्स्य ने कहा—हे राजन् ! आपने यह तो बहुत ही अच्छा इस समय में प्रश्न पूछा है । अच्छा तो अब सारस्वत व्रत का श्रवण कीजिए जिसके करने से तो क्या ही कहना है? केवल कीर्तन मात्र के करने ही से देवी सरस्वती प्रीति में परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करती है ।१०। जो इसका भक्त पुरुष इस परमोत्तम व्रत को करता है वो उसको व्रत के आदि में इन विप्रों का भली भाँति पूजन करके ही इस व्रत का समाचरण करना है । अथवा रविवार को ग्रहों के और ताराओं के बल से इसका आरम्भ करे । ब्राह्मण वाचन करके विप्रों को पायस का भोजन कराना चाहिए ।११। परमोज्ज्वल शुक्ल वस्त्र और इनके साथ में अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण को देकर सुगन्ध माल्य और शुक्ल ही अनुलेपन आदि उपचारों के द्वारा भक्ति की भावना से गायत्री देवी की अभ्यर्चना करना चाहिए ।१२। पूजन की वेला में देवी से यही प्रार्थना—हे देवि ! जिस प्रकार से ब्रह्मलोक में भगवान् पितामह आपका परित्याग करके अन्य भाव को भी वंचित नहीं रहा करते हैं उसी प्रकार से आप वरदान देने वाली हो जाइए ।१४।

वेदाः शास्त्राणिसर्वाणिगीतनृत्यादिकञ्चयत् ।
न विहीनंत्वयादेवि ! तथामेसन्तुसिद्धयः ।१५
लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिर्गौरीतुष्टाप्रभामतिः ।
एताभिः पाहि अष्टाभि स्तनुभिर्मांसरस्वती ।१६
एवं सम्पूज्यगायत्रीं वीणाक्षमालिकाधारिणीम् ।
शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्यासकमण्डलुपुस्तकाम् ।
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातस्तु धर्मवित् ।१७

वेद और सम्पूर्ण शास्त्र तथा गीत और नृत्य आदि सभी हे देवि! आप से हीन न होवें उसी प्रकार की मेरी सिद्धियाँ हो जानी चाहिए

।६४। हे सरस्वती देवि ! आप लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टा प्रभा, इन आठ तनुओं से संयुत होकर मेरी रक्षा करिए ।६५। इस प्रकार से भय का निवारण करने वाली सरस्वती देवी का भली-भाँति अर्चन करके जो पुष्प धूप और अक्षतों से संयुत है और भक्ति के द्वारा कमण्डलु एवं पुस्तक को धारण करने वाली है फिर मौन व्रत पूर्वक धर्म के ज्ञाता पुरुष को सायंकाल में और प्रातःकाल में स्नान करना चाहिए ।६७।

३८—चन्द्रादित्योपराग में स्नान विधि कथन

चन्द्रादित्योपरागेषु यत्स्नानमभिधीयते ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ।१
यस्य राशिसमासाद्य भवेद्ग्रहणसम्भवः ।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः ।२
चन्द्रोपरागंसम्प्राप्य कृत्वाब्राह्मणवाचनम् ।
संपूज्यचतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।३
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम् ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति ।४
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत् ।५
पञ्चगव्यञ्च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च ।
रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम् ।६

मनु ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण की वेला में जो स्नान कहा जाता है उसको द्रव्य-मन्त्र और विधान के जानने वाले आपसे मैं पूर्ण रूप से श्रवण करना चाहता हूँ ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस राशि को प्राप्त करके ग्रहण का सम्प्लव होता है उसका स्नान मन्त्र और औषधि के विधान से मैं आपको बतलाता हूँ।१-२। जब चन्द्रमा का उपराग (ग्रहण) सम्प्राप्त हो तो उस समय में ब्राह्मण वाचन करे और चार विप्रों का शुक्ल माल्यों तथा शुक्ल अनुलेपनों के द्वारा भली भाँति पूजन करे। जब उपराग का आरम्भ हो उससे पूर्व ही औषधि आदि का समासादन करे। चार कुम्भों की स्थापना करे जो व्रणों से रहित हों। वे कुम्भ सागर स्थानीय होते हैं।३-४। गजशाला, अश्वशाला, वल्मीक (साँप की बाँबी) संगम, हृद, गोकुल (गायों के बैठने तथा बंधने का स्थल) राजद्वार का प्रवेश-इन स्थलों से मृत्तिका का आनयन करके उसका प्रयोग करना चाहिए।५। कुम्भों में पञ्चगव्य (गौ का दूध-दही-घृत मूत्र और गोमय-इन सबका सम्मिश्रण) शुद्ध मुक्ताफल, रोचना, पद्म, शङ्ख तथा पाँचों प्रकार के रत्न, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थों का जल, सरसों, राजदन्त, कुमुद उशीर (खस) और गुग्गल इन समस्त पदार्थों को एकत्रित कर लेना चाहिए।६।

स्फाटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम् ।
राजदन्तं सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम् ।
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत् सुरान् ।७
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।८
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ।
सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ।९
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः ।
चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ।१०
यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः ।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां मम पीडां व्यपोहतु ।११

नागपाशधरो देवः साक्षान्मकरवाहनः ।
स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१२
प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्णमृगप्रियः ।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां पीडामत्र व्यपोहतु ॥१३
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।
चन्द्रोपरागकलुषं धनदो मे व्यपोहतु ॥१४

उपर्युक्त पदार्थों को रखकर उन कुम्भों में निक्षेप करके फिर उनमें मूर्त्तों का आवाहन करना चाहिए ।७। आवाहन के समय में प्रार्थना करें—सब समुद्र, समस्त सरिताएँ, तीर्थ, जलद, नद यहाँ पर आने की कृपा करें जो कि यजमान के दुरितों के क्षय करने में समर्थ हैं ।८। जो गज वज्र के धारण करने वाले देव आदित्यों के प्रभु माने गये हैं वही सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव ग्रहों की पीड़ा का व्यपोहन करें ।९। ज्वलितमित द्युति वाले सप्तार्चि समस्त देवों का मुख है । अग्नि, चन्द्र के उपराग से होने वाली पीड़ा का व्यपोहन करें जो भूतों के विहित कर्मों का (बुरे—भले जैसे भी हों) साक्षी है वह उग्र महिष के वाहन वाला यमराज चन्द्र के उपराग से समुत्पन्न मेरी पीड़ा को दूर करें ।१०-११। नागों के पाश को धारण करने वाले साक्षात् मकर के वाहन वाले देव जल के अधिपति चन्द्र ग्रह की पीड़ा का व्यपोहन करें ।१२। कृष्ण मृग पर प्यार करने वाले वायुदेव जो प्राणों के रूप से समस्त लोकों का प्रतिपालन किया करते हैं यहाँ पर इस चन्द्रमा के उपराग से समुत्थित पीड़ा का निवारण कर देवें । जो यह निधियों का स्वामी खड्ग, शूल और गदा के धारण करने वाले देव धनद हैं वे मेरे चन्द्रोपराग के कलुष को दूर करें ।१३-१४।

योऽसौ बिन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
चन्द्रोपरागजां पीडां विनाशयतु शङ्करः ॥१५
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्ण्वर्कयुक्तानि तानि पापं दहन्तु वै ॥१६

एवमामन्त्रितैः कुम्भैरभिषिक्तो गुणान्वितैः ।
ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ।१७
एतानेव ततो मन्त्रान् विलिखेत्कनकान्वितान् ।
वस्त्रपट्टेऽथ वा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान् ।१८
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ।
ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुगामिनीम् ।१९
प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम् ।
चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतगोदानमङ्गलः ।
कृतस्नानाय तं पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।२०
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् ।
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः ।२१
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ।२२

जो यह बिन्दु के धारण करने वाले वृष के वाहन वाले त्रिनयन देव शङ्कर हैं वे मेरी चन्द्र के ग्रहण से उत्पन्न होने वाली पीड़ा का विनाश कर देवें।१४। इन त्रिलोकी में जो भी स्थावर और जङ्गम भूत हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य से संयुक्त हैं वे सब पापों का दाह करें। ।१५। इस तरह से आमन्त्रित करके फिर गुणों से समन्वित उन कुम्भों से अभिषिक्त होकर ऋक्-यजु और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा एवं शुक्ल माल्य और अनुलेपनों से इष्ट देवों का अर्चन करे तथा वस्त्र और गोदानों के द्वारा ब्राह्मणों का यजन करना चाहिए ।१७। फिर इन्हीं मन्त्रों को कनक से लिखे जो पाँच रत्नों से भी समन्वित हों। उन मन्त्रों को किसी वस्त्र पट्ट पर अथवा पद्म पर लिखना चाहिए ।१८। उत्तम द्विजों को यजमान के सिर पर इन्हें रखना चाहिए। फिर उस उपराग की अनुगामिनी वेला का अतिवाहन करे ।१९। पूर्व दिशा की

और मुख वाला होकर पूजन करे तथा अपने इष्ट देवों को नमस्कार करे। जब यह चन्द्रमा का ग्रहण निवृत्त हो जावे तो गौ दान और मङ्गल कर्म वाले किए हुए की स्नान ब्राह्मण के लिए उस पट्ट को को निवेदित कर देना चाहिए ।२०। इस विधान के साथ जो कद स्नान का समाचरण किया करता है उसको कभी ग्रहों की पीड़ा नहीं हुआ करती है और न कभी बन्धुजनों का ही क्षय होता है। वह मनुष्य पुनरावृत्ति दुर्लभ परम सिद्धि की प्राप्ति किया करता है। सूर्य ग्रह में सूर्य देव के नामों का सदा मन्त्रों में कीर्तित करना चाहिए। ।२१-२२।

६८—सप्तमीस्नपन व्रत कथन

किमुद्वेगाद्भुते कल्मषकर्मा: केन हन्यते ।
मृतवत्साभिषेकादि कार्येषु च किमिष्यते ॥१
पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन ।
रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च ॥२
तद्विधानाय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम् ।
सप्तमीस्नपनं नाम व्रतपीडाविनाशनम् ॥३
बालानां मरणं यत्र क्षीरपानां प्रदृश्यते ।
तद्वद्वृद्धातुराणाञ्च यौवने चापि वर्तताम् ॥४
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम् ।
एतदेवाद्भुतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम् ॥५
भविष्यति च वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन ! ।
वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तमः ॥६
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिमं यदा ।

कृतं नामयुगं तत्र हैहयान्वयवर्धनः।
भविता नृपतिर्वीरः कृतवीर्यः प्रतापवान् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—अङ्गों के अद्भुत लक्षण के प्राप्त होने पर क्या कृत्य करना चाहिए? किस कार्य के करने से यह अलक्ष्मी का हनन किया जाता है तथा मूलावस्था आदि कार्यों में क्या कृत्य हुआ करता है? श्री भगवान् ने कहा—हे तपोधन! इस मनुष्य योनि में पूर्व जन्मों में किये हुए पाप ही फल दिया करते हैं।१। इस जीवन में रोगों की उत्पत्ति—महा दुर्गति के संसर्ग से और इष्ट के नाश होने से अर्थात् जो भी कुछ अभीष्ट हो उसका विनाश के होने से मनुष्य को उन पूर्व कृत पापों का फल मिला करता है।१-२। इन सबके विनाश करने के लिए सदा कल्याणों के करने वाले तथा सभी की पीड़ाओं के विनाश कर देने वाले [illegible] नाम वाले व्रत को बतलाते हैं।३। जहाँ पर स्वप्नों में छोटे-२ बच्चों का मरण दिखलाई दिया करता है और उसी भाँति जो अभी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं हुए हैं ऐसे जीवन में रहने वालों का मरण होता है वहाँ पर शान्ति के सम्पादन करने के लिये मूलावस्थाभिषेचन बतलाते हैं! जहाँ अद्भुत उद्वेग और चित्त के भ्रम का विनाश करने वाला होता है।४-५। हे तपोधन! जिस समय में वाराह कल्प होगा। वहीं पर जब उत्तम वैवस्वत मनु होगा। वहीं पर जब सत्ययुग कृत युग नाम वाला युग होगा और उस समय में हैहय के वंश की वृद्धि करने वाला महान् प्रताप वाला और कृतवीर्य नामक एक नृपति होगा।६-७।

सप्तद्वीपसमुद्रान्तां पालयिष्यति भूतलम्।
यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्ततिं नारद! ॥८
जातमात्रश्च तस्यापि नष्टं पुत्रशतं तथा।
च्यवनस्य तु शापेन विनाशमुपयास्यति ॥९
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्य वै सुत।

कुरङ्गनयनः श्रीमान् सम्पूर्णो नृपलक्षणैः ।१०
कृतवीर्य्योऽपि धर्मात्मा सहस्रांशुं दिवाकरम् ।
उपवासैर्व्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद ! ।
पुत्रस्य जीवनायालमेतत्स्नानमवाप्स्यति ।११
कृतवीर्येण वै पृष्टः इदं वक्ष्यति भास्करः ।
अशेषदुष्टशमनं सदा कल्मषनाशनम् ।१२
अलं क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप ! ।
भविष्यति चिरञ्जीवी किन्तु कल्मषनाशनम् ।१३
सप्तमी स्नपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै ।
जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि नारद ! ।
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते ।१४

वह राजा सातों द्वीपों के सहित समस्त भूतल का परिपालन करेगा । हे नारद ! सत्तर सहस्र वर्ष पर्यन्त वह शासन करेगा ।८। उससे भी उत्पन्न मात्र हुए एक सौ पुत्र सबके सब बचपन के काल में विनाश को प्राप्त हो जायेंगे ।९। जिस समय में उसका पुत्र सहस्रबाहु होगा जो मृगके समान सुन्दर नेत्रों वाला—श्री से सम्पन्न और सम्पूर्ण नृप के लक्षणों से युक्त होगा।१०। उस समय में राजा कृतवीर्य सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करके जो कि उपवास-व्रत और हे नारद ! दिव्य वेदों-सूक्तों के द्वारा की थी पुत्र के जीवन के लिये यह पर्याप्त स्नान प्राप्त करेगा ।११। राजा कृतवीर्य के द्वारा पूछे गये भास्कर प्रभु इस व्रत को उसे बतलायेंगे । यह व्रत सम्पूर्ण कल्मषों का नाश करने वाला और अशेष दुष्टों का भी शमन करने वाला है ।१२। भगवान् भुवन भास्कर ने कहा था— हे नराधिप! अब आप यह महान् क्लेश मत करो आपका पुत्र चिरजीवी होगा किन्तु कल्मषों के नाश करने वाला सप्तमी स्नपन करना होगा जिसको कि मैं सब लोगों के हित सम्पादन के लिये अभी बतला दूँगा । हे नारद ! मृतवत्सा स्त्री के

समुत्पन्न होने वाले के सातवें मास में अथवा शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में यह व्रत प्रशस्त होगा ।१३-१४।

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत्तां तिथिं बुधः ।
तद्वद्वृद्धेतराणाञ्च कृत्यं स्नानादिकेषु च ॥१५
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत्तथा ।
तण्डुलै रक्तशालीयैश्चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।
निर्वपेत् सूर्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः ॥१६
कीर्तयेत् सूर्यदैवत्यं सप्तार्चिषं घृताहुतीः ।
जुहुयाद्रुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय नारद ! ॥१७
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः ।
यवकृष्णतिलैर्होमः कर्त्तव्योऽष्टशतं पुनः ॥१८
व्याहृतीभिस्तथाज्येन तथैवाष्टशतं पुनः ।
व्याहृतीभिस्तथाज्येन तथैवाष्टशतं पुनः ।
कृत्वा स्नानन्तु कर्त्तव्यं मङ्गलं येन शोभिता ॥१९
विप्रेण वेदविदुषा विधिवत्कर्मपालिना ।
स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान्कोणेषु शोभनान् ॥२०

ग्रहों के तथा ताराओं के बल को प्राप्त करके अर्थात् जब सब ग्रह और तारा अपने अनुकूल शुभ हों ऐसे समय में ब्राह्मण वाचन करावे । बुध पुरुष को चाहिए कि बालकके जन्म का नक्षत्र और उस तिथि को वर्जित कर देवे । इसी भाँति जो वृद्धों से इतर अर्थात् युवा हैं उनका और इतरों का भी कृत्य होता है ।१५। गोमय से अनुलिप्त भूमि में एकाग्नि के समान उस समय में रक्त शालीय तण्डुलों से गौ के क्षीर से संयुत चरु का सूर्य रुद्र के उन मन्त्रों से विधान पूर्वक निर्वपन करना चाहिए ।१६। सूर्यदैवत्य का भी कीर्तन करे तथा सप्तार्चि को घृत की आहुतियों के द्वारा हवन करना चाहिए । हे नारद! इसी प्रकार से रुद्र के लिए रुद्रसूक्त से हवन करे ।१७। इसी प्रकार से अर्क (आक) और पलाश द्वाक की समिधाओं का हवन करना चाहिये । फिर यव और

करके तिलों से अष्टोत्तर शत हवन करना चाहिये ?। तथा आज्य(घृत) के द्वारा व्याहृतियों से एकसौ आठ बार पुनः हवन करके मङ्गल स्नान करना चाहिये। वेदों के विद्वान् श्रीमान् दर्भ हाथ में रखने वाले विप्रके द्वारा चार व्रण रहित कुम्भों को कोणों में स्थापित कराकर विधिको सुसम्पन्न करे।१६-२०।

पञ्चमं मण्डलस्य पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम् ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्षीनभिमन्त्रितम् ।२१
क्षीरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम् ।
सर्वान्सर्वौषधीयुक्तान् पञ्चगव्यसमन्वितान् ।
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैः शोभितान् परिवेष्टयेत् ।२२
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
संगृह्य मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् ।२३
चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ।
गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत् ।२४
नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाभिः स्त्रीभिरेव च ।
पूजिताभिर्यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः ।
सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ।२५
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्रा च भामिनी ।
आदित्यश्चन्द्रमा सार्द्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः ।२६
सशक्राः लोकपाला वै ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
एते चान्ये च देवौघाः सदा पान्तु कुमारकम् ।२७
मित्रोऽशनिर्वा हुतभुङ् गे न बालग्रहाः क्वचित् ।
पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातुर्जनकस्य वै ।२८

फिर मण्डल में पाँचवें कुम्भ को दधि अक्षत से विभूषित करके बिना व्रण वाले कुम्भ सात ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके स्थापित करना चाहिये।२१। और ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके तीर्थों के जल से परिपूर्ण करे तथा रत्नोंसे समन्वित करे। सभी कुम्भों को सर्वौषधि

से संयुत एवं वस्त्रयुग्म से युक्त करके लिए पञ्चरत्न फलों और पुष्पोंसे समन्वित करके वस्त्रों से परिवेष्टित कर देना चाहिए ।२२। पञ्च—गव्य—रथ्या—वल्मीक—संगम और ह्रद से तथा गोकुल से मृत्तिका को लाकर जो कि परम संयुत हो उन समस्त कुम्भों में उसका विनिक्षेप कर देवे ।२३। उन चारों रत्न मण्डप में रहने वाले कुम्भों में से उस मध्य में रहने वाले कुम्भ को ग्रहण करके ब्राह्मण वहाँ पर और पूर्व सकलपी मन्त्रों का उच्चारण करे।२४। काल संख्या वाली सम्यक् अङ्गों वाली पूजित नारियों के द्वारा जो स्त्रियों के भी सहित हो यथाशक्ति से माल्य—वस्त्र और विभूषणों से उनका पूजन किया हुआ है, वे फिर उस सूतवत्या नारी का अभिषेचन करें ।२५। इस प्रकार से ये कहते हुए अभिषेचन करें—यह बालक दीर्घ आयु वाला होवे और यह भामिनी जीवित पुत्रों वाली होवे । ग्रह नक्षत्रों के मण्डलों के साथ आदित्य और चन्द्रदेव-इन्द्र के सहित सब लोकपाल तथा ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर ये सब देवगण तथा इनके अतिरिक्त दूसरे भी देव समुदाय इस कुमार की सदा रक्षा करें ।२६-२७। मित्र अथवा सखा दुष्टग्रह जो भी कहीं पर व्यवस्थित हैं जो बालकों पीड़ा किया करते हैं वे बालक उसकी माता और उसके जनक किसी को भी न सतावें ।२८।

ततः शुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता ।
सम्यक् पूजयेद्भक्त्या स्त्रीणामथ गुरुं पुनः ।२९
भुक्तवा च गुरुणा चैवमुच्चार्यो मन्त्रसन्ततिः ।
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं बालकुर्वन्सुखी ।३०
यत् किञ्चिदस्य दुरितं तत् क्षिप्तं वडवानले ।
ब्रह्माद्योऽस्तु स्कन्दो विष्णुः शक्रो हुताशनः ।३१
रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा ।
एवमादीनि वाक्यानि वदन्त पूजयेद्गुरुम् ।३२
शक्तितः कपिलां दद्यात् प्रणम्य च विसर्जयेत् ।

चरुकञ्च पुष्पसहिता प्रणम्य रविशंकरौ ।३३
हुतशेषं तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति ।
इदमेवाद्भुतोद्वेगदुःस्वप्नेषु प्रशस्यते ।३४
कर्तुर्जन्मदिनर्क्षं च त्यक्त्वा संपूजयेत् सदा ।
मासर्क्षं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ।३५

इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला कुमार और पति के सम्मानित माँस से विप्रों के गणक का पूजन करे पुनः उसके बाद गुरु का वन्दन करे ।२९। इसके उपरान्त ताम्रपात्र के ऊपर स्थित सर्प-राज की सुवर्ण की प्रतिमा को करे और फिर उस गुरुजी के लिये निवेदित कर देना चाहिये ।३०। वित्त की शाठ्य से रहित होकर अर्थात् धन होते हुए कृपणता न करके उसी भाँति ब्राह्मणों का वस्त्र-सुवर्ण, रत्नों का समूह, भक्ष्य, फूल और पायस से पूजन करना चाहिए। ।३१। भोजन करके गुरु को यह मन्त्रों की सन्तति का उच्चारण करना चाहिए—यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक सुखी रहे ।३२। जो कुछ भी इसका दुरित (पाप) हो उसको वड़वानल में क्षिप्त कर दिया जावे । ब्रह्मा, रुद्र, वसु, स्कन्द, विष्णु, शक्र, हुताशन ये सब दुष्टों से रक्षा करें और सर्वदा वरदान देने वाले होवें—इस प्रकार के वाक्यों को बोलने वाले गुरु का अभ्यर्चन करे ।३३। अपनी शक्ति के अनुसार एक कपिला गौ का दान करे फिर प्रणाम करके गुरु का विसर्जन कर देना चाहिए । पुष्प से सहित रवि और भगवान् शंकर को प्रणाम करके उस चरु को जो हुत से शेष बचकर रह गया है उसको—"आदित्याय नमोऽस्तु'—इस मन्त्र के साथ उसी समय में प्राशन कर लेवे । यह ही अद्भुतोद्वेग दुःस्वप्नों में प्रशस्त माना जाता है ।३४। कर्त्ता का जन्म दिन और नक्षत्र का त्याग करके सदा ही पूजन करे । मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में ऐसा करता हुआ मानव कभी दुःखित नहीं होता है ।३५।

सवनेन विधानेन दीर्घायुरभवेन्नरः ।
सम्वत्सराणां अयुतं बभाज पृथिवीमिमाम् ।२६
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः ।
कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ ! तत्रैवान्तरधीयत ।२७
एतत् सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्नानमुत्तमम् ।
सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम् ।२८
आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् ।
ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ।२९
एतन्महापातकनाशनं स्यात्परं हितं बालविवर्द्धनञ्च ।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ।३०

इसी विधान से मनुष्य दीर्घायु हुआ है एक अयुत सम्वत्सरों तक इस पृथ्वी का शासन किया था ।२६। भगवान् रविदेव ऐसे परम पुण्यमय—महान् पवित्र और आयु की वृद्धि करने वाले सप्तमी स्नपन नामक व्रत को कहकर हे द्विज श्रेष्ठ ! वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ।२७। यह सब उत्तम सप्तमी स्नपन वर्णित कर दिया गया है जो सब दुष्टों के उपशमन करने वाला तथा बालों का परम हितप्रद है ।२८। आरोग्य भास्कर देव से चाहे और यदि धन की इच्छा करे तो हुताशन देव से करे । ईश्वर से ज्ञान की इच्छा करनी चाहिए तथा जनार्दन प्रभु से मोक्ष की इच्छा करे ।२९। यह सप्तमी स्नपन महान् पातकों का नाश करने वाला है और परम हितकारक तथा बालों का विशेष वर्धन करने वाला है । जो कोई अनन्य चित्त वाला होकर इसका श्रवण करता है उसको भी सिद्धि होती है—ऐसा मुनिगण कहा करते हैं ।३०।

तो लोक पावन सम्प्रति से मनको प्रीति को करने वाला यह वचन कहा था ।७। ईश्वर ने कहा था—जिस समय में इसके अनन्तर इस वैवस्वत मन्वन्तर काल से बारहवें कल्प होगा । उसके पहले शुभ मन्वन्तर में सुन्दर वैवस्वत नाम वाले के मनुत्सव होने पर सत्यवान् धर्म द्वापर नामक युग होगा जिसकी अट्ठाईसवीं कही है ।८-९। उसके अन्त में यह महादेव वासुदेव जनार्दन भार को अवतारण करने के लिये विष्णु के तीन प्रकार के स्वरूप होंगे ।७।

द्वैपायन ऋषिस्तद्वद्रौहिणेयोऽथ केशवः ।
कंसादिविध्वंसनकः केशवः क्लेशनाशनः ॥८
पुरी द्वारवती नाम साम्प्रतं या कुशस्थली ।
दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः ।
त्वष्टा मया कृता ब्रह्मन् करिष्यति जगत्पतेः ॥९
तस्यां कदाचिदासीनः सभायामभितः स्थितः ।
पार्थिवैर्दिव्यभिर्व्यैश्च शुश्रूषितगुरुर्द्विजैः ॥१०
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरर्चितः कंसमर्दनः ।
प्रवृत्तासु पुराणासु अन्यास्वन्नविधासु च ॥११
कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् ।
त्वया पृष्टस्य धर्मस्य रहस्यस्यास्य केशवः ॥१२
कथिता च तदा ब्रह्मन् ! कलौ पैवशुभोदरः ।
प्रवर्तकोऽस्य धर्मस्य पाण्डुपुत्रो महाबलः ॥१३
तस्य तीर्थगो कुण्डनामनगरे ह्यवधासुनः ।
तपः कृत्वा स अन्तर्हितस्तेन नासीत्कृतान्तरः ॥१४

इसी भाँति से द्वैपायन महर्षि—रौहिणेय केशव और कंस आदि दुष्टों के दर्प का मन्थन कर देने वाले क्लेश के नाश करने वाले केशव होंगे ।८। इस समय में द्वारवती नाम वाली पुरी जो कुशस्थली है उसको जो दिव्य अनुभावों से संयुक्त है मेरी ही आज्ञा से त्वष्टा दिव्य

उन्हीं भगवान् माधव को अधिवास करने के लिये जो इस सम्पूर्ण जगत् का पति है उसी प्रकार से निर्मित करेगा ।९। एक द्वारावती पुरी में किसी समय में सभा में विराजमान अमित द्युति वाले भ्राताओं से-वृष्णिगणों से-वृष्णि वंश वाले पुरुषों से-यदु गणों से-देवों से और गन्धर्वों से चारों ओर से देवकीनन्दन प्रभु घिरे हुए थे । उसी समय में धर्म की बढ़ाने वाली पुराणों की कथायें प्रवृत्त हो रही थीं ।१०-११। जब कथा का अन्त हो गया तो भीमसेन ने प्रतापवान् प्रभु से पूछा था । आपके द्वारा पूछे गये इस धर्म के रहस्य का भेदज्ञ हे ब्रह्मन् ! उस समय में वृकोदर ही कर्त्ता होगा । इस धर्म का प्रवर्त्तक महान् बलवान् पाण्डु पुत्र ही है । जिसके उदर में परम तीक्ष्ण वृक नाम वाला हुताशन है । मेरे ही द्वारा यह धर्माख्या किया गया है इसी से यह वृकोदर नाम से कहा जाया करता है ।१२-१४।

पतिमान्दानशीलश्च नागायुतबलो महान् ।
भविष्यस्य परज्ञः श्रीमान् कन्दर्प इव रूपवान् ।१५
धार्मिकश्चाप्यशक्तश्च तीव्राग्नित्वादुपोषणे ।
इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं मतः ।१६
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः ।
अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ।१७
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम् ।
पवित्राणां पवित्रञ्च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
भविष्यञ्च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ।१८
यद्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादश्योश्च भारत ! ।
अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ।१९
ततः पुण्यातिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
उपोष्य विधिनानेन गच्छ विष्णोः परं पदम् ।२०
माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा ।

घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत् ।२१

मतिमान्—दान देनेके शील स्वभाव वाला और एक मधुर भार्या के वश में सुसम्पन्न महान्—धीमान और स्वर्ग के तुल्य रूप लावण्य से परिपूर्ण करने वाला होगा ।१५। परम धार्मिक था जो भी लोलुपता के होने के कारण से उपवास करने में असमर्थ था । उसके लिये ही यह व्रत कहा गया है जो कि अशेष अन्य व्रतों से बहुत अधिक है ।१६। इस जगत् के गुरु विश्व की व्याख्या भगवान् वासुदेव करेंगे । यह अशेष यज्ञों के फलों का प्रदान करने वाला और समस्त प्रकार के अघों का विनाश कर देने वाला है ।१७। सब दुष्टों के शमन करने वाला और शमवल गुरुकाम के द्वारा समर्पित है । सभी पर्वों में यह महा पवित्र है और सब मङ्गलों में महान मङ्गल स्वरूप है भविष्यों का भविष्य और पुराणों में परम पुरातन है ।१८। भगवान् वासुदेव ने कहा था—हे भारत ! यदि अष्टमी, चतुर्दशी और द्वादशी इनमें तथा अन्य तिथियों और नक्षत्रों में भी किसी में भी आप उपवास करने में समर्थ नहीं हैं। है ।१९। तो परम पुण्यमयी और सब पापों का विनाश करने वाली इस तिथि को इस विधान से उपवास करो जिससे विष्णु के परम पद को चले जाओ ।२०। माघ मास की दशमी तिथि जिस समय में शुक्लपक्ष में हो उस समय में घृत से अभ्यञ्जन करके तिलों से स्नान का समाचरण करना चाहिए ।२१।

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणेति च ।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः ।२२
वैकुण्ठायेति वैकुण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे ।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय च ।
सर्वं नारायणस्यैव सम्पूज्याः बाहवः क्रमात् ।२३
दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै ।
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुना भूतधारिणे ।२४

नमो नीलाय जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः ।
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ।२५
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे ।
विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत् ।२६
एवं संपूज्य गोविन्दं उमापतिविनायकौ ।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ।२७
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः ।
सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः ।२८

इसी भाँति 'नमो नारायण'—इस मन्त्र के द्वारा भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करना चाहिए । श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है—इससे कृष्ण के चरणों की अच्छी तरह पूजन करके 'सर्वात्मने नमः'—इससे शिर का यजन करें । 'वैकुण्ठाय नमः'—इससे वैकुण्ठ का तथा 'श्री वत्स धारिणे नमः'—इससे उरःस्थल का पूजन करे । 'शंखिने नमः—चक्रिणे नमः—गदिने नमः—वरदाय नमः'—इस प्रकार मन्त्रों के द्वारा नारायण की सब बाहुओं का भली भाँति क्रम से पूजन करना चाहिए ।२२-२३। 'दामोदराय नमः'—इससे उदर और 'पञ्चशराय नमः' इससे मेढ़ का पूजन करे । 'सौभाग्यनाथाय नमः'—इससे दोनों ऊरुओं का और 'भूतधारिणे नमः'—इस मन्त्र का उच्चारण कर दोनों जानुओं का अभ्यर्चन विधि सहित करना चाहिए।२४। 'नीलाभ नमः'—इससे दोनों जंघाओं का तथा 'विश्व सृजे नमः' अर्थात् इस सम्पूर्ण विशाल विश्व का सृजन करने वाले की सेवा में नमस्कार समर्पित है—इससे दोनों पादों की अर्चना करें । देवी को प्रणाम है—शान्ति के लिए नमस्कार है । लक्ष्मी को प्रणाम है—श्री के लिए नमस्कार है । पुष्टि—तुष्टि—वृष्टि और हृष्टि के लिए बारम्बार नमस्कार है । दूसरी जिसे देवी-शान्ति-लक्ष्मी-श्री-पुष्टि-तुष्टि और हृष्टि—इन आठों देवियों

का पूजन उक्त मन्त्रों का उच्चारण करके ही करना चाहिए । 'विहङ्ग-नाथाय नमः'—वायुवेगाय नमः—'पक्षिणे नमः'—'विष प्रमाथिने नमः' इन मन्त्रों के द्वारा नित्य ही गरुड़ का पूजन करना चाहिये ।२४-२६। इस तरह से श्री गोविन्द प्रभु का पूजन करके उमापति और विनायक का पूजन करे । गन्ध-माल्य-धूप-भक्ष्य और अनेक प्रकार के द्रव्यों—गव्य पय से यजन करना चाहिये । फिर जल कलश को मौन रहकर फूल के साथ लाकर पुष्प पुरुष को भी करके प्रणाम करना चाहिए ।२७-२८।

न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः ।
गृहीत्वा धावयेद्दन्तानाचान्तः प्राङ्मुखः ॥२९
ब्रूयात् सायन्तनीं कृत्वा सन्ध्यामस्तंगते रवौ ।
नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ॥३०
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम् ।
रात्रिं च सकलां स्थित्वा स्नानं च पयसा तथा ॥३१
सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः ।
सहैव पुण्डरीकाक्ष ! द्वादश्यां क्षीरभोजनम् ।
करिष्यामि यतात्माहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे ॥३२
एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमाविति हासकथां पुनः ।
श्रुत्वा प्रभाते सञ्जाते नदीं गत्वा विशाम्पते ! ।
स्नानं कृत्वा मृदा तद्वत् पाखण्डानभिवर्जयेत् ॥३३
उपास्य सन्ध्यां विधिवत् कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
प्रणम्य च हृषीकेशं सर्वलोकैकमीश्वरम् ॥३४
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद् बुधः ।
दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद्विशाम्पते ! ॥३५

न्यग्रोध (बड़) का दन्त काष्ठ (दातुन) अथवा खादिर का दातुन बुध को ग्रहण करके फिर उससे धावन करे अर्थात् दातुन करे । फिर

अन्तरात्मा होकर अर्थात् आचमन करके पूर्व में उत्तर की ओर मुख वाला हो जावे। रवि के अस्ताचलगामी हो जाने पर सायङ्काल की संकल्पना करे और हे नारायण ! आपके लिये मेरा नमस्कार है—मैं तो अब आपकी शरणागति में समागत हो गया हूँ। एकादशी में निराहार रहकर भगवान केशव का समभ्यर्चन करके तथा सम्पूर्ण रात्रि में स्थित होकर और पय से स्नान और घृत से अनल में हवन करके हे पुण्डरीकाक्ष ! श्रेष्ठ ब्राह्मणों के ही साथ द्वादशी में और का भोजन करूँगा। मैं यतात्मा होकर ही इसको करूँगा और यह मेरे लिये निर्विघ्नता के साथ हो जावे—यह इस प्रकार से कहकर रात्रि में भूमिपर सो जावे। हे विशाम्पते ! इतिहास की कथा का श्रवण करे। फिर प्रभात के हो जाने पर नदी पर जाकर स्नान करके मृत्तिका से लक्षण पाखण्डों का परिवर्जन करे देवे।२२-२३। विधि पूर्वक सन्ध्या की उपासना करके पितृगण का तर्पण करे और फिर लोकों के स्वामी भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करे। गृह के आगे ही शुभ पुष्प की भाँति की भावना से मण्डप की रचना करानी चाहिए। हे विशाम्पते ! दश हाथ अथवा आठ हाथ का करना चाहिए।२४-२५।

चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन ! ।
चतुर्हस्तप्रमाणं च विन्यसेत्तत्र तोरणम् ।२६
प्रणम्य कलशं तत्र माषपात्रेण संयुतम् ।
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः ।
तस्य धारां च शिरसा धारयेत् सकलां निशाम् ।२७
तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत् ।
अरत्निमात्रं कुण्डं च कुर्यात्तत्र त्रिमेखलम् ।२८
योनिवक्त्रं च तत् कृत्वा ब्राह्मणैः पयसर्पिषी ।
तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निमानसाः ।२९

हुत्वा च वैष्णवं सम्यक्चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।
निष्पावार्द्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत् ॥४०
जलकुम्भान् महावीर्य ! स्थापयित्वा त्रयोदश ।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलङ्कृतान् ॥४१
युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पंचरत्नसमन्वितान् ।
चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य उदङ्मुखैः ॥४२
रुद्रजाप्यश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः ।
वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ॥४३
अरिष्टवर्गसहितानभितः परिपाठयेत् ॥४४

हे अरिनिसूदन ! चार हाथ प्रमाण वाली तरह शुभ वाली पवित्र शुभ वेदी बनावे और चार हाथ प्रमाण वाला तोरण का विन्यास करना चाहिये । वहाँ पर कलश की स्थापना करके जो माष मात्र से संयुत है और जल से सम्पूर्ण है । कलश छिद्र पर स्थित होकर छिद्र के द्वारा पूरी रात्रि में उसकी धारा को शिर से धारण करे ।३६-३७। उसी तरह से भगवान् विष्णु के शिर पर क्षीर की धारा का पातन करे । वहीं पर एक अरत्नि मात्रप्रमाण वाला तथा तीन मेखलाओं से समन्वित एक कुण्ड की रचना करनी चाहिए । योनिवक्त्र वाला उसे करके फिर ब्राह्मणों के द्वारा यव-धृत और तिलों का उस समय में एकाग्नि की तरह विष्णु दैवत्य मन्त्रों से हवन करे और सम्यक् वैष्णव चरु बनावे जो गौ के क्षीर से संयुत होवे । निष्पावार्द्ध प्रमाण वाली घृत की धारा का पातन करावे ।३८-४०। हे महावीर्य ! वहाँ पर तेरह जल के कुम्भों का स्थापित करा कर नाना भाँति के भक्ष्यों से उन्हें संयुत करे और सफेद वस्त्रों से अलंकृत करे । उदुम्बर के निर्मित पात्रों से युक्त तथा पाँचों रत्नों से समन्वित करे, वहाँ पर चार बह्वृचों के द्वारा जिनका मुख उत्तर की ओर हो होम करना चाहिए । चारों के द्वारा रुद्र का जाप कराये जो कि यजुर्वेद के परायण हों । वैष्णव सामों का चार

सामवेदी करे । अभिषेक सर्व संहित सत्र और परिपाठ करना चाहिए ।४१-८८।

७४—कल्याण सप्तमी व्रत कथन

भगवन् ! भव ! संसारसागरोत्तारकारक ! ।
किञ्चिद्व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ॥१
सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ।
विशोकसप्तमीं तद्वत् फलाढ्यां पापनाशिनीम् ।२
शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कमलसप्तमीम् ।
मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम् ।३
सर्वानन्तफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः ।
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।४
यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।
सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते ।५
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् ।
ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत् ।६
प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद् वृत्तां च कर्णिकाम् ।
पुष्पाक्षताभिर्देवेशं विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान ! हे भव ! आप तो इस संसार रूपी महार्णव से उद्धारण करने वाले हैं । ऐसा कोई व्रत हमको बतलाइये जो स्वर्ग और आरोग्य तथा सब प्रकार का सुख प्रदान करने वाला होवे । ईश्वर ने कहा—अब मैं सौर (सूर्य से सम्बन्धित) धर्म को बतलाता हूँ जो नाम से कल्याण सप्तमी व्रत कहा जाया करता है । उसी प्रकार से विशोक सप्तमी भी होती है जो फलों से आढ्य है और समस्त पापों का नाश करने वाली होती है ।२। इसी भाँति परम पुण्यमयी शर्करा

सप्तमी होती है और कमल सप्तमी भी हुआ करती है तथा इसी भाँति मन्दार सप्तमी और शुभों का प्रदान करने वाली शुभ सप्तमी भी होती है ।३। ये सभी सप्तमियाँ अनन्त फलों वाली होती हैं—ऐसा ही कहा गया है । सभी देवर्षियों के द्वारा पूजित है । अब हम इन समस्त सप्तमियों का विधान बतलाते हैं जो ठीक-ठीक यथावत् और आनुपूर्वी से कथित होगा ।४। जिस समयमें मासमें शुक्ल पक्ष की सप्तमीमें आदित्य का दिन होवे वही सप्तमी कल्याण करने वाली विजया नाम भी जिस का कहा जाता है उस सप्तमी के दिन में प्रातःकाल ही में गव्य पय से स्नान करना चाहिए । इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्रधारी होकर अक्षतोंसे पद्म की कल्पना करनी चाहिए ।५-६। प्राङ्मुख होकर अष्ट दल वाले कमल के मध्य में उसी भाँति वृत्ताकार कर्णिका की रचना करे और सब ओर क्रम से पुष्प अक्षतों से देवेश का विन्यास करना चाहिए ।७।

पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति चानले ।
याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते ।८
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले ।
सौम्ये विकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले ।९
आदावन्ते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने ।
मन्त्रैरेभिः समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ।१०
शुक्लवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ।
स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ।११
ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसर्ज्य द्विजपुङ्गवान् ।
शक्तितः पूजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ।
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।१२
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।
कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् ।१३

भुक्त्वा च वेदविदुषे विडालव्रतवर्जिते ।
घृतपायसं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥१४
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः ।
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि व्रतंचरेत् ॥१५

पूर्व दिशा में 'तपनाय नमः'—इस मन्त्र से अग्निकोण में 'मार्तण्डाय नमः'— इससे याम्य दिशा में 'दिवाकराय नमः'—इससे नैर्ऋत्य में 'विधात्रे नमः'—इससे पश्चिम में 'वरुणाय नमः'—इस मन्त्र से— अनिल दिशा में 'भास्कराय नमः'—इससे सौम्य दिशा में 'विकर्त्तने नमः' इससे 'रवये नमः'—इससे अष्टम दल में पूजन करे ।८-९। आदि में और अन्त में 'परमात्मने नमोऽस्तु' इस मन्त्र से अभ्यर्चन करे । इन उपर्युक्त मन्त्रों से समभ्यर्चन करके जो अन्त में नमस्कार से दीपित होते हैं फिर शुक्ल वस्त्रों के द्वारा फल-भक्ष्य-धूप-माल्य और अनुलेपनों से गुड़ और लवणसे शालिधान्यके साथ स्थण्डिल में पूजन करना चाहिए ।१०-११। इसके अनन्तर व्याहृति मन्त्रसे द्विजवर्योंका विसर्जन करे । शक्ति से अपनी पूर्णतया भक्ति पूर्वक गुड़-क्षीर और घृत आदि पदार्थों के द्वारा अर्चन करे । तिलोंसे परिपूर्ण पात्र और सुवर्ण ब्राह्मण को दक्षिणा में निवेदित करना चाहिए ।१२। इस प्रकार से नियमों को करने वाला पुरुष शयन करके प्रातः काल को वेलामें उठकर खड़ा हो जावे । स्नान और जाप करके विप्रों के साथ ही घृत और पायस का भोजन करे । वेदों का विद्वान् हो और विडाल व्रत से रहित हो ऐसे किसी योग्य ब्राह्मण को सुवर्ण के सहित घृत का पात्र अर्थात् घृत से भरा कुम्भपात्र और जल से युक्त कुम्भ निवेदित करे । उस समय में यह कहे कि यहाँ पर भगवान् परमात्मा प्रसन्न होवें । इसी विधान से सब मास-मास में इस व्रत का समाचरण करना चाहिये ।१३-१५।

विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ! ।
यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते ॥१६

माघे कृष्णतिलैः स्नात्वा षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः ।
कृताहारः कृसरया च, आचमनपूर्वकम् ।
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ।१७
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः ।
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत् ।१८
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ।
यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य ! सर्वदा ।
तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च ।१९
एवं संपूज्यषष्ठ्यान्तु भक्त्यासंपूजयेद्द्विजान् ।
सुप्त्वासंप्राश्यगोमूत्रमुत्थायकृतनैत्यकः ।२०
संपूज्य विप्रानन्नेन गुडपायससमन्वितम् ।
तद्वस्त्रयुग्मं पद्मञ्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।२१
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ।
ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।२२
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ।
कृत्वा यावत् पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ।२३

ईश्वर ने कहा—हे मुनि पुङ्गव ! अब हम विशोक सप्तमी का वर्णन उसी भाँति करते हैं । जिसका उपवास करके यहाँ संसार में कदाचित् भी मनुष्य शोक को प्राप्त नहीं किया करता है ।१६। माघ मास में काले तिलों से शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि में स्नान करे । दन्तधावन पहिले करके कृसर से आहार का समापन करे । इस उपवास के व्रत को करके रात्रि में ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया पालन करना चाहिए ।१७। इसके अनन्तर प्रभात वेला में उठकर स्नान तथा जाप करके परमशुचि हो जावे और सुवर्ण का पद्म निर्माण कराकर भगवान् अर्क के लिए पद्म पूजन करना चाहिए ।१८। रक्त करवीर के पुष्प से तथा दो रक्त वर्णों के वस्त्रों से अर्चना करे । हे आदित्य ! यह सम्पूर्ण भुवन सर्वदा

आपके ही द्वारा शोक से रहित रहता है—यह प्रार्थना करे। फिर यह भी निवेदन करे कि उसी प्रकार से मेरी भी विशोकता होवे अर्थात् मैं भी शोक से बिल्कुल रहित हो जाऊँ और प्रत्येक जन्ममें आपके चरणों में मेरी सुदृढ़ भक्ति भी होवे ।१९। इस प्रकार से अच्छी विधि में पूजन करके फिर भक्तिपूर्वक द्विजगणों का अभ्यर्चन करे। भूमि का शासन करके शयन करे और उठकर नैत्यिक कृत्य का सम्पादन करे ।२०। मिथुनों का वस्त्र से भली भाँति पूजन करके फिर गुड़ पात्र से संयुक्त ही जल और वह पद्म भी सेवा में निवेदित कर देना चाहिए ।२१। द्वादशी में तेल और लवण से रहित भोजन करके मौन व्रत से संयुत रहे फिर भूति की इच्छा रखने वाले को पुराणों का श्रवण करना चाहिए ।२२। इसी विधि से दोनों पक्षों में सब करे जब तक माघशुक्ल पक्ष की द्वादशी पुनः प्राप्त करता रहे ।२३।

— × —

८२—विशोक द्वादशी व्रत कथन

किमभीष्टवियोगशोकसङ्घादलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा ।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन् भवभीतेरपि सूदनञ्च पुंसः ।१
परिपृष्टमिदं जगत् प्रियन्ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात् ।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ।२
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्
दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु ।३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम् ।
एकादश्यांनिराहारः समभ्यर्च्यानुपूर्वकम् ।
श्रियं वाऽभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्यामि त्वपरेऽहनि ।४

एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु ।
शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ।५
विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै ।
श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ।६
कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम् ।
दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै ।७

मनु महाराज ने कहा—हे भगवन्! क्या कोई भूमण्डल में ऐसा व्रत और उपवास है जो अभीष्टकी सिद्धि करने वाला हो और वियोग तथा शोक के संताप से उद्धार करने के लिये समर्थ हो, तथा वैभव के उद्भव को करने वाला हो तथा पुरुष के हृदय में जो एक इस संसार का भय घुसा हुआ है उसको नष्ट कर देने वाला भी हो ? ।१। मत्स्य भगवान् ने कहा—आपका यह पूछना पूर्ण जगत् के लिये प्रिय है और महत्व की दृष्टि से यह देवों के लिए भी परम दुर्लभ है। यह व्रत तो ऐसा ही सब कुछ कर देने वाला है और इन्द्र असुर और मानवों में अति गोपनीय है तो भी क्योंकि आप भक्तिमान् हैं इसीलिए बता रहा हूँ।२। अश्वयुज मासमें परम पुण्यमय यह विशोक द्वादशी का व्रत होता है। दशमी तिथि में विद्वान् पुरुष अल्पतम लघु भोजन करे और फिर नियम पूर्वक इसका समारम्भ कर देना चाहिए ।३। उत्तर की ओर मुख वाला या पूर्व दिशा की तरफ मुख वाला होकर दन्तधावन आदि दैनिक कृत्य को पहिले करते हुए एकादशी में निराहार रहकर पूर्ण से समभ्यर्चन करना चाहिए ।४। पहिले विधि पूर्वक श्री… का पूजन करके दूसरे दिन में भोजन करूँगा—ऐसे नियम का संकल्प करके शयन करे और प्रभात में उठकर साधक मानव को सर्वौषधियों से मिश्रित जलसे और पंच गव्य के जल से स्नान करना चाहिए। फिर शुक्ल वस्त्र धारी होकर कमलों से श्रीश प्रभु का पूजन करना चाहिए ।५। 'विशोकाय नमः'—इससे चरणों का 'वरदाय नमः' इससे जाँघों का

पूजन करे। 'श्रीधराय नमः' इससे जानुओं का, 'जलशायिने नमः' इससे जंघाओं का पूजन करे।६। 'कन्दर्पाय नमः' इस मन्त्र से गुह्य का तथा 'माधवाय नमः'—इसका उच्चारण कर कटि का पूजन करना चाहिए। 'दामोदराय' इससे उदर का और 'विपुलाय नमः' इससे दोनों पार्श्वों का अर्चन करे।७।

नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै।
श्रीवत्साय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः।८
चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः।
वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै।९
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी।
ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रुवौ।१०
अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे।
ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मृदा।११
चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्।
श्लक्ष्णं हृष्टं च परितो वप्रत्रयसमावृतम्।१२

'पद्मनाभाय नमः'—इससे नाभि का, 'मन्मथाय नमः' इससे हृदय का, 'श्रीवत्साय नमः' इससे विभु के वक्ष का और 'मधुजितेनमः' इससे प्रभु के दोनों करों का पूजन करना चाहिए।८। 'चक्रिणे नमः'—इस मन्त्र से वाम बाहु का 'गदिने नमः' इससे दक्षिण बाहु का, वैकुण्ठाय नमः' इससे कण्ठ का और 'यज्ञमुखाय नमः'—इससे आस्य का पूजन करे।९। 'अशोक निधये नमः' इससे नासिका, 'वासुदेवाय नमः'—इससे नेत्रों का, 'वामनाय नमः' इस मन्त्र से ललाट का और 'हरयेनमः' इसके द्वारा भ्रुओं का यजन करना चाहिए।१०। 'माधवाय नमः'—इससे अलकों का 'विश्वरूपिणे नमः' इसका उच्चारण कर किरीट का 'सर्वात्मने नमः' इससे उसी भाँति शिर का अभिपूजन करना चाहिए।११। फल-माल्य और अनुलेपन आदि समुचित उपचारों के द्वारा इस

भाँति गोविन्द का भली भाँति पूजन करके फिर इसके उपरान्त मण्डल का निर्माण कराकर मृत्तिका से स्थण्डिल की रचना करनी चाहिए ।१२। सभी ओर से चौकोर और रत्निमात्र उपकल्पित वाला—श्लक्ष्ण-रूप (मनोहर) दोनों ओर विस्तार से समाप्त बनाना चाहिए ।१२।

एकांगुलोच्छ्रिता विप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यंगुलः ।
स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टांगुला भवेत् ।१३
नदीवालुकया शूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत् ।
स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः ।१४
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ।१५
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे ।
विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये ।१६

एक अंगुल विप्र उच्छ्रित हो और उसका विस्तार दो अंगुल का होना चाहिए । स्थण्डिल के ऊपर जो भित्ति हो वह आठ अंगुलप्रमाण वाली रहनी चाहिए ।१३। नदी की बालुका से निर्मित हुई लक्ष्मी की प्रतिकृति का न्यास शूर्प में करे । फिर उस स्थण्डिल में सूर्प का आरोप करके बुध पुरुष को इस तरह लक्ष्मी का अभ्यर्चन करना चाहिए ।१४। अर्चना के समय में उच्चारण किये जाने वाले मन्त्र ये हैं—'देव्यै नमः' शान्त्यै नमः लक्ष्म्यै नमः, श्रियै नमः, पुष्ट्यै नमः, हृष्ट्यै नमः' । हे देवि ! आप दुःखों का नाश करने के लिए विगत शोक वाली हैं । प्रार्थना है कि मुझ पर भी आप अब विशोका हो जावें । सम्पत्ति के लिए विशोका होवें और सब प्रकार की सिद्धि के लिए भी विशोका हो जावें ।१५-१६।

९३—ग्रह शान्ति वर्णनम्

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा ।
सर्वकामाप्तये नित्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम् ।१
श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् ।
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः ।
येन ब्रह्मन् ! विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ।२
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्य ग्रन्थविस्तरम् ।
ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिचोदिताम् ।३
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
ग्रहान्ग्रहादिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत् ।४
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः ।
प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम् ।५
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः ।
अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः ।६
तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम् ।
गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ।७

महामहिम श्री सूतजी ने कहा—पुरातन समय में एक स्थान पर समासीन वैशम्पायन मुनिसे शौनकजी ने पूछा था कि समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिए नित्य ही शान्तिक और पौष्टिक कैसे होते। अर्थात् इसका साधन किस प्रकार से किया जा सकता है—यह बतलाइए।१। भगवान् वैशम्पायनजी ने कहा—श्री की कामना करने वाला कोई पुरुष हो या शान्तिकी इच्छा रखने वाला कोई होवे उन दोनोंही प्रकार के पुरुषों को ग्रह यज्ञ करने का समारम्भ कर देना चाहिए। वृष्टि-आयु तथा पुष्टिकी कामना वाला हो तथा कोई अभिचारादि करने की इच्छा वाला हो उसको भी वैसा ही करना चाहिए। हे ब्रह्मन्! जिस विधान

से करता है उसको कल्प करके सुखी करतो।२। समस्त शास्त्रों का अनुगमन करके और ग्रन्थ के विस्तार का संक्षेप करके पुराण और श्रुति के द्वारा कथित ग्रहों की शान्ति को बतलाते हैं।३। विप्रों के द्वारा बताये हुए किसी भी पुण्य दिन में ब्राह्मणों का वाचन करके फिर ग्रहों को—ग्रहों के आदि देवों को स्थापित करके होम का समारम्भ करना चाहिए।४। पुराणों में तथा श्रुति महा मनीषियों ने ग्रहयज्ञ तीनप्रकार का कहा है। प्रथम तो यह है जिस ग्रह यज्ञ में दश सहस्र आहुतियों का होम किया जाता है. द्वितीय वह होता है जिस ग्रह यज्ञ में एक लाख आहुतियों का होम किया जाता है।५। तीसरा जो इस ग्रह यज्ञ का भेद है उसमें एक करोड़ आहुतियों का होम होता है। यह तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है। जिसमें दश सहस्र आहुतियाँ दी जाया करती हैं वह नवग्रह मख के नाम से कहा गया है।६। इसकी जो विधि पुराणों में तथा श्रुति के द्वारा वर्णित की गयी है उसे ही बतलाऊँगा। जो गर्त हो उससे उत्तर और पूर्व दिशा में दो वितस्ति आयिकल के विस्तार वाली वेदी बनावे।७।

वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रयसम्मिताम् ।
संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदङ्मुखाम् ।८
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् ।
देवतानां ततः स्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका ।९
सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ।१०
मध्ये तु भास्करं विन्द्याल्लोहितं दक्षिणेन तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ।११
पूर्वेण भार्गवं विन्द्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके ।
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे ।
पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः ।१२

भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा ।
स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् ॥१३
ब्रह्माणञ्च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् ।
शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च ॥१४
केतोर्वै चित्रगुप्तञ्च सर्वेषामधिदेवताः ।
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवताः ॥१५

इस वेदी को दो वर्णों से शोभित कराके और एक वितस्ति (बालिश्त) उच्छ्रय (ऊँचाई) से सम्मित करे। ग्रह देवगणों की संस्थापना करने के लिये ही ईशान और उत्तर की ओर प्राग् मुख वाली निर्मित करानी चाहिए।८। अग्निदेव का प्रणयन करके इसी वेदी में सुरगणों का आवाहन करना चाहिए। यहाँ पर द्वादश अधिक विंशति अर्थात् बत्तीस देवताओं की स्थापना करनी चाहिए।९। सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु ये लोकों के हित के करने वाले ग्रह कहे गये हैं।१०। उसमें मध्य भाग में भगवान् भास्कर की स्थापना करे जो लोहित वर्ण का होवे और दक्षिण दिशा की ओर ही रखना चाहिए। उसके उत्तर की ओर गुरु को स्थापित करे और पूर्वोत्तर में बुध ग्रह को स्थापित करना चाहिये।११। पूर्व दिशा में शुक्र को तथा दक्षिण पूर्व में सोम की स्थापना करे। पश्चिम में शनि को तथा पश्चिम दक्षिण में राहु को स्थापित करे। एवं पश्चिम उत्तर भाग में केतु ग्रह की स्थापना शुक्ल तण्डुलों से करनी चाहिए।१२। भास्कर ग्रह का अधिदेवता ईश्वर है और चन्द्रमा का उमा है। भौम का स्कन्द अधिदेवता होता है एवं बुध का हरि है।१३। गुरु का अधिदेवता ब्रह्मा है तथा शुक्र ग्रह का स्वामी शचीपति इन्द्र है। शनैश्चर का अधिदेव यम और राहु का काल बताया गया है तथा केतु का अधिदेवता चित्रगुप्त है—इस प्रकार से सब ग्रहों के अधि देवता होते हैं। अग्नि-आप (जल)-क्षिति विष्णु-इन्द्र और ऐन्द्री देवता हैं।१४-१५।

प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः ।
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च ।
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥१६
संस्मरेद्रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम् ।
सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिंगलौ ।
मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः ॥१७
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च ।
धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद्वितानकम् ।
शोभनं स्थापयेत्प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम् ॥१८
गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम् ।
अंगारकाय संयावं बुधाय क्षीरषाष्टिकं ॥१९
दध्योदनञ्च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम् ।
शनैश्चराय कृसरामजांच राहवे ।
चित्रौदनञ्च केतुभ्यः सर्वभक्ष्यैरथार्चयेत् ॥२०

प्रजापति और सर्प तथा ब्रह्मा ये प्रत्यधि देवता हैं । विनायक तथा दुर्गा-वायु और आकाश का आवाहन करे तथा व्याहृतियों से दोनों अश्विनी कुमारों का आवाहन करना चाहिये ॥१६। आदित्य ग्रह का स्मरण रक्तवर्ण का करे जो अङ्गारक से समन्वित है अर्थात् रक्तही वर्ण भौम का भी होता है । सोम और शुक्र ये दो ग्रह शुक्ल वर्णों वाले होते हैं । बुध और गुरु ये दो ग्रह पिङ्गल (पील) वर्णके होते हैं । शनि और राहु ये दो ग्रह कृष्ण वर्ण वाले हैं और केतु का वर्ण धूम्र कहा गयाहै। ॥१७। जिस प्रकार के ये ग्रहों के वर्ण बताये गये हैं उसी वर्ण के वस्त्र और कुसुम देने चाहिये । वहाँ पर परम सुरभि धूपामोद करे और ऊपर की ओर वितानकी रचना करनी चाहिये । प्राज्ञ पुरुषको चाहिए कि फल पुष्पों से समन्वित अतीव शोभन स्थापना करे ॥१८। रवि का रक्त वर्ण है अतएव उसको गुडौदन समर्पित करना चाहिये जिसका वर्ण

भी तदनुकूल ही होता है। सोम के लिये घृत और पायस समर्पित करे। भौम को संयाव अर्पित करे और बुध के लिये क्षीर षष्टिक देवे ॥१९। गुरु को दधि और ओदन देवे तथा शुक्र को घृतौदन अर्पित करे। शनि को कृसर राहु और केतु को चित्रौदन देवे। इस प्रकार से सबसे जो भक्ष्य पदार्थ हैं उन्हीं से सबका अर्चन करना चाहिए ॥२०।

प्रागुत्तरेण तस्मात्तु दध्यक्षतविभूषितम् ।
चूतपल्लवसंछन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥२१
पञ्चरत्नसमायुक्तं पंचभंगसमन्वितम् ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥२२
गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद् ह्रदगोकुलात् ॥२३
मृदमानीय विप्रेन्द्र ! सर्वौषधिजलान्वितम् ।
स्नानार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित् ॥२४
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च नदास्तथा ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥२५
एवमावाह्य देवानमरान् मुनिसत्तम ! ।
होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना ॥२६
अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
औदुम्बरः शमी दूर्वाकुशाश्च समिधः क्रमात् ॥२७
एकैकस्यात्राष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥२८

इसके पूर्व और उत्तर में दधि—अक्षतों से विभूषित—आम के पल्लवों से संछन्न-फल और दो वस्त्रों से समन्वित-पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त और पंचभङ्ग से संयुत स्थापित करना। वरुण देवता के कुम्भ

को स्थापना कर विन्यास करना चाहिये ।२१-२२। गङ्गा आदि सभी सरिताओं समुद्र और सरों का भी विन्यास करे। गज-अश्व की शाला—रथ्या (गली)-वल्मीक (सांप की बांबी)—सङ्गम—ह्रद और गौओं के रहने की भूमि इनसे मृत्तिका का आहरण करे। हे विप्रेन्द्र! यहाँ पर सर्वौषधि वाला पुरुषको यजमान के स्नान के लिये सर्वौषधि और जल से परिपूर्ण कलश का विन्यास भी करना चाहिये ।२३-२४। उस समय के निम्न प्रकार से सम्पूर्ण जलाशयों का आवाहन करे—सभी समुद्र-सरिताएँ-सरोवर और नद यहाँ पर आवें जो यजमान की दुरितों (पाप कर्मों) को क्षय करने वाले हैं ।२५। हे मुनियों में परमश्रेष्ठ ! इसी प्रकार से इन समस्त देवों का भी यहाँ पर आवाहन करना चाहिए और इसके अनन्तर फिर घृत-यव-व्रीहि और तिलादि की आहुतियों होम का आरम्भ करे ।२६। क्रम से समिधाएँ भी होम की अर्क (आक) पलाश (ढाक) खदिर-अपामार्ग-पीपल-गूलर शमी (छीकुर)-दूर्वा और कुशा से होती हैं ।२७। एक-एक के लिये अष्टोत्तर शत (एक सौ आठ) अथवा केवल अट्ठाईस ही आहुतियाँ मधु और घृत से और घृत से और दधि से संमिश्रित करके देनी चाहिए अर्थात् हवन करे। ।२८।

प्रादेशमात्राअशिफा अशाखाअपलाशिनीः ।
समिधः कल्पयेत्प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा ।२९
देवानामपि सर्वेषामुपांशु परमार्थवित् ।
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक् ।३०
होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरु भक्ष्यादिकं पुनः ।
मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्ततः ।३१
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् ।३२
हुत्वा च तांश्चरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत् ।
आकृष्णेनेति च सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना ।३३

आप्यायस्वेति सोमाय मन्त्रेण जुहुयात् पुनः।
अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्र इति भौमाय कीर्तयेत्॥३४
अग्ने ! विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै।
बृहस्पते ! परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः॥३५

सर्वदा सभी कार्यों में प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि—अधिका-धिकारी वाली और पत्रों से रहित ही समिधाओं की कल्पना करनी चाहिए।२८। यज्ञार्थ के ज्ञाता पुरुष को सभी देवों के लिये उपांशु होते हुए ही अपने-२ उनके मन्त्रों के द्वारा पृथक्-२ समिधाओं की आहुतियाँ देनी चाहिये।२९। यव और अक्षतादि को घृत से मग्न करके ही हवन करना चाहिये। मन्त्रों के द्वारा द्वादश आहुतियों का हवन करके फिर व्याहृतियों के द्वारा होम करना चाहिये।३१। ऋत्विज ब्राह्मण या तो उत्तर की ओर मुखों वाले रहें या पूर्व की ओर मुख करने वाले होने चाहिए। जो मन्त्रों वाले हैं उनको प्रत्येक देव के चरु करने चाहिए। उन चरुओं का हवन करके भली भाँति होम का समाचरण करे। द्विजन्मा के द्वारा 'आकृष्ण'—इत्यादि मन्त्र से सूर्य के लिये होम करना चाहिये।३२-३३। 'आप्यायस्व'—इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमा के लिए हवन करे। 'अग्निर्मूर्धादिवो' इत्यादि मन्त्र भौम के हवन के लिये उच्चारित करे।३४। 'अग्ने ! विवस्वदुषस' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग सोम सुत बुध के लिये करे तथा 'बृहस्पते ! परिदीया रथेन' इत्यादि का प्रयोग गुरु के लिये माना गया है।३५।

शुक्रं ते अन्यदिति च शुक्रस्यापि निगद्यते।
शनैश्चरायेति पुनः शन्नो देवीति होमयेत्।
कयानश्चित्र आभुव इति राहोरुदाहृतः॥३६
केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये।
आ वो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत्।
आपो हि ष्ठेत्युमायास्तु स्योनेत्यग्नि स्वामिनस्तथा॥३७

विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः ।
इन्द्रमिन्द्रं वदामेति इन्द्राय जुहुयात्ततः ॥३८
तथा यमस्य चायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः ।
कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रविदो विदुः ॥३९
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः ।
अग्निं दूतं वृणीमहे इति वह्नेरुदाहृतः ॥४०
उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः ।
भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥४१
सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः ॥४२
इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥४३

'शुक्रते अन्यद्'—इत्यादि मन्त्र के लिये हवन करने में बोला जाया करता है। 'शन्नोदेवी' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण शनिदेव के होम के लिए करना चाहिए और 'कयानश्चित्र आभुव'—इत्यादि मंत्र से राहु के लिए होम बताया गया है।३६। 'केतुं कृण्वन्नकेतवे' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण केतुओं की शान्ति के लिये करना चाहिये। 'आब्रो-दाज' इत्यादि मन्त्र के द्वारा रुद्र का बलि होम समाचरित 'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्र से उमादेवी का तथा 'स्योना' इत्यादि से स्वामि कार्ति-केय का बलि होम करे।३७। 'इदं विष्णु' इत्यादि मन्त्र से भगवान् विष्णु का तथा 'तमीशेति' इत्यादि के द्वारा स्वयम्भू का और 'इन्द्रमिन्द्रं वदाम' इत्यादि से इन्द्रदेव के लिये हवन करना चाहिये।३८। यम के लिए 'अयं गौरिति' इत्यादि मन्त्र के द्वारा होम करे-ऐसा कीर्तित किया है। 'कालस्य ब्रह्म जज्ञानम्' इत्यादि को काल के लिए मन्त्रों के वेत्ता लोग जानते हैं।३९। चित्रगुप्त के लिये 'अज्ञातम्' इत्यादि को मन्त्रों के ज्ञाता जानते हैं। अग्निदूतं वृणीमहे—इत्यादि को मन्त्र वह्निदेव के लिए बताया गया है।४०। 'उदुत्तम वरुणम्' इत्यादि अपो का मन्त्र कहा है और 'पृथिव्यन्त रिक्षम्' इत्यादि मन्त्र को भूमि के लिए वेदों में पढ़ा जाया करता है।४१। 'सहस्रशीर्षा पुरुष'-इत्यादि मन्त्र भगवान्

विष्णु के लिए कहा गया है और 'इन्द्राग्नी मरुत्वत' इत्यादि मन्त्र मरुतः के लिए उत्तम माना जाता है ।४२-४३।

उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत् ।
प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः ।४४
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते ।
एष ब्रह्मा य ऋत्विक्य इति ब्रह्मण्युदाहृतः ।४५
विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः ।
जातवेदसे सुनवामिति दुर्गामन्त्र उच्यते ।४६
आदित्प्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः ।
काणा शिशुर्महीनाञ्च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः ।४७
एषो उषा अपूर्व्या इत्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते ।
पूर्णाहुतिन्तु मूर्द्धानं दिवइत्यभिपातयेत् ।४८

'उत्तानपर्णे सुभगे'—इत्यादि मन्त्र का प्रयोग देवी के लिए करना चाहिए । प्रजापति का पुनः होम 'प्रजा पति' इत्यादि के द्वारा बताया गया है ।४४। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इत्यादि मन्त्र सर्पों का उदाहृत किया गया है । 'एष ब्रह्माय ऋत्विक' इत्यादि मन्त्र को ब्रह्मा के विषय में प्रयुक्त करना चाहिए । विनायक का 'चानूनम्'—इत्यादि मन्त्र है । जिसको बुध लोगों ने कहा है । जात वेदा के लिये 'सुन वाम' इत्यादि दुर्गामन्त्र कहा जाता है । 'आदि प्रत्नस्य रेतस' इत्यादि मन्त्र आकाश का उदाहृत किया गया है । 'काणा शिशु मही नाञ्च' इत्यादि मन्त्र अश्विनी कुमारों के लिए कहा जाताहै । इसके पश्चात् जो पूर्णाहुतिहो दी जावे वह 'मूर्द्धानं दिव' इत्यादि मन्त्र के द्वारा ही अभिपातित करनी चाहिये ।४५-४८।

४४-शिव चतुर्दशी व्रत कथन

भगवन् ! भूतभव्येश ! तथान्यदपि यत्त्वया श्रुतम् ।
भुक्तिमुक्तिफलायालं तत्पुनर्वक्तुमर्हसि ।१
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः ।
मत्समस्तपसा ब्रह्मन् ! पुराणश्रुतिविस्तरैः ।२
धर्मोऽपि वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः ।
धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृति नारद ! ।३
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् ! वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम् ।
शिवलोकेषु विख्याता नाम्ना शिवचतुर्दशी ।४
मार्गशीर्षे त्रयोदश्यां सितायामेकभोजनः ।
प्रार्थयेद् देवदेवेश ! त्वामहं शरणं गतः ।५
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शङ्करम् ।
सुवर्णवृषभं दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि ।६
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।
कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शङ्करम् ।
पूजयेत् कमलैः शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! हे भूत भव्य के ईश ! आपके मुखारविन्द से अन्य भी जो कुछ श्रवण किया है वह भुक्ति और मुक्ति दोनों के फल प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है उसे पुनः आप कहने के योग्य होते हैं ।१। इस प्रकार से जब भगवान् शम्भु से कहा गया था तो उन्होंने कहा था यह हे ब्रह्मन् ! पुराण और श्रुति के विस्तारों से तथा तपश्चर्या से वाङ्मय का पारगामी मेरे ही समान है ।२। हे नारद ! नन्दियों का गणाधिप वृषरूप से यह धर्म है जो यहाँ से आगे माहेश्वर धर्मों को बतायेगा ।३। नन्दि भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब आप

।४। मार्गशीर्ष मास में शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी के दिन केवल एक ही बार भोजन करें और प्रार्थना करनी चाहिए—हे देव देवेश ! मैं आपकी शरणागति में सम्प्राप्त हो गया हूँ ।५। चतुर्दशी के दिन पूर्णतया आहार से रहित होकर शंकर का भली भाँति अभ्यर्चन करके ही मैं सुवर्ण का निर्मित वृषभ का दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा—ऐसा मन में संकल्प करे ।६। इस प्रकार से नियम करने वाले पुरुष को स्तवन करके शयन करना चाहिए और प्रभात वेला में उठकर स्नान जप आदि सम्पूर्ण नैत्यिक कर्मों का समापन करके फिर जगज्जननी उमा के सहित भगवान शङ्कर का शुभ्र कमलों और गन्ध तथा माल्य एवं अनुलेपन आदि उचित उपचारों से पूजन करना चाहिए ।७।

पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः ।
त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः ।८
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेति कन्धराम् ।
सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवाय वै भुजौ ।९
अघोरहृदयायेति हृदयञ्चाभिपूजयेत् ।
स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम् ।१०
पार्श्वे चानन्तधर्माय ज्ञानभूताय वै कटिम् ।
ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत् ।११
अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनी चार्चयेद्बुधः ।
प्रधानायनमो जंघे गुल्फौ व्योमात्मनेनमः ।१२
व्योमकेशात्मरूपाय केशान् पृष्ठञ्च पूजयेत् ।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीञ्चापि पूजयेत् ।१३
ततस्तु वृषभं हैमशुक्लकुम्भसमन्वितम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।१४

'नमः शिवाय'—इससे चरणों का अर्चन करे। 'सर्वात्मने नमः' इस मन्त्र के द्वारा शिर का पूजन करे। 'त्रिनेत्राय नमः'—इससे नेत्रों का 'हरये नमः'—इससे ललाट का पूजन करना चाहिए। 'इन्दुमुखाय नमः'—इसके द्वारा मुख का—'श्रीकण्ठाय नमः' इससे कण्ठ का—'सद्योजाताय नमः'—इससे कानों का 'वाम देवाय नमः'—इस मन्त्र से भुजाओं का अर्चन करे। 'अघोर हृदयाय नमः'-इससे हृदय का अभिपूजन करना चाहिए। 'तत्पुरुषाय नमः—इससे स्तनों का अर्चन करे। 'ईशानाय नमः'—इससे उदर का—'अनन्त धर्माय नमः' इससे पार्श्वों का 'ज्ञानभूताय नमः' इसके द्वारा कटि का—'अनन्त वैराग्य सिंहाय नमः'—इससे ऊरुओं का अभिपूजन करना चाहिए। 'अनन्तैश्वर्य नाथाय नमः' इससे बुध पुरुष को दोनों जानुओं का समर्चन करना चाहिए। 'प्रधानाय नमः'—इसके द्वारा जाँघों का, 'व्योमात्मने नमः'। इसका उच्चारण कर गुल्फों का। 'व्योमकेशात्मरूपाय नमः' इससे केशों का और पृष्ठभाग का पूजन करे। 'पुष्ट्यै नमः'—इन मन्त्रों से पार्वती का भी पूजन करना चाहिए। इसके अनन्तर वृषभ का यजन करे तथा सुवर्ण निर्मित कुम्भ को जल से पूर्ण करके शुक्ल माल्य और अम्बर को धारण करके स्थापन करके पञ्च रत्नोंसे युत करके तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से समन्वित करके ब्राह्मण के लिए दान देना चाहिए।८-१४।

ततोविप्रान् समाहूय तर्पयेद्भक्तितः शुभान् ।
पृषदाज्यञ्च संप्राश्य स्वपेद्भूमावुदङ्मुखः ॥१५
पञ्चदश्यां ततः पूज्य विप्रान् भुञ्जीतवाग्यतः ।
तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यामेतत् सर्वंसमाचरेत् ॥१६
चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात् पूर्ववदर्चनम् ।
ये तु मासे विशेषाः स्युस्तान्निबोधक्रमादिह ॥१७
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् ।

शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ।१८
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् ।
नमस्तेऽस्तु महादेव ! स्थाणवे च ततः परम् ।१९
नमः पशुपते नाथ ! नमस्ते शम्भवे पुनः ।
नमस्ते परमानन्द ! नमः सोमार्द्धधारिणे ।२०
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् ।२१
पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरं चागुरुं यवाः ।
तिलाः कृष्णाश्च निर्दिष्टाः प्राशनं क्रमशः स्मृतम् ।
प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ।२२
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि ।
सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ।२३
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः ।
एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत्पार्वतीपतिम् ।२४

इसके अनन्तर विप्रों का समाह्वान करके जो परम शुभ हों उनको भक्तिपूर्वक तृप्त करे । पृथक्त्व भाकर उत्तर ओर मुख वाला होकर भूमि में शयन करे । इसके पश्चात् पंचदशी के दिन में विप्रों का पूजन कर मौन होकर भोजन करे । इसी तरह से कृष्ण चतुर्दशी में यह सब समाचरित करे । सभी चतुर्दशियों पूर्व की भाँति अर्चन करना चाहिए । जो मास में विशेष हों उनको यहाँ क्रम से आप समझ लीजिए ।१५-१७
मार्गशीर्ष आदि मासों में क्रम से यह उदीरित करना चाहिए । हे करवीरक ! शंकर के लिए मेरा प्रणाम अर्पित होवे और आपको भी नमस्कार समर्पित होवे ।१८। त्र्यम्बक आपके लिए नमस्कार हो । इसके

प्रणाम निवेदित होवे। हे परमानन्द ! सौभाग्यकारी आपके लिए मेरा प्रणाम अर्पित होवे। भीम के लिये नमस्कार है—इस प्रकार से कहकर अन्त में प्रार्थना करे कि मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घृत, कुशोदक, पंचगव्य, बिल्व, कर्पूर, अगुरु, यव, कृष्ण तिल इनका विधिवत् क्रम से प्राशन कहा गया है। प्रति मास में दोनों चतुर्दशियों में एक-एक का प्राशन बताया गया है।१९-२०। मन्दार, मालती, धत्तूर, सिन्धुवार, मल्लिका, पाटल, अर्कपुष्प, कदम्ब, शतपत्री और उत्पल—इन पुष्पों में से क्रमशः एक-एक के द्वारा दोनों चतुर्दशियों में पार्वती के स्वामी का अर्चन करना चाहिए।२१-२४।

४५—फल त्याग माहात्म्य कथन

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद्भवेच्छृणु नारद ! ।
यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ।१
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने ! व्रतम् ।
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा ।
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।२
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम ! ।
सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ।३
अष्टादशानां धान्यानामभक्ष्यं फलमूलकैः ।
वर्जयेदब्दमेकन्तु ऋते औषधकारणम् ।
तद्रूपं काञ्चनं रुद्रं धर्म्मराजञ्च कारयेत् ।४
कूष्माण्डं मातुलिङ्गञ्च वार्ताकं पनसं तथा ।
आम्रामातकपित्थानि कलिङ्गमथवालुकम् ।५
श्रीफलाश्वत्थबदरं जम्बीरं कदलीफलम् ।
काश्मरं दाडिमं शक्त्या कलधौतानि षोडश ! ।६

मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडीकरमर्दकम् ।
कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीरं कुटजं शमी ॥७

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे नारद ! फल के त्याग करने का जो माहात्म्य होता है उसका श्रवण करो । जो लोक में परम अद्भुत होता है और सब कामों के फल का प्रदान करने वाला है ॥१॥ हे मुने ! यह मार्गशीर्ष शुभ मास में तृतीया-द्वादशी-अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि में होता है । ब्राह्मण वाचन करके शुक्ल पक्ष में इसका समारम्भ करना चाहिए ॥२॥ हे मुनिसत्तम ! अन्य पुण्य मासों में भी दक्षिणा के सहित उत्तम दधि पायस से द्विजों को भोजन कराना चाहिए ॥३॥ औषध के कारण के बिना अठारह धान्यों के अन्नफल का वर्जन कर देना चाहिए और एक वर्ष तक फल मूलों से रहे । वृष के सहित सुवर्ण का रुद्र और धर्मराज निर्मित करावे ॥४॥ कूष्माण्ड, मातुलिङ्ग, वार्ताक, आम्रातक बिल्व, कलिङ्ग, अम्बुक, श्रीफल, अश्वत्थ, बदर, जम्बीर, कदली फल काश्मर दाडिम इन सोलह को शक्ति पूर्वक कलधौत (सुवर्ण) के बनावे ॥५-६॥ मूली-आंवला जम्बु, तिन्तिडी, करमर्दक, कङ्कोल, एलाक, तुण्डीर, करीर, कुटज, शमी और उदुम्बर, नारिकेर, द्राक्षा—दोनों बृहती इन सोलह फलों को शक्ति के अनुसार रौप्य अर्थात् चाँदी से निर्मित करावे ॥७॥

औदुम्बरं नारिकेरं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम् ।
रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश ॥८॥
तालकं तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च ।
पिण्डारकाश्मर्यफलं तथा सूरणकन्दकम् ॥९
रक्तालुकाकन्दकञ्च कनकाह्वञ्च निर्मितम् ।
चित्रवल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिजम्बुकम् ॥१०
धात्रीनिष्पावमधूकवटमुद्गपटोलकम् ।
ताम्राणि षोडशैतानि कारयेच्छुल्बिकोत्तमः ॥११
उदकुम्भद्वयं कुर्याद्धान्योपरि सवस्त्रकम् ।

ततश्च कारयेच्छय्यां यथोपरि सुवाससी ।१२
भक्ष्यपात्रसमोपेतं सच्छत्रोपानहान्वितम् ।
धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने ।
सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत् ।१३

लाल फल और अगस्ति फल को ताम्र से निर्मित करावे । पिण्डार, काश्मर्य फल-पुष्प कला-रक्ताङ्कुर गन्ध-कण्टकारी- विशिष्ट बिल्वफलों फल—इसी भाँति कूष्माण्डमालिंग फल-आम्र, निष्पाव-मधूक-वट-मुद्ग-पटोलक इन सोलह को मनुष्य के द्वारा भक्ति पूर्वक ताम्र से निर्मित करना चाहिए ।८-११। शय्या के ऊपर दो वस्त्र से पूर्ण कुम्भों को वस्त्र के सहित स्थापना करे । इसके अनन्तर सुन्दर वस्त्रों से समन्वित शय्या ऊपर करावे ।१२। तीन भक्ष्य पात्रों से उसे संयुक्त करे और छत्र-पद तथा जूता से संयुक्त करे तथा धेनु के सहित किसी परम शान्त स्वभाव वाले कुटुम्बी पत्नी के सहित विप्र का भली-भाँति अर्चन करके किसी भी पुण्य दिवस में उसको ये सब विनिवेदित कर देना चाहिए ।१३।

यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः ।
तथा सर्वफलत्यागव्रताद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ।१४
यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ ।
तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ।१५
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा ।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ।१६
यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान् ।
तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरः शंकरः सदा ।१७
इति दत्त्वा च तत्सर्वमलंकृत्य च भूषणैः ।
शक्तिश्चेच्छयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ।१८

अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः ।
तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ ।१६
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम् ।
अन्यानपि यथा शक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ।२०

जिस प्रकार से सब फलों में अमरों की कोटियाँ निवास किया करती हैं उसी भाँति इन फलों के त्याग से मेरी भगवान् शिव में भक्ति होवे ।१४। जिस तरह से भगवान् शिव और धर्म सदा अनन्त फलों के प्रदान करने वाले हैं वैसे ही मुझ फलदान के द्वारा वे दोनों मुझे फलदान करने वाले होवें ।१५। जिस भाँति शिव के भक्तों में सर्वदा अनन्त फल होते हैं इसी तरह से मुझे जन्म-जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होवे ।१६। जिस रीति से शिव-विष्णु-सूर्य और ब्रह्मा के भेद को नहीं देखता हूँ अर्थात् इनमें कुछ भी भेद-भाव नहीं मानता हूँ उसी प्रकार से मेरे लिए विश्वात्मा शङ्कर सदा शङ्कर होवें अर्थात् कल्याण-कारी होवें ।१७। यह कहकर वह सब भूषणों से समलंकृत करके दान करे और शक्ति न हो तो विधान में यथोक्त फलों का ही दान करे तथा जल से संयुक्त शिव और धर्म कंचन के निर्मित करावे । विप्र को दान करके मौन व्रत पूर्वक तैल से रहित पदार्थों का भोजन करे । अपनी शक्ति के अनुसार और दूसरे भी द्विजों को भोजन कराना चाहिए । ।१८–२०।

९७– आदित्यवार व्रत कथन

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम् ।
यच्छान्तये च मर्त्यानां वद नन्दीश तद्व्रतम् ।१
यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्मसनातनम् ।
सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधा जगति स्थितम् ।२

तदाराध्य पुमान् नित्यं प्राप्नोति कुशलं सदा ।
तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥३
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम् ।
तदा शनिदिने कुर्यादेकभुक्तं विमत्सरः ॥४
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
पद्मं द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपंकजम् ॥५
विलिख्य विन्यसेत्सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः ।
दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वन्तमतः परम् ॥६
भगन्तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले ।
महेन्द्रमनिले न्यस्यादित्यञ्च तथोत्तरे ॥७

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे नन्दीश ! जो भी पुरुषों को आरोग्य के करने वाला हो और जो अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हो तथा जो मनुष्यों की शान्ति के लिए हो उसी व्रत को कृपा करके कहिए ।१। नन्दिकेश्वर ने कहा—जो विश्वात्मा का अद्भुत सनातन परम धाम है यह सूर्य-अग्नि और चन्द्र के रूप से इस जगत् में तीन प्रकार का स्थित होता है उसकी आराधना करके पुरुष सदा कुशल की प्राप्ति किया करता है । इसीलिए सदा आदित्यके वारके दिन अर्थात् रविवार को रात्रि में ही अशन करने वाला होना चाहिए ।२-३। जिस समय में हस्त से युक्त सूर्य का वार होवे उस समय में शनिवारके दिन मत्सरता से रहित रहकर एक बार ही भोजन करना चाहिए ।४। रविवार के दिन में रात्रि के समय में द्विजों को भोजन कराकर पत्रों से रक्त चन्दन के पंकज से द्वादश से संयुक्त लिखकर सूर्य का विन्यास करे । नमस्कार से पूर्व में दिवाकर को विन्यस्त करना करना चाहिए 'दिवाकराय नमः' —यह उच्चारण करते हुए ही विन्यास करे । इसके उपरान्त आग्नेय दिशा में विवस्वान् को—नैर्ऋत्य में भग को—पश्चिम दल में वरुण देव को—अनिल कोण में महेन्द्र को तथा उसी प्रकार से उत्तर दिशा में आदित्य का विन्यास करना चाहिए ।५-७।

ईशान्यामस्त्रभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत् ।
कर्णिका पूर्वपत्रेषु सूर्यस्य तुरगान्न्यसेत् ॥८
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले ।
उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायाञ्च भास्करम् ॥९
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम् ।
तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥१०

कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः ।
यस्मादग्नीन्दुरूपस्त्वमतः पाहि दिवाकर ! ॥११

अग्निमीळे नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जे च भास्कर ।
अग्न आयाहि वरद ! नमस्ते ज्योतिषाम्पते ! ॥१२
अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथ निशि तैलविवर्जितम् ॥१३

ईशान दिशा के भाग की ओर अस्त्र की नमस्कार के सहित विन्यास करना चाहिए । कर्णिका के पूर्व पत्र में सूर्य देव के अश्वों का विन्यास करना चाहिए ।८। दक्षिण में अर्यमा नाम वाले का तथा पश्चिम दल में मार्तण्ड का, उत्तर में रवि देवता और कर्णिका में भास्कर का न्यास करके रक्त पुष्पों के सहित जल से जिसमें तिल, अरुण चन्दन भी हो उस पद्म में निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए अर्घ्य देना चाहिए ।८-१०। वह मन्त्र यह है—हे दिवाकर ! आप काल की आत्मा हैं अर्थात् काल स्वरूप ही हैं तथा समस्त भूतों के आत्मा हैं—वेदों की आत्मा और आप विश्वतोमुख हैं क्योंकि आप अग्नि इन्दु रूप वाले हैं अतएव आप मेरी रक्षा करो ।११। अग्निमीळे आपके लिए नमस्कार है । हे भास्कर ! इषेत्वोर्जे आपके लिए प्रणाम है । हे वरद ! आप यहाँ पर पधारिए । हे ज्योतियों के स्वामिन् ! आपके लिए प्रणाम समर्पित है । इस प्रकार से सूर्य देव को अर्घ्य देवे और विसर्जन करके रात्रि में तैलीय पदार्थों से रहित भोजन करना चाहिए ।१२-१३।

४७—विभूति द्वादशी व्रत कथन

शृणु नारद ! वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम् ।
विभूतिद्वादशी नाम सर्वदेवनमस्कृतम् ।
कार्तिके वाथ वैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने ।१
आषाढे वा दशम्यान्तु शुक्लायां लघुभुङ्नरः ।
कृत्वासायन्तनींसन्ध्यां गृह्णीयान्नियमंबुधः ।२
एकादश्यां निराहारःसमभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
द्वादश्यांद्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो ! ।३
तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्च केशव ।
नमो नारायणायेति वाच्यञ्च स्वपता निशि ।४
ततः प्रभात उत्थायकृतस्नानजपःशुचिः ।
पूजयेत् पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।५
विभूतयेनमःपादावशोकायच जानुनी ।
नमःशिवायेत्यूरूच विश्वमूर्ते नमः कटिम् ।६
कन्दर्पायनमोमेढ्रं फलं नारायणाय च ।
दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ।७

नन्दिकेश्वर प्रभु ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए। अब हम भगवान् विष्णु का सर्वोत्तम व्रत के विषय में वर्णन कर रहे हैं। इस व्रत का शुभ नाम विभूति द्वादशी है और यह व्रत ऐसा उत्तम है कि सभी देवगणों के द्वारा नमस्कृत होता है।१। इस व्रत को कई मासोंमें आरम्भ किया जा सकता है। कार्तिक—चैत्र—वैशाख या फाल्गुन मास में करे अथवा आषाढ़ मास में करे। दशमी इसका समाचरण करे तथा शुक्ल पक्ष की आती दशमी में अल्प ही लाकर इसका भोजन करना चाहिए। मनुष्य को भी करना चाहिए उसे सायङ्कालीन संध्या की उपासना करके बुध को इसके नियम को ग्रहण करना चाहिए।२।

एकादशी के दिन बिलकुल भी आहार न करके भगवान् जनार्दन का समभ्यर्चन करूँगा और द्वादशी के दिन द्विजों से संयुक्त होकर हो हे विभो ! मैं फिर भोजन करूँगा—इस प्रकार संकल्प करके नियम ग्रहण करे और फिर प्रार्थना करे हे केशव ! तो यह सब मेरा निर्विघ्न सफल हो जावे । इसके पश्चात् 'नमो नारायण'—अर्थात् नारायणनाथ प्रभु के लिए नमस्कार है—इसका मुख से उच्चारण करके रात्रि में शयन करे । ।३-४। इसके उपरान्त प्रभात वेला में उठकर भगवती सावित्री का अष्टोत्तर शत जाप करना चाहिए और भगवान् पुण्डरीकाक्ष का शुक्ल माल्य एवं अनुलेपन आदि समुचित उपचारों से पूजन करना चाहिए ।५। 'विभूतये नमः'—इस मन्त्र का उच्चारण कर चरणों का यजन करे 'अशोकाय नमः'—इससे जानुओं का—'नमः शिवाय'—इसके द्वारा ऊरुओं का यजन करें ! 'भूत्यै नमः' इससे कटिका अर्चन करना चाहिए ।६। 'कन्दर्पाय नमः'—इससे मेढ्र का तथा 'आदित्याय नमः' इसके द्वारा करों का पूजन करे । 'नमो दामोदराय'—इस मन्त्र से उदर का 'वासुदेवाय नमः'—इससे दोनों स्तनों का अर्चन करना चाहिए ।७।

माधवायेत्युरो विष्णोः कण्ठमुत्कण्ठिने नमः ।
श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति नारद ! ।८
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै ।
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये ।९
शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन् ! नम इत्यभिपूजयेत् ।
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत् ।१०
यः शाठ्यहीनचित्तः स्याद्भक्तिमानुभावसंयति ।
पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्वत्सरत्रयम् ।११
अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम् ।
कुर्यात् पापविनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम् ।१२
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलमाप्नुयात् ।

न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् ।१३
वैष्णवो वाथ शैवो वा भवेज्जन्मनि जन्मनि ।१४
यावद्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।
तावत्स्वर्गे वसेद्ब्रह्मन् ! भूपतिश्च पुनर्भवेत् ।१५

'माधवाय नमः'—इस मन्त्र के द्वारा विष्णु के उर स्थल को 'श्रीवत्सिने नमः' इससे कण्ठ का—'श्रीकण्ठाय नमः' इसका उच्चारण करके मुख का और हे नारद ! 'केशवाय नमः'—इसके द्वारा केशों का अर्चन करे ।८। 'शार्ङ्गधराय नमः' इस मन्त्र को बोलकर पृष्ठ भाग का, 'भवाय नमः' इससे श्रवणों का पूजन करना चाहिए । अपने नाम से 'शंख चक्र असि गदा परशु धारिणे 'सर्वात्मने नमः' इससे हे ब्रह्मन्! प्रभु के शिर का अर्चन करना चाहिए ।९। जिसके पास बहुत ही थोड़ा सा धन है उसको थोड़ा-थोड़ा ही दान आदि से व्रत करके अङ्गों का सम्पादन करना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार ही करे ।१०। जो अत्यन्त ही धनहीन हो और जिसके पास कुछ भी साधन न हों वह भी विधिपूर्वक इसको कर सकता है । उसे तो केवल भगवान् नारायण के प्रति भक्ति होनी चाहिए और वह केवल पुष्पों के द्वारा ही अर्चन का विधान करके दो वर्ष पूर्ण करे ।११। इस विधि से जो भी कोई इस विभूति द्वादशी का व्रत किया करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर अपने कुल-भर के पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है ।१२। सौ सहस्र जन्मों तक भी उसको कभी भी शोक का फल नहीं होता है और उसे कोई भी व्याधि नहीं होती है । न कभी दरिद्रता होती है और न ही बन्धन हुआ करता है ।१३। वह जन्म-जन्म में या तो वैष्णव होता है या शिव का भक्त शैव ही हुआ करता है ।१४। हे ब्रह्मन्! इस व्रत का बहुत बड़ा माहात्म्य है जब तक एक सहस्र युगों की अष्टोत्तर शत संख्या

४८—स्नान महत्त्व वर्णन

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते ।
तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ।१
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् ।
तीर्थञ्च कल्पयेद्विद्वान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ।२
दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः ।
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ।
प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ।३
विष्णोः पादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता ।
पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।४
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ।५
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च ।
दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकायाऽमृता शिवा ।६
विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी ।
क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी ।७
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।
भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ।८

भगवान नन्दिकेश्वर ने कहा—स्नान के किये बिना निर्मलता और भावों की शुद्धि नहीं हुआ करती है। इसलिए मन की विशुद्धि के लिए सबसे आदि में मानव को स्नान करना चाहिए।१। जल चाहे तो कूप आदि से उद्धृत किये गये हों या किसी जलाशय के अनुद्धृत जल हों उन्हीं से स्नान का समाचरण करे। विद्वान् पुरुष जो कि मन्त्रों का पूर्ण ज्ञाता है उसे मूल मन्त्र के द्वारा उन्हीं जलों में तीर्थ की कल्पना

कर लेनी चाहिए ।२। 'नमो नारायणाय' यही मूल मन्त्र बताया गया है । विचक्षण पुरुष को हाथ में दर्भों का ग्रहण करके विधिपूर्वक आचमन होकर परम प्रयत और शुचि हो जाना चाहिए । चार हाथ के प्रमाण से समायुक्त और सभी ओर से चौकोर स्थल की प्रकल्पना करके नीचे लिखे हुए मन्त्रों से भागीरथी गङ्गा का आवाहन करना चाहिए ।३। आवाहन मन्त्र ये है—हे जाह्नवि ! आप भगवान् विष्णु के चरणों से समुत्पन्न हुई हैं । आप परम वैष्णवी और विष्णु के ही देवता वाली हैं । इससे मेरे जन्म मरणान्तिक पाप से मेरी रक्षा कीजिए ।४। भगवान् वासुदेव ने कहा है कि आप साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का निवास स्थल हैं । दिवलोक-भूमि और अन्तरिक्ष में ये सब आप में रहते हैं ।५। हे देवि ! आपका वेदों में नन्दिनी और नलिनी यह नाम है । आपके अन्य भी बहुत से परम पुण्य मय शुभ नाम हैं—जैसे दक्षा, पृथ्वी, विहगकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, शान्ता, शान्तिप्रदायिनी और जाह्नवी हैं । इन परम पुण्यमय नामों का स्नान के समय में कीर्तन करना चाहिए । इन कीर्तन के करने से वहाँ पर भागीरथी गङ्गा जो त्रिपथों में गमन करने वाली है अर्थात् स्वर्ग—भूमि और पाताल इन में जाने वाली है स्वयं सन्निहित हो जाया करती है ।६-८।

सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितः ।
मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुः पञ्चसप्तकम् ।
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः ।९
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके ! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।१०
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ।११
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः ।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै ।

ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै ।१२
देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसः सुराः ।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्भका खगाः ।१३
वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः ।
निराधाराश्च ये जीवा ये च धर्मरतास्तथा ।१४
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ।
कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ।१५

कुशों के सम्पुट में जल को गोविन्द करके सात बार अभिमन्त्रित करे और फिर मूर्द्धा में उसको डाले। फिर तीन-चार-पाँच और सात बार स्नान करना चाहिए। इसी भाँति विधानके साथ अभिमन्त्रित करके मृत्तिका से स्नान करे। अभिमन्त्रित करने का मन्त्र यह है—हे मृत्तिके! आप अश्वों के खुरों से क्रान्त होने वाली है—रथों के चक्रों द्वारा भी क्रान्त होती है। आप विष्णु भगवान् के द्वारा क्रान्त है। हे वसुन्धरे! जो भी मैंने दुष्कृत किए हैं उस सम्पूर्ण पाप का आप संहरण करदो। ।८-१०। हे सुभगे! सौ बाहुओं वाले वराह श्रीकृष्ण ने आपका उद्धरण किया है अर्थात् आपको उठा लिया है। समस्त लोकों के प्रभव (जन्म) के लिए अरणीके समान विनाश करने वाली आप हैं। तात्पर्य यह है कि जन्म-मरण के आवागमन को छुड़ाकर मोक्ष प्रदान किया करती हैं ऐसी आपकी सेवा में मेरा नमस्कार अर्पित है। इस प्रकार से स्नान करके पीछे विधिपूर्वक आचमन करे और स्नान से उठकर फिर परम शुद्ध एवं शुक्ल वस्त्रों को धारण करना चाहिए। इसके अनन्तर त्रैलोक्य की संतुष्टि के लिए तर्पण करना चाहिए ।११-१२। देव यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरायें, सुर, क्रूर, सर्प, सुपर्ण, तरुगण, जम्भक, खग, वायु के आधार वाले प्राणी-जल का आश्रय ग्रहण करने

उन सबकी तृप्ति के लिये मेरे द्वारा यह जल दिया जाता है। देवों के लिये यज्ञोपवीती होकर तर्पण करे और फिर निवीती हो जाना चाहिए ।१३-१५।

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।१६
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुनाऽखिलाः ।१७
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ।
देवब्रह्मऋषीन् सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः ।१८
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले ।
अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ।१९
सुकालिनो बर्हिषदस्तथान्ये चाज्यपाः पुनः ।
सन्तर्प्यं पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः ।२०
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।२१
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् सन्तर्पयेद् बुधः ।२२

भक्ति की भावना से मनुष्यों का तर्पण करे—ब्रह्मा के पुत्रों का तथा ऋषियों का तर्पण करे। सनक, सनन्द और तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख ये सभी मेरे द्वारा प्रदत्त किये हुए जल से सदा तृप्ति प्राप्त करें ।१६-१७। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद इन देवर्षि और ब्रह्मर्षि सबको अक्षतों से मिश्रित जलों से तर्पण करना चाहिए ।१८। इसके पश्चात् अपसव्य करके सव्य जानु भूतल में टेककर अग्निष्वात्त, बर्हिषद, अन्य

बान्धव पितरों का भक्ति भाव से तिलोदक चन्दन के द्वारा भली भाँति तर्पण करना चाहिए । फिर धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल सर्वभूत क्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त के लिए नमस्कार है । वाम हाथ में कुश करने वाले साधु पुरुष को विधि के साथ पितृगणों का तर्पण करना चाहिए ।१६-२२।

पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि ।
सन्तर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।२३
ये बान्धवा अबान्धवा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ।२४
ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रतः ।
अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम् ।
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्य्यनामानि कीर्तयेत् ।२५

पिता आदि का नाम और गोत्र का उच्चारण करके तथा माता-मह आदिकों भी नाम गोत्र कहकर विधिपूर्वक भली भाँति तर्पण करके भक्ति के साथ इस मन्त्र को उच्चारित करे ।२३। जो मेरे बान्धव और अबान्धव हों तथा जो मेरे अन्य जन्म में बान्धव रहे हों वे सब तृप्ति को प्राप्त हों और वह भी सन्तुष्ट हो जावें जो मुझसे अर्थात् मेरे द्वारा दिए हुए जल प्राप्त करने की इच्छा रखता हो ।२४। इसके पश्चात् आचमन करके विधि पूर्वक आगे पद्म का विलेखन करे । पुष्पों के सहित अक्षतों से अरुण चन्दन से समन्वित जल का अर्घ्य देना चाहिए तथा प्रयत्न से सूर्य के नामों का कीर्तन करे ।२५।

नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै ।
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ।२६
नमस्तेशिव ! सर्वेश ! नमस्तेसर्ववत्सल ।
जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ।२७
पद्मासन ! नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ।
नमस्ते सर्वलोकेश ! जगत्सर्वं विबोधसे ।२८

सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग ।
सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ।२६
दिवाकर ! नमस्तेऽस्तुप्रभाकर ! नमोऽस्तुते ।
द्विजर्क्षां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ।२७

विष्णु के रूप वाले आपके लिये नमस्कार है। विष्णुमुख आपके लिए प्रणाम है। सहस्र किरणों वाले के लिए नमस्कार है। सबके तेज स्वरूप आपके लिए नमस्कार है।२५। हे शिव ! आपके लिए नमस्कार है। हे धर्मेश्वर ! हे सब पर वात्सल्य रखने वाले ! आपके लिए नमस्कार है। हे जगत् के स्वामिन् ! दिव्य चन्दन से भूषित ! आपकी सेवा में नमस्कार है। हे पद्मासन ! आपको प्रणाम है। हे कुण्डलों और अङ्गदों से भूषित ! आपको नमस्कार है। हे सब लोकों के ईश ! आपकी सेवा में प्रणाम है। आपही इस सम्पूर्ण जगत् का विशेष बोधन किया करते हैं। आपही सुकृत और दुष्कृत सबको हे सर्वग ! देखा करते हैं। हे सत्य देव ! हे भास्कर ! आपकी सेवा में नमस्कार है। आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए। हे दिवाकर देव ! आपको नमस्कार है। हे प्रभाकर ! आपकी सेवा में प्रणाम है। इस प्रकार से सूर्य को नमस्कार करके तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये। फिर किसी द्विज को तथा गौ का एवं काञ्चन का स्पर्श करके फिर विष्णु गृह को जाना चाहिए। अर्थात् भगवान के मन्दिर में गमन करे।२७-३०।

४६—प्रयाग माहात्म्य वर्णनम्

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पुराकल्पे यथास्थितम् ।
ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत्कथितं मुने ॥१
कथं प्रयागे गमनं नृणां तत्र कीदृशम् ।
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किम्फलम् ।
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किम्फलम् ॥२
कथयिष्यामि ते वत्स ! यच्छ्रेष्ठं तत्र यत्फलम् ।
पुरा हि सर्वविप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम् ।
आप्रयागप्रतिष्ठानात्पुरा वासुकिह्रदात् ।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः ॥३
एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥४
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ।
ततो ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः ॥५
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः ।
न शक्याः कथितुं राजन् ! बहुवर्षशतैरपि ।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ॥६
षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् ।
यमुनां रक्षति सदा सविताऽप्तवाहनः ॥७

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! पुरातन में जो यथा स्थित हो उसको मैं श्रवण करना चाहता हूँ । हे मुने ! देवों में मुख्य ब्रह्माजी ने यथावत् कथन किया है ।१। प्रयाग में गमन किस प्रकार से है और नरों का किस प्रकार का है ? वहाँ पर जो निवास करके मृत हो जाते हैं उनकी क्या गति होती है और जो वहाँ पर पहुँच कर स्नान किया करते हैं उनको क्या फल मिला करता है और सर्वदा प्रयाग में निवास किया करते हैं उनका क्या फल हुआ करता है ? जो हुआ

करता है ? ।२। महर्षि प्रवर मार्कण्डेयजी ने कहा—हे वत्स ! वहाँ पर जो भी परिफलस्य फल हुआ करता है उसको मैं आपको बतलाऊँगा । पहिले प्राचीन समय में समस्त ऋषियों का कथ्यमान (कहा हुआ) मैंने श्रवण किया है ।३। प्रयाग के प्रतिष्ठान से लेकर और वासुकि के ह्रद से पुर के पर्यन्त तक कम्बल और अश्वतर दो नाग हैं और बहु-मूलक नाग है । यही प्रजापति का क्षेत्र है जो तीनों लोकों में विश्रुत है ।३-४। वहाँ पर मनुष्य स्नान करके दिवलोक को चले जाया करते हैं और जिनकी यहीं पर मृत्यु हो जाती है उनका पुनर्जन्म नहीं होता है । इसके बाद में ब्रह्मा आदि देव गण संयुक्त होकर रक्षा किया करते हैं ।५। हे राजन् ! अन्य भी बहुत से तीर्थ हैं जो समस्त पापों के हरण करने वाले और परम शुभ हैं । इन सबको कहा नहीं जा सकता है चाहे सैकड़ों ही वर्षों तक क्यों न वर्णन करता रहूँ । अब मैं अति संक्षेप से प्रयाग का कुछ माहात्म्य कीर्तित करूँगा ।६। जो साठ धनु सहस्र हैं वे जाह्नवी की रक्षा किया करते हैं और सप्त वाहन सविता रवि यमुना की रक्षा किया करते हैं ।७।

प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः ।
मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः ।८
तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः ।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ।९
अधर्मेणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम् ।
स्वल्पमल्पतरं पापं यदा ते स्यान्नराधिप ।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ।१०
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि ।
मृत्तिका लम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ।११
पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र ! तेषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागस्य प्रवेशेतु पापं नश्यति तत्क्षणात् ।१२
योजनानां सहस्रेषु गंगायाः स्मरणान्नरः ।

अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमां गतिम् ।१३
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ।
अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासप्तमं कुलम् ।१४

विशेषता के साथ वासव देव गण प्रयाग की रक्षा करते हैं। उस सम्पूर्ण मण्डल की रक्षा देवों के साथ संहृत होकर भगवान् हरि किया करते हैं ।८। उस वट की सदा शूलपाणि महेश्वर रक्षा करते हैं। समस्त पापों के हरण करने वाले परम शुभ स्थान की रक्षा देवगण किया करते हैं ।९। अधर्म से लोक में आवृत हो उस पद को प्राप्त नहीं करते हैं हे नराधिप! जिस समयमें स्वल्प और स्वल्पतर आपका पाप होता है तो वह जब भी प्रयाग का स्मरण आप करेंगे उसी समय तुरन्त सब संक्षय को प्राप्त हो जायगा। प्रयाग के केवल स्मरण मात्र का ही इतना महान् फल होता है ।१०। उस महान् तीर्थ के दर्शन से तथा उस तीर्थ के नाम का संकीर्तन करने से भी एवं वहाँ पर केवल मृत्तिका के लम्भन मात्र से भी मनुष्य पाप से मुक्त हो जाया करता है ।११। हे राजेन्द्र! वहाँ पर पंचकुण्ड हैं उनके मध्य में जाह्नवी है। प्रयाग के अन्दर प्रवेश करने पर उसी क्षण में तुरन्त पापों का नाश हो जाया करता है। सहस्रों योजनों पर रहते हुए ही गङ्गा के स्मरण करने से दुष्कृतों के करने वाला भी मनुष्य परम गति को प्राप्त किया करता है। १२-१३। गङ्गा के शुभ नाम का कीर्तन करने से पापों से मुक्त हो जाता है और दर्शन करके भद्रोंको देखा करता है अर्थात् दर्शन से भलाइयाँ दिखलाई देती हैं। अवगाहन करके तथा पान करके सात कुल तक को पवित्र कर लिया करता है।१४।

सत्यवादी जितक्रोधी अहिंसायां व्यवस्थितः ।
धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः ।१५
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्विषात् ।
मनसा चिन्तयन् कामानाप्नोति सुपुष्कलान् ।१६
ततो गच्छेत प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ।

५०—भारतवर्ष वर्णन

यदिदं भारतवर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः।
चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससर्जिरे ॥१
एतद् वेदितुमिच्छामः सकाशात्तव सुव्रत!।
उत्तरंश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतां वर! ॥२
एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लोमहर्षणिः।
पौराणिकस्तदा सूत! ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥३
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः।
तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ॥४
अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः।
भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ॥५
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम्।
यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥६
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः।
भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निबोधत ॥७

ऋषिगण ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुव आदि मुनिगण अर्थात् मनु चौदह ही हुए हैं जिन्होंने प्रजाओं के सर्ग की रचना की थी।१। हे सुव्रत! मैं आपके सकाश से यह जानना चाहता हूँ। हे बोलने वालों में परमश्रेष्ठ! आप उत्तर श्रवण को पुनः बोलिए।२। ऋषियों के इस वचन को सुनकर उस समय में लोमहर्षणि पौराणिक सूतजी भावितात्मा ऋषियों से कहा।३। बुद्धि से बहुत बार विचार करके और पुनः पुनः विमर्श करके उस समय में उनको उत्तर श्रवण को कहा था।४। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर इस भारतवर्ष में प्रजाओं का मैं वर्णन करूँगा। भरण करने से और प्रजनन करने से मनु भरत इस नाम से कहा जाता है।५। निरुक्त वचनों के द्वारा

ही यह वर्ष भारत कहा गया है क्योंकि यहाँ स्वर्ग—मोक्ष और मध्यम कहा गया है ।६। अन्य किसी भी स्थान में भूमि के मनुष्यों की कर्म विधि नहीं कही गयी है । इस भारतवर्ष के नौ भेदों को समझ लो । ।७।

इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ।८

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ।९

आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः ।
तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णं सहस्राणि दशैव तु ।१०

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ।
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ।११

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ।१२

तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ।१३

संकल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे ।१४

इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण—यह उनमें सागर से संवृत नवम द्वीप है । यह द्वीप दक्षिणोत्तर एक सहस्र योजनों वाला है । इसका आयतन कन्या कुमारी से गङ्गा के प्रवाह की अवधि है । तिर्यक् और ऊर्ध्व में दश सहस्र विस्तार से युक्त है ।८-१०। द्वीप यह उपनिविष्ट है और सब ओर अन्त भागों में म्लेच्छों से घिरा हुआ है । यवन और किरात इसके अन्त में पूर्व-पश्चिम

में है। मध्य में भाग से ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं। इनका कुल वाणिज्य आदि का वर्णन करते हुए व्यवस्थित है ।११-१२। उनका यह सद्व्यवहार है और परस्पर में वर्तन है। वर्णों का अपने कर्मों से धर्म-अर्थ और काम से संयुक्त है। सकल पंचमी आश्रमों की यहीं पर यथाविधि स्वर्ग और अपवर्ग के लिए मानुष जीवन में प्रवृत्ति होती है ।१३-१४।

यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः ।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः ।१५
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितो ।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ।१६
सप्त चास्मिन् महावर्षे विख्याताः कुलपर्वताः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षवानपि ।१७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः ।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ।१८
अभिज्ञातास्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्रसानवः ।
अन्येभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।१९
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः ।
पिबन्ति बहुला नद्यो गङ्गासिन्धुः सरस्वती ।२०
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयू तथा ।
ऐरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ।२१
गोमती धौतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ।
कौशिकी तु तृतीया च निश्चला गण्डकी तथा ।
इक्षुर्लोहितमित्येता हिमवत्पार्श्वनिःसृता ।२२

जो यह मानव द्वीप है यह तिर्यग्याम कीर्तित किया गया है। जो इस सम्पूर्ण को जीत लेता है वही सम्राट इस नाम से कहा जाया करता है ।१५। यह लोकका तो सम्राट होता है और अन्तरिक्ष को भी

और जैसा है वह लोक में स्वराट् कहा जाता है। अब पुनः विस्तार पूर्वक कहूँगा।१८। इस महावर्ष में सात कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं। उन पर्वतों के नाम ये हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य पारियात्र—ये ही सात कुल पर्वत कहे जाते हैं। उन कुल के सहस्रों समीप में अन्य पर्वत भी होते हैं। इनके पश्चात् ये अन्य कहलाये विभिन्न शिखरों वाले अभिज्ञात हैं। उनके भी अन्य ह्रस्व और ह्रस्वों के उपजीवी परिज्ञात हैं।१०-१६। उनसे मिले हुए जनपद हैं जो सब ओर आर्य और म्लेच्छ हैं। गङ्गा, सिन्धु और सरस्वती इन बहुत-सी नदियों का पान किया करते हैं।२०। शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, ऐरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धौतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चला, गण्डकी, इक्षुर्लोहित, ये सारी नदियाँ हिमवान् के पार्श्व भाग से निःसृत हुई हैं।२१-२२।

वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
पर्णाशा नर्मदा चैव कावेरी महती तथा ।२३
पारा च धन्वतीरूपा विदूषा वेणुमत्यपि ।
शिप्रा ह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताः स्मृताः ।२४
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।
तमसा पिप्पली श्येनी तथा चित्रोत्पलापि च ।२५
विमला चञ्चला चैव तथा च धूतवाहिनी ।
शुक्तिमती शुनी लज्जा मुकुटा ह्रादिकापि च ।
ऋक्षवन्तप्रसूतास्तानथामलजलाः शुभाः ।२६
तापीपयोष्णी निर्विन्ध्या शिप्रा च ऋषभा नदी ।
वेणा वैतरणी चैव विश्वमाला कुमुद्वती ।२७
तोया चैव महागौरी दुर्गमा तु शिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ताः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ।२८
गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणी च वञ्जुला ।

तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेरी चैव तु ।
दक्षिणापथनद्यस्ता सह्यपादाद्विनिःसृताः ।२९

वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, नर्मदा, कावेरी, महती पारा, धन्वतीरूपा, विदुषा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती, कुन्ती, ये समस्त नदियाँ पारियात्र नाम वाले कुल पर्वत के आश्रित रहने वाली हैं ऐसा ही कहा गया है ।२३-२४। मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चंचला, धूम, वाहिनी, शुक्तिमती, शुनी, लज्जा, मुकुटा, हृदिका ये सब नदियों का उद्गम स्थल ऋक्षवान् कुल पर्वत होता है । इनके जल बहुत ही अमल और शुभ हैं ।२५-२६। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, ऋषिका, वेणा, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गन्धा, शिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्य कुल पर्वत से उत्पन्न हुई हैं । ये सब सब परम शीतल और शुभ जल वाली होती हैं ।२७-२८। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिणापथ वाली हैं और सह्याद्रि कुल पर्वत के पाद से विनिःसृत हुई हैं ।२९

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा ह्युत्पलावती ।
मलयप्रसूता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ।३०
त्रिभागा ऋषिकुल्या च इक्षुदा त्रिदिवाचला ।
ताम्रपर्णी तथा मूली शरवा विमला तथा ।
महेन्द्रतनयाः सर्वाः प्रख्याताः शुभगामिनीः ।३१
काशिकासुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
कृपा च पाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवास्तु ताः ।३२
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वगाश्च समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः ।३३
तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ।३४

शूरसेना भद्रकारा बाह्याः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥३५
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह ।
मध्यदेशाजनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः ॥३६

कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा, उत्पलावती—ये सब नदियाँ मलय आदि प्रसूत होने वाली हैं और ये सभी अति शीतल एवं परमशुभ जल वाली हैं ।३०। त्रिसामा, ऋषिक, कृष्णा, इक्षुला, त्रिदिवाचला, ताम्रपर्णी, मूली, शरवा, विमला। ये सब नदियाँ महेन्द्र गिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं और शुभगमन करने वाली शुभ्रवाहा हैं ।३१। ऋषिका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्द वाहिनी, कृपा-पाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमान कुल पर्वत से प्रसव प्राप्त करने वाली हैं। ये सभी पुण्य जलवाली, पुण्यमयी, सर्वोपगमन करने वाली और समुद्र गामिनी हैं। ये सभी इस विश्व की माताएँ हैं और सब पापों के हरण करने वाली तथा परम शुभ हैं ।३२-३३। इन नदियों के जिनके नामों का यहाँ पर अभी उल्लेख किया गया है इनकी सैकड़ों और सहस्रों ही अन्य नदियाँ तथा उपनदियाँ हैं। इनमें से कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, बाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य, किरात, कुल्य कुन्तल, काशिकोशल, अवन्त कलिङ्ग मूक, अन्धक ये सब मध्यदेश के जनपद परिकीर्तित किये गये हैं। ।३४-३६।

सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥३७
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गीयावृक्षादिव्यास्तथौषधीः ॥३८
भरद्वाजेन मुनिना प्रियार्थमवतारिताः ।
ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥३९
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।

पुरन्ध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ।४०
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ।
शकाद्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः ।४१
रामठाः कण्टकाराश्च कैकेया दशनामकाः ।
क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ।४२
अत्रयोऽथ भरद्वाजाः प्रस्थलाः सदसेरकाः ।
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः ।
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधत ।४३

ये सभी मध्य भाग के भूभाग में हैं जहाँ पर गोदावरी नदी है। सम्पूर्ण पृथ्वी में यह प्रदेश परम सुन्दर है।३७। जहाँ पर गोवर्द्धन नाम वाला मन्दर और गन्ध मादन हैं तथा। श्रीराम प्रियार्थ स्वर्गीय वृक्ष तथा दिव्य औषधियाँ हैं।३८। भरद्वाज मुनि के द्वारा प्रियार्थ अवतरित किये गये हैं। इसके पश्चात् उनने पुष्पवर एक मनोरम देश उत्पन्न किया था।३९। बाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, पल्लव, अत्तखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शक, द्रुह्य, पुलिन्द, पारद, हारमूर्तिक, रामठ, कण्टकार, कैकेय, दश-नामक क्षत्रियों के उपनिवेश्य वैश्य तथा वैश्य और शूद्र कुल हैं।४०-४२। अत्रय, भारद्वाज, प्रस्थल, सदसेरक, लम्पक, तलगान और जांगलों के साथ सैनिक ये सब उदीच्य (उत्तर दिशा में होने वाले) हैं। अब जो प्राच्य (पूर्व दिशा में होने वाले) देश हैं उनको भी समझ लो।४३।

अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिर्बहिर्गिरी ।
सुह्मोत्तराः प्रविजया मार्गवागेयमालवाः ।४४
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ।४५
तेषां परे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।

पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च ।४६
सेतुकाः मूषिकाश्चैव कुपथावाजिवासिकाः ।
नवराष्ट्रामाहिषिकाः कलिङ्गाश्चैवसर्वशः ।४७
कारूषाश्चसहैषीका आटव्याः शबरास्तथा ।
पुलिन्दाविन्ध्यमूषिका वैदर्भा दण्डकैः सह ।४८
कुलीयाश्च सिरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ।
तथातैत्तिरिकाश्चैव सर्वे कारस्करास्तथा ।४९

अङ्ग, वङ्ग, मद्गुरक, अन्तर्गिरि, शुह्मोत्तर, प्रविजय, मार्गवागेय मालव, प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, शाल्व, मागध, गोनर्द —ये सब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वाले जनपद कहे गये हैं। ।४४-४५। इनमें भी पर जनपद दक्षिण पथवासी हैं। पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, मूषिक और कुपथावाजि, नासिक ये सब राष्ट्र माहिषिक हैं और कलिङ्ग सभी ओर हैं ।४६-४७। कारूष, सहैषीक, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्य मूषिक, वैदर्भ, दण्डक कुलीय, सिराल, रूपस, तापस, तैत्तिरिक तथा सब कारस्कार हैं ।४८-४९।

वासिक्याश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ।
भानुमच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैस्तथा ।५०
काच्छीकाश्चैवसौराष्ट्रा आनर्ताअर्बुदैः सह ।
इत्येतेअपरान्तांस्तुशृणु ये विन्ध्यवासिनः ।५१
मालवाश्चकरूषाश्चमेकलाश्चोत्कलैः सह ।
औण्ड्रामाषादशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ।५२
स्तोशलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधैः सह ।५३
अरूपाः शौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः ।
एते जनपदाः ख्याताविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ।५४

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निराहारा: सर्वगाश्च कुपथा अपथास्तथा ॥५५
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्भा: समुद्गका: ।
त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरै: सह ॥५६
चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नश: ॥५७

जो शल्य धार्मिक हैं और जो नर्मदा के अन्तर में हैं—भानुकच्छ, समाहेय, सारस्वत, काश्मीक, सौराष्ट्र, आवर्त, अर्बुद—ये सब अपर हैं । अब उनका श्रवण करो जो विन्ध्यवासी हैं—मालव, करूष, मेकल, उत्कल औण्ड्र, माष, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोशल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुमुर, तुम्बर, षट्सुर, नैषध, अरूप, शौण्डिकेर, वीतिहोत्र—अवन्ति ये सब जनपद विन्ध्याचल के पृष्ठ भाग पर निवास करने वाले बताए हुए हैं ।५०-५४। इसके अनन्तर उन देशों को बतलाता हूँ जो पर्वतों का आश्रय ग्रहण करने वाले हैं । निराहार, कुपथ और अपथ हैं अर्थात् कुछ बिना आहार वाले और कुछ बुरे मार्ग वाले बिना मार्ग वाले हैं । कुथ के आवरण करने वाले—ऊर्णादर्भ, समुद्गक त्रिगर्त, मण्डल, किरात और चामर हैं ।५५-५६। मुनिगण ने इस भारतवर्ष में चार युगों का वर्णन किया है । ये चार युग (कृतयुग) त्रेता—द्वापर और चौथा कलियुग है—इस तरह से चार युग हैं । अब मैं उनका पूर्णतया ऊपर से ही निसर्ग बतलाऊँगा ।५७।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय: उत्तरं पुनरेव ते ।
शुश्रूषवस्तमूचुर्वै प्रणम्य लौमहर्षणिम् ॥५८
यच्च किम्पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च ।
आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया ॥५९

जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषाञ्चिवाम्बर ! ।
द्वीपानां वासिनान्तेषां वृक्षाणां प्रब्रवीहि नः ।६०
पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः ।
उवाच महर्षिर्दृष्टं पुराणाभिमतं यथा ।६१
शुश्रूषवस्तु यद्विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः ।
जम्बूवर्षः किंपुरुषः सुमहान्नन्दनोपमः ।६२
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता ।
जायन्ते मानवास्तत्र सुतप्तकनकप्रभाः ।६३

मत्स्य भगवान् ने कहा—इन ऋषियों ने यह श्रवण करके पुनः उत्तर श्रवण करने की इच्छा वाले उन ऋषियों ने लोमहर्षण से अच्छी तरह से कहा ।५८। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने भारत का वर्णन तो कर दिया है । अब जो किम्पुरुष वर्ष तथा हरिवर्ष है उनका भी वर्णन यथातत्त्व करने की कृपा कीजिए ।५९। हे शिवाम्बर ! जम्बू खण्ड का विस्तार तथा अन्य द्वीपों का भी विस्तार उनके वासियों के एवं वृक्षों के विषय में हमको बतलाइए ।५९-६०। उस समय में विप्रों के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये महर्षि ने विशेष रूप से प्रश्नों के अनुसार ही जैसा कि ऋषियों ने देखा था और जो पुराणों में अभिमत था कहा था ।६१। महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र प्रवरो ! आप लोग सब जो भी श्रवण करने की इच्छा वाले हो उसको अब अतन्द्रित होकर श्रवण कीजिये । जम्बू वर्ष और किम्पुरुष सुमहान् और नन्दन के समान है । दश सहस्र वर्ष तक किम्पुरुष में स्थिति कही गई है। वहाँ पर भली भाँति तपाये हुए सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले मानव उत्पन्न हुआ करते हैं ।६२-६३।

वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः ।
तस्य किम्पुरुषाः सर्वे पिबन्तो रसमुत्तमम् ।६४

अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ।
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसःसमाः ॥६५
ततः परं किम्पुरुषात् हरिवर्षं प्रचक्षते ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते यत्र मानवाः ॥६६
देवलोकच्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः ।
हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ॥६७
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम् ।
एकादशसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम् ॥६८
मध्यमं तन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः ॥६९
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥७०

परम पुण्यमय किम्पुरुष वर्ष में एक मधु के ग्रहण करने वाला प्लक्ष को बतलाया गया है। उस प्लक्ष के सर्वोत्तम रस को सभी किम्पुरुष पान करने वाले हैं ॥६४॥ वे सभी आमय (रोग से रहित-शोक से वर्जित और नित्य ही परम मुदित मन वाले हैं। वहाँ के नर सुवर्ण के तुल्य वर्ण वाले हैं और स्त्रियाँ भी इतनी अधिक सुन्दरी हैं कि वे सब अप्सराएँ ही कही गयी हैं ॥६५॥ इसके आगे अर्थात् किम्पुरुष के पीछे हरि वर्ष कहा जाता है जहाँ पर महान् रजत के तुल्य मानव समुत्पन्न हुआ करते हैं ॥६६॥ सभी वहाँ के मनुष्य देव लोक च्युत हुए हैं और सब प्रकार से बहुत रूप वाले हैं। उस हरि वर्ष में सब मनुष्य परमशुभ इक्षु का रस पीया करते हैं ॥६७॥ उन मनुष्यों को वृद्धता कुछ भी बाधा नहीं किया करती है इसीलिए वे लोग चिरकाल तक जीवित रहा करते हैं उन पुरुषों की आयु ग्यारह सहस्र वर्ष की बतलायी गयी है ॥६८॥ मध्यम जो हमने बतलाया है वह इलावृत वर्ष नाम वाला है। वहाँ पर कभी भी सूर्य का ताप नहीं रहता है और वहाँ मानव भी जीवित नहीं रहा करते हैं ॥६९॥ इलावृत वर्ष में नक्षत्रों के सहित सूर्य और चन्द्र

दोनों ही प्रकाश रहित रहते हैं और वहाँ के रहने तथा उत्पन्न होने वाले मानवों की पद्म के सदृश प्रभा होती है—पद्म के तुल्य ही उनका वर्ण होता है और पद्म पत्र के समान ही उनके नेत्र हुआ करते हैं। ।७०।

पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
जम्बूफलरसाहारा अनिष्यन्दाः सुगन्धिनः ॥७१
देवलोकच्युताः जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः ॥७२
आयुःप्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षे इलावृते ।
मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण तु ॥७३
सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः सनातनः ।
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥७४
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः ।
योजनानां सहस्रं च शतधा च महान् पुनः ॥७५
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति ।
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ॥७६
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः ।
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते ॥७७
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान् ।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखं च तथाविधम् ॥७८

इलावृत में जो भी उत्पन्न हुआ करते हैं उन सभी मनुष्यों में पद्म के समान गन्ध हुआ करती है। वे सब जम्बू फलों के रस का आहार करने वाले निष्यन्दन से रहित और सुगन्ध वाले होते हैं ।७१। वे सब देवलोक से ही च्युत होने वाले हैं और महान रजत के वस्त्रधारी हैं। उन नरोत्तम की आयु तेरह सहस्र वर्षों की हुआ करती है ।७२। जो इलावृत में रहते हैं वे सब अपनी पूर्ण आयु तक जीवित रहा करते

है अर्थात् मध्य में किसी की भी मृत्यु का अवसर वहाँ पर आता ही नहीं है । मेरु पर्वत के दक्षिण पार्श्व में और निषध के उत्तर की ओर एक महान् सुदर्शन नाम वाला जामुन का वृक्ष है जो हमेशा ही फलने वाला मनोरम है । उस वृक्ष पर नित्य ही पुष्प और फल रहा करते हैं ।७३-७४। उसी वनस्पति के नाम से जम्बूद्वीप समाख्यात हो गया है । उस वृक्ष का महान् उत्सेध (ऊँचाई) है जो एक सहस्र एक सौ योजन है । वह वृक्षराज दिव लोक को समावृत करके ही वहाँ पर स्थित रहता है । उसके जम्बूफल भी बड़े ही विशाल होते हैं जो कि उनके रस से एक सरिता की रचना होकर वह प्रसर्पण किया करती है वही नदी मेरु की प्रदक्षिणा करके उस जम्बू के मूल में पुनः जाती थी । रसापूर्ण में वहाँ के प्राणी सर्वदा प्रसन्न होते हुए उस जम्बू रस का पान किया करते हैं ।७५-७७। उस जम्बू वृक्ष के रस को पीकर उन्हें फिर बुढ़ापा कभी बाधा नहीं किया करती है । उन्हें न तो कभी क्षुधा ही सताती है और न कोई क्लेश ही हुआ करता है तथा उस प्रकार का कोई दुःख ही हुआ करता है ।७८।

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भासुरञ्च यत् ॥७९
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः ।
स्कन्नस्तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम् ॥८०
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः ।
ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान् ॥८१
रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते ।
हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः ॥८२
सर्वे नागा निषधे शेषवासुकितक्षकाः ।
महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः ॥८३
नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन् ।
दैत्यानां दानवानाञ्च श्वेतः पर्वत उच्यते ॥८४

शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितॄणां प्रतिसञ्चरः ।
इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ।८५
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।
तेषां वृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः ।
अशक्या परिसंख्यातु श्रद्धेया च बिभूषिता ।८६

वहाँ पर जाम्बूनद नाम वाला सुवर्ण देवों का भूषण होता है जो इन्द्रगोप के सदृश और भासुर हुआ करता है ।७९। वहाँ फलों का रस सब वर्णों के वृक्षों का परम शुभ होता है। जब रसन्स होता है तो वह शुभ देव काञ्चन हो जाता है ।८०। उनका मूत्र और पुरीष आठों दिशाओं में सब ओर जाता है। ईश्वर के अनुग्रह से भूमि-मुक्त उनको ग्रसा करती है ।८१। राक्षस-पिशाच-यक्ष सब ये हैमवत हैं। हेम कूट में गन्धर्व और अप्सरा गण जानने चाहिए अर्थात् गन्धर्व और अप्सराएँ रहा करते हैं। शेष-वासुकि और तक्षक आदि सर्प नाग उसका सेवन किया करते हैं। महा मेरु में तेतीस याज्ञिक क्रीड़ा किया करते हैं ।८२-८३। नीलवाँए और वैडूर्यवान् में सिद्ध और ब्रह्मर्षि गण निवास किया करते थे। दैत्यों और दानवों का पर्वत श्वेत कहा जाता है ।८४। शृङ्गवान् श्रेष्ठ पर्वत पितृगण का सञ्चार स्थल है। ये नौ वर्ष बतला दिए हैं ।८५। ये भूतों के द्वारा भी निविष्ट हैं—गतिमान् हैं। इनकी वृद्धि देव मानुषों के द्वारा बहुत प्रकार की दिखलाई दिया करती है। यह परिसंख्या करने में अशक्य है—श्रद्धा करने के योग्य है और बिभूषित है ।८६।

५१—हिमवद् वर्णनम्

आलोकयन्नदीं पुण्यां तत्समीपहृतश्रमः ।
स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥१
समुल्लिखद्भिर्बहुभिर्नभः शृङ्गैः सुपाण्डुरैः ।
पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभम् ॥२
नदीप्रवाहसञ्जातमहापल्वलैः समन्ततः ।
अशब्दं नान्यसलिलं शीततोयं मनोरमम् ॥३
देवदारुवनैर्नीलैः कृताधोवसनं शुभम् ।
मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः ॥४
क्वचिन्मेघकृतोष्णीषं चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित् ।
हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद्धातुविमिश्रितम् ॥५
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा ।
शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कुलम् ।
सालक्तकैरप्सरसां सुरक्तं चरणैः क्वचित् ॥६
क्वचित्संपुष्पवृक्षाढ्यं क्वचिच्च तमसावृतम् ।
दरीमुखैः क्वचिद्भीमैः पिबन्तं सलिलं महत् ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—परम पुण्यमयी नदी का अवलोकन करता हुआ उसके समीप में हृतश्रम अपना होकर वह जाता हुआ ही महान् गिरि हिमवान् को देखता था ।१। वह हिमवान् पाण्डुर वर्ण वाले—आकाश को छूने वाले बहुत से शिखरों से युत है और पक्षियों के संचारों के बिना परम शुभ और सिद्धगति वाला है ।२। नदियों के प्रवाह के कारण समुत्पन्न महान् घोर भंवरों से शब्द और अन्य कोई भी शब्द सुनाई नहीं देता है और वह परम मनोरम तथा शीतल जल वाला है ।३। देवदारु के नील वर्ण वाले वन जो उसके नीचे वाले भाग में हैं वे ही मानों उसका अतीव शुभ अधोवसन है और जो उसके ऊपर

मेघों का विराम रहता है मेरी उसका उत्तरीय वस्त्र है। ऐसा यह शैल एक राजा ही की भाँति दिखलाई देता था।३। कहीं वर्षा का जो मेघ है वही मानो उसके मस्तक की पगड़ी है। कहीं पर चन्द्रमा और सूर्य ही उसके मुकुट की शोभा किया करते हैं। हिमालय सर्वदा हिम से अनुलिप्त समस्त अङ्गों वाला है और कहीं पर धातु से भी चित्रित है। अर्थात् हिमालय में जहाँ-तहाँ धातुयें भी दिखलाई दिया करती हैं।४। इस पन्नगपति की भाँति चन्दन से अनुलिप्त अङ्गों वाला है और ग्रीष्म ऋतु में भी शीत प्रदान करने वाला है तथा विकट विशाल शिलाओं से संकीर्ण है। कहीं पर अनेक गिरने तथा हुआ है ऐसे अप्सराओं के चरणों से भी चिह्नित है।५। हिमालय ऐसा एक परम विशाल पर्वत है कि कहीं पर तो इसमें सूर्य की किरणों का संचरण किसी स्थल पर ऐसी विशाल गुफायें हैं जो महान् भीषण दिखलाई दिया करती हैं और उनके द्वारा सलिल का लाभ अत्यधिकता के साथ किया करता है।६।

क्वचिद्विद्याधरगणैः क्रीडद्भिरुपशोभितम् ।
उपगीतं तथा मुख्यैः किन्नराणां गणैः क्वचित् ।८
आपानभूमौ गन्धर्वैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित् ।
पूर्णैः सन्तानकादीनां विटपैस्तमुपशोभितम् ।९
पुष्पाश्रिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित् ।
मर्दिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ।१०
शिखण्डपवनैर्दर्शैर्नीलमायूरमण्डितैः ।
क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमनल्पफलरुचिरं शुभम् ।११
तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम् ।
मृगैर्यथानुचरितं दन्तिभिन्नपराङ्गमम् ।१२
गजैः सिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवम् ।

दृश्यते न च संभ्रान्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३

सहायश्च तापसैर्वैव कुञ्जदेशैरलङ्कृतः ।

रत्नैरनेकविधसमुत्पन्नैस्त्रैलोक्यं समलङ्कृतम् ॥१४

इस हिमालय पर्वत राज पर कहीं पर कुछ ऐसे भी स्थल विद्यमान हैं जो क्रीड़ा करने वाले विद्याधर गणों के द्वारा उपशोभित रहा करते हैं और किसी स्थान पर मुख्य किन्नरों के गण गीतों का गायन किया करते हैं ।७। कहीं पर आपान भूमि में गन्धर्वों और अप्सराओं के चलित (पीते हुए) कन्दरानक आविसेवक न ड़ों के पुष्पोंसे वह उपशोभित रहता है ।८। कुछ स्थल ऐसे भी इस हिमालय में हैं जो गन्धर्वों की सोकर उठाई हुई पुष्पों की मूर्छित शय्याओं से समाकीर्ण और मनोरम हैं ।१०। कहीं पर ऐसे भी स्थल हैं जो गोल वर्ण की आकृति घास से विभूषित और विनय सर्वत का एकदम निरोध रहता हो ऐसे वंशों से तथा कुसुमों से युक्त और अत्यन्त ही अचिन्त्य एवं शुभ हैं ।११। यह पर्वत हिमवान् तपस्वियों की पूर्णतया रक्षा करने वाला है और जो काम वासना वाले लोग हैं उनको तो अत्यन्त ही दुर्लभ है । यह हाथियों के द्वारा छिन्न महा द्रुमों वाला है तथा मुक्ता की भाँति वस्तु दुर्लभ है ।१२। यह हिमवान् ऐसा गिरि है जिसमें सिंहों की गर्जना की भीम (भयावह) ध्वनि नहीं होती है जिससे कि भयभीत अन्य जन्तु कोई भीति पूर्वक वहाँ विचरण करें । वहाँ पर हाथियों का समुदाय संभ्रान्त और समाकुल नहीं दिखलाई दिया करता है ।१३। जिसमें कुञ्जदेश तापसों से सदा समलंकृत रहा करते हैं । हिमालयमें अनेक अद्भुत महा मूल्यवान् रत्न समुत्पन्न हुआ करते हैं जिनसे यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य विभूषित होता है ।१४।

अहीनसरणं नित्यमहीनगणसेवितम् ।

अहीनं पश्यति गिरिं महीनं रत्नसम्पदा ॥१५

अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः ।

यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम् ॥१६

महाप्रपातप्रभवाभ्रसारावविरावाम्बुभि ।
वायुनीतैः सदा तुषारकुलदेशं क्वचित् क्वचित् ॥१७
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः ।
नित्यमर्कतापविधमैरनभ्यंसैर्नभसा युतम् ॥१८
देवदारुमहावृक्षशाखाभ्यानिरन्तरैः ।
संघरतन्वालनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम् ॥१९
हिमवच्छवमहाशृङ्गं प्रपातपतननिर्भरम् ।
गम्भीरकन्दराम्बुविषमं हिमशैलकन्दरम् ॥२०
इत्थं तं नातिनिकम्यभूमिं महानुभावः स तु भद्रनाथः ।
पश्चात् भर्गेन भूधर समीपस्थानं तदा किञ्चिद्विश्रान्तवाद ॥२१

वह हिमवान् नित्य ही महर्षियों का रक्षक अर्थात् आश्रय तथा रक्षक होता है और महर्षियों के द्वारा ही सभी भाँति सेवित रहा करता है। जो मनुष्य दीन होता है वही इस गिरि को देखता है तथा वह समस्त फलों की सम्पत्ति भी वहीं से ही रहता है ॥१६॥ इसमें बहुत ही स्वल्प तपश्चर्या से शीघ्र योग सिद्धि की प्राप्ति कर लिया करते हैं जिसकी केवल इच्छा ही सब प्रकार के कल्मषों का तुरन्त ही विनाश हो जाया करता है ॥१६॥ महान् प्रपातों (झरनों) के प्रपात में अन्य प्रपात आदि में बल जलों के द्वारा जो कि वायु के द्वारा इधर-उधर किए जाते हैं यह कहीं-कहीं पर पूर्णतया तुषार युक्त प्रदेश वाला रहता है। कहीं पर तो इसकी चोटियाँ ऐसी हैं कहीं जल समालब्ध रहा करता है और कहीं पर ये ही शिखरें अत्यन्त ऊँची हैं जो नित्य ही सूर्य के ताप से विवर्जित हैं एवं अगम्य हैं। इसी प्रकार से यह सबसे युक्त है ॥१७-१८ इस गिरिराज में ऐसे प्रदेश हैं जहाँ पर देवदारु के महान् विशाल वृक्षों का समूह रहता है और उनकी शाखायें ऐसी फैली रहा करती हैं कि कुछ भी अवकाश नहीं रहता है अर्थात् एक दूसरे वृक्ष से व्याप्त है। सर्पों के बड़े बड़े फणों से विषम बनी वाले प्रदेश से यह शोभित

युक्त है ।१९। वर्ष के ही काल से युक्त इसकी महान शिखरें विराजमान रहा करती हैं और सैकड़ों ही प्रपातों का निर्झरण इसमें होता रहता है। बाण के द्वारा ही प्राप्त करने के योग्य जल से यह अत्यन्त विषम है और इसकी जो कन्दरायें हैं वे भी सर्वदा हिम (बर्फ) से संरुद्ध रहा करती हैं ।२०। अत्यन्त सुन्दर नितम्बों की भूमि वाले उस गिरिराज को देखकर ही वह महानुभाव चन्द्रनाथ वहाँ पर बहुत ही आनन्द के साथ भ्रमण किया करते थे और उस आश्रममें कोई शमीत स्थान उन्होंने प्राप्त कर लिया था ।२१।

५५—कैलास वर्णन

तस्याश्रमस्योत्तरतस्त्रिपुरारिनिषेवितः ।
नानारत्नमयैः शृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः ।१
मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः ।
तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः ।२
अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः ।
कैलासपादसम्भूतं रम्यं शीतजलं शुभम् ।३
मन्दारपुष्परजसा पूरितं देवसन्निभम् ।
तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा ।४
दिव्यञ्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् ।
प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यं सौगन्धिकंगिरिम् ।५
सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति ।
चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुभ्रो रत्नसन्निभः ।६
तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम् ।
तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा ।७

सूतजी ने कहा—इनके आश्रम से उत्तर दिशा की ओर भगवान्
त्रिपुरारि शिव के द्वारा निषेवित तथा कल्पद्रुमों से संयुत एवं अनेक
प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण शिखरोंसे समन्वित हिमवान् के मध्यमें पृष्ठ
पर कैलास नाम वाला पर्वत है उसमें कुबेर अपनी गुह्यकों कोषों के साथ में
लेकर निवास किया करते हैं ।१-२। वहाँ पर अलकापुरी का स्वामी
कुबेर राजा सर्वदा अप्सराओं से अनुगत होकर प्रसन्नता का अनुभव
किया करते हैं । वहाँ कैलास के पाद से समुत्पन्न परमरम्य एवं शुभ
शीतल जल है ।३। जो सदा मन्दार नाम वाले देववृक्ष के रज पराग से
पूरित रहा करता है और देव के ही सदृश है । उसी जल से एक
मन्दाकिनी नाम वाली सरित जो परम दिव्य है और अत्यन्त शुभ है
वहन किया करती है ।४। उस नदी के तीर पर ही वहाँ पर अतीव
दिव्य एवं महान वन है जिसका शुभ नाम नन्दन है । कैलास गिरि से
पूर्वोत्तर में एक अति दिव्य शोभाशालि गिरि है ।५। यह समस्त धातुओं
से परिपूर्ण दिव्य और पर्वत के प्रति सुन्दर वेल वाला है । एक चन्द्रप्रभ
नाम वाला भी वहाँ पर पर्वत है जो परम शुभ्र और रत्न के तुल्य है
।६। उसके ही समीप में एक परम दिव्य अच्छोद नाम से प्रसिद्ध सरो-
वर है । उस सर से एक शुभ अच्छोदिका नाम वाली नदी उत्पन्न
होती है ।७।

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः महानुगः ।८।
यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकैः परिवारितः ।
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदका शुभा ।९।
महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम् ।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधि गिरिम् ।१०।
मनः शिलामयं दिव्यं सुवेलपर्वतं प्रति ।
लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ।११।

तस्य पादे महद्दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः ।
तस्माद् गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी ।१२
दिव्यारण्यं विशोकञ्च तस्य तीरे महद्वनम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी ।१३
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः ।
कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधी गिरिः ।१४

उस अच्छोदिका सरिता के तट पर एक अत्यन्त शुभ-दिव्य और महान चैत्ररथ नाम वाला वन है । उसमें गिरि पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र निवास किया करते हैं ।८। यह यक्षों का अत्यन्त क्रूर सेनापति है जो सर्वदा गुह्यकों से परिवारित रहा करता है और वहाँ पर परम पुण्यमयी मन्दाकिनी नाम वाली अच्छोदिका शुभ नदी बहा करती है ।९। यही मण्डल के मध्य में महोदधि में प्रविष्ट होने पर कैलाश के दक्षिण पूर्व में शिव सर्वौषधि गिरि है ।१०। मनःशिला से परिपूर्ण पर्वत के प्रति सुवेल और त्रिकूट को लिखार वाला—लोहित नाम वाला एक महान पूर्ण शृंग गिरि है जिसकी प्रभा सूर्य के समान है । उस पर्वत के निचले भाग में महान् दिव्य लोहित नाम वाला ही एक सर है । उसी सर से लौहित्य नाम वाला एक विशाल नद बहन किया करता है ।११-१२। उस वन के तीर एक अति महान्-दिव्य विशोका वन है । उसमें पर्वत पर मणिधर यक्ष अधिष्ठित निवास किया करता है । वह परम सौम्य और सुधार्मिक गुह्यकों से चारों ओर से घिरा हुआ रहा करता है । कैलाश पर्वत से पश्चिमोत्तर दिशा में ककुद्मान् नाम वाला औषधियों का गिरि है ।१३-१४।

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः ।
तदञ्जनन्त्रैः ककुदं शैलं त्रिककुदं प्रति ।१५
सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः ।
तस्य पादे महद्दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम् ।१६

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी ।
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नामविश्रुतम् ।१७
कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ।१८
कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिगिरिः ।
अरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ।१९
भवस्य दयितः श्रीमान्पार्वतोहेमसन्निभः ।
शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः ।२०
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ।
शृङ्गवान् सुमहद्दिव्यो दुर्गः शैलोमहाचितः ।२१
तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।
तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ।२२

इस वन-भाग में कलुषघ्नी नदी की उत्पत्ति होती है । वह विमल जल वाली त्रिककुद के प्रति वेगवती होती है ।१५। वहीं पर सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्युत नाम वाला गिरि है । उस पर्वत के पास में एक अत्यन्त दिव्य मानस नाम वाला सरोवर है जो सदा सिद्धों के द्वारा सेवित रहा करता है ।१६। उस सरोवर से परम पुण्यमयी लोकों को पावन कर देने वाली सरयू नाम वाली नदी समुत्पन्न हुआ करती है । उसके तट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज नाम से प्रसिद्ध दिव्य वन है ।१७। वहीं पर कुबेर का अनुचर वशी प्रहेति का पुत्र ब्रह्मधाता निवास किया करता है वह राक्षस अनन्त विक्रम वाला था ।१८। कैलास पर्वत से पश्चिम दिशा में एक औषधि-दिव्य सर्वौषधि गिरि यह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतों में श्रेष्ठ-अरुण वर्ण वाला और रुक्म (सुवर्ण) धातु से विभूषित होता है ।१९। यह शातकौम्भ मय दिव्य शिलाओं के जालों से चारों ओर समाचित है और हेम सदृश श्री सम्पन्न यह पर्वत भगवान् भव का अत्यन्त प्यारा है ।२०। सैकड़ों

की संज्ञा वाले लावनीय शिखरों से दिवलोक का मग में उल्लेख न करता हुआ—महान् विषय शृङ्गवाला लक्षाचित नील दुर्ग के समान है ।२१। उस शृङ्ग पर धूम्रलोचन गिरिश निवास करते हैं । उस पर्वत पाद भाग से शैलोद नाम वाला एक सरोवर का प्रभव (उत्पत्ति) होता है ।२२।

तस्मात् प्रसवते पुण्या नदी शैलोदिका शुभा ।
सा चक्षुषी तयोर्मध्ये प्रविष्टा पश्चिमोदधिम् ।२३
अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधो गिरिः ।
गौरन्तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ।२४
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः ।
तस्यपादे महद्दिव्यं सरः काञ्चनबालुकम् ।२५
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ।
गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः ।२६
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गंगातोयाप्लुतास्थिकाः ।
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।२७
सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते ।
यूपा मणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मयाः ।२८
तत्रेष्ट्वा क्रतुभिः सिद्धः शक्रः सुरगणैः सह ।
दिव्यच्छायापथस्तत्र नक्षत्राणान्तु मण्डलम् ।२९

उस सर से परम पुण्यमयी और अत्यन्त शुभ शैलोदिका नाम वाली नदी समुत्पन्न होकर बहती है । यह उन दोनों के मध्य में चक्षुषी पश्चिम सागर में प्रविष्ट होती है ।२३। कैलास के उत्तर भाग में सर्वौषध शिव गिरि है । यह श्रेष्ठ पर्वत गौर हरिताल मय ही होता है । हिरण्य शृङ्ग बहुत ही महान् और दिव्यौषधियों से परिपूर्ण गिरि है । उसके पादों के भाग में एक महान् दिव्य सर है जिसकी बालुका काञ्चनमयी है । वहीं पर एक परम रम्य बिन्दुसर नाम वाला सरो-

पर है जहाँ पर गङ्गा के लाने के लिए तपश्चर्या करता हुआ राजर्षि राजा भगीरथ बहुत से वर्षों तक रहा था ।२४-२६। राजर्षि का कथन था कि पहिले गङ्गा के पवित्र जल में स्नान मेरे अस्थियाँ त्रिलोक को चली जावें । वहीं पर त्रिपथ गामिनी देवी सर्व प्रथम प्रतिष्ठित हुई थी ।२७। सोमपाद में समुत्पन्न हुई वह सात धाराओं में प्रविभक्त की जाती है । वहाँ पर मणियों परिपूर्ण यूप हैं और सुवर्ण से परिपूर्ण अर्थात् स्वर्ण निर्मित विमान हैं ।२८। वहाँ पर सुरगणों के सहित इन्द्रदेव ऋतुओं के द्वारा यजन करके सिद्ध हुआ था अर्थात् सिद्धि प्राप्त की थी । वहाँ पर नक्षत्रों का मण्डल त्रिलोकि का निर्मल छाया पथ है ।२९।

दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ।
अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वा भुवंगता ।३०
भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया ।
तस्या ये बिन्दवः केचित्क्रुद्धायाः पतिता भुवि ।३१
कृतन्तु तैर्बहुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम् ।
ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा तथा ।३२
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ।
भित्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शङ्करम् ।३३
अथावलेपनं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धन्तु शंकरः ।
तिरोभावयितु बुद्धिरासीदङ्गेधृतां नदीम् ।३४
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः ।
धमनीसन्ततं क्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम् ।३५

रात्रि के समय में वह देवी त्रिपथगा भासुर दिखलाई दिया करती है । वह अन्तरिक्ष और त्रिलोकि को भावित करके पीछे भू लोकमें गई थी ।३०। आरम्भ में जब यह इस भूलोक में आई थी भगवान् शिव के मस्तक पर पतित हुई थी और वहीं पर योग माया के द्वारा यह संरुद्ध

हो गई थी। उस समय में संरोध होने के कारण उसको महान् क्रोध उत्पन्न हो गया था। उस क्रुद्धावस्था वाली उसकी भी कुछ बिन्दु इस भू मण्डल में पतित हुई थी। उनसे यहाँ पर बहुत से सरों की रचना हो गई थी। उसके पश्चात् यह बिन्दुसर कहा गया है। इसके अनन्तर भीमभव ने निरुद्ध हुई उसका महान क्रोध से युक्त देवी के क्रूर अभिप्राय समझ लिया था। उसका यही चिकीर्षित था कि शिव के मस्तक का भेद न करके अपने स्रोत के द्वारा शङ्कर को ग्रहण करके पाताल लोक में प्रवेश कर जाऊँगी ।२१-२३। इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर उसके क्रोध युक्त इस प्रकार के अवलेपन (गर्व घमण्ड) को जानकर उनकी ऐसी बुद्धि हो गई थी कि उस नदी को अपने ही अङ्गों में तिरोभूत कर लिया जावे ।२४। इसी बीच में उस राजर्षि भगीरथ को भगवान् शिव ने अपने समक्ष ही में खड़ा हुआ देख लिया था जो धमनियों से सन्तत अंग वह था और क्षुधा से व्याकुलित इन्द्रियों वाला ही रहा था ।२५।

अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थं पूर्वमेव तु ।
बुद्ध्वास्य वरदानं तु ततः कोपं न यच्छत ।२६
बद्धापो धमनं धृत्वा बद्धुतां सारवन्नदीम् ।
ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा ।२७
नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः ।
ततो विसर्जयामास सप्तस्रोतांसि गङ्गया ।२८
त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रीण्यथैव तु ।
स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा ।२९
नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगा ।
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्रस्ता वै प्रतीच्यगाः ।४०
सप्तमी त्वन्वगात्तासां दक्षिणेन भगीरथम् ।
तस्मात् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ।४१

शिव ने जैसे ही उसको देखा उनको उसी समय ध्यान हो आया था कि इस राजर्षि ने तो अत्यधिक समय तक तपस्या करके इस नदी के यहाँ लाने के लिए ही मुझे पूर्णतया प्रसन्न एवं तुष्ट कर लिया था कि मैंने तब उसको वरदान भी दिया था—वह सब स्मरण पथ में आकर फिर जो क्रोध उस समय में उन्हें आया था वह शान्त हो गया था।३६ ब्रह्माजी का कथित वचन का श्रवण करके उस नदी को धारण कर रहे थे। इसके पश्चात् उस संरुद्ध हुई नदी को अपने ही तेज से विसर्जित कर दिया था।३७। राजा भगीरथ के लिए उसकी तत्कृत तपस्या से नदी को छोड़ देने को भगवान् शिव तोषित हो गये थे और फिर वज्रा के द्वारा सात स्रोतों का विसर्जन कर दिया गया था।३८। उनमें से तीन तो प्राची की ओर हुए थे और तीन पश्चिम दिशा की ओर चल दिये थे। इस तरह से इस त्रिपथगा गङ्गा के स्रोत सात भागों में उत्पन्न हो गये थे।३९। उन स्रोतों में नलिनी-ह्लादिनी-पावनी ये तीन प्राच्यगा अर्थात् पूर्व की ओर गमन करने वाले थे। सीता-चक्षु और सिन्धु ये तीन उसके स्रोत पश्चिम की ओर गमन करने वाले थे।४०। इस प्रकार से ये छः स्रोत तो उन दिशाओं में अन्तर्हित हुए थे और उन सातों में जो सातवाँ स्रोत था वह दक्षिण की ओर राजा के रथ का अनुगमन करने वाला हुआ था। इसीलिए उसका नाम भगीरथी गंगा हुआ था और वह फिर दक्षिण सागर में प्रविष्ट हो गई थी।४१।

सप्त चैता प्लावयन्ति वर्षन्तु हिमसाह्वयम् ।
प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवाः ।४२
तान्देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः ।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान् ।४३
पुलिन्दांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोकवरांश्च यान् ।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ।४४

अथ वीरमरूंश्चैव कालिकांश्चैव शूलिकान् ।
तुषारान् बर्बरानंगान्यगृह्णात्पारदान्शकान् ॥४५
एतान् जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिंगता ।
दरदोर्जगुडांश्चैव गान्धारानौरसान्कुहून् ॥४६
शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम् ।
सैन्धवानुर्वसान् बर्बान् कुपथान् भीमरोमकान् ॥४७
शुनामुखांश्चोर्दमरून् सिन्धुरेतान्निषेवते ।
गन्धर्वान् किन्नरान्यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ॥४८
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान्नरान् ।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतानपि ॥४९
पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च ।
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥५०
एतान् जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा ।
ततः प्रतिहता विन्ध्येन प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥५१

ये सातों ओर हिम साह्वय वर्ष को प्लावित कर दिया करती हैं। फिर बिन्दु सरोवर से उद्भव प्राप्त करने वाली परम शुभ सात नदियाँ समुत्पन्न हुई थीं ।४२। वे सब ओर से म्लेच्छप्राय उन देशों को प्लावित कर रही थीं। शैलों के सहित ये देश कुकुर-रौध्र-बर्बर-यवन-खस-पुलिक और कुलत्थ थे तथा जो पर अङ्गलौकिक थे। उस सरिता ने हिमवान् की घाटी में करके फिर वह अन्त में दक्षिण सागर में प्रवेश कर गयी थी ।४३-४४। इसके उपरान्त वीर भरु-कालिका-शूलिक—तुषार-बर्बर-अनङ्ग-पारद और शकों को ग्रहण किया था। इन सब जनपदों को चक्षु ने प्लावित करके वह चक्षु भी उदधि में चली गयी थी। दरदोर्जगुड-गान्धार-औरस-कुहू-शिव पौर-इन्द्र मरु-वसती-सम तेजस-सैन्धव-उर्वस-बर्ब-कुपथ-भीम-रोमक-शुनामुख और उर्द-मरु—इन दोनों का सिन्धु सेवन किया करता है। गन्धर्व-किन्नर-यक्ष-राक्षस-

विद्याधर-शाल्व कलाप श्यामक-किंपुरुष-नर-किरात-पुलिन्द-मत्स्य-कुरु-भरत-पाञ्चाल-कौशिक-मागध-ब्रह्मोत्तर-वङ्ग और ताम्रलिप्त—इन देशों को जो आर्य हैं उनको शुभा गङ्गा भावित किया करती है। फिर वह विन्ध्य में प्रतिहत होती है और अन्त में दक्षिण उदधि में प्रवेश कर गयी है ।४१-५१।

ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखा ययौ ।
प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानामपि सर्वशः ॥५२
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि ।
केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥५३
कालिन्दाँल्लिकाश्चैव कुशिकान्स्वर्गभौमकान् ।
सामण्डले समुद्रस्यतीरेभूत्वातुसर्वशः ॥५४
ततस्तु नलिनी चापि प्राचीमेव दिशं ययौ ।
कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि ॥५५
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशंकुपथानपि ।
मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ ॥५६
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम् ।
ततस्तु पावनी प्रायात् प्राचीमाशां जवेन तु ॥५७

इसके पश्चात् परम पुण्यमयी ह्लादिनी नाम वाली सरिता जो सातों भागों में से एक थी वह प्राचीनाभिमुखी होकर चली गयी है। गण और उपक और निषादों का प्लावन करती हुई ही गयी है ।५२। धीवर, ऋषिक, नील मुख, केकर, एक कर्ण, किरात, कालिन्द कलिक, कुशिक, स्वर्ग भौमक—इन जनपदों का भी प्लावन करती हुई वह मंडल में समुद्र के तीर पर सब ओर से होकर प्रवेश किया करती है ।५३। ५४। इसके पश्चात् नलिनी नाम वाली भी पूर्वदिशा को ही गयी थी। वह कुपथों को और इन्द्रद्युम्न सरों को भी प्लावन करती हुई चली

गई थी, सम्पूर्ण देशों को—तैत अंशु, पर्वो को-मध्य में तोमरमालक समूहों को और कुछ प्रावरणों को चली गयी थी ।५५-५६। फिर यह इन्द्रद्वीप के समीप में लवणोदधि में प्रवेश कर गयी थी । इसके उपरान्त वामनी नाम वाली नदी देश में पूर्व दिशा को चली गयी थी ।५७।

तोमरान् प्लावयन्ती च हूणमार्गान् समूहकान् ।
पूर्वदेशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरिम् ।
कर्णप्रावरणान् प्राप्य गता चाश्वमुखानपि ।५८
सिकता पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि ।
नेमिमण्डलकोष्ठं तु सा प्रविष्टा महत्सरः ।५९
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः ।
उपगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः ।६०
तीरे वंशौकसाराया सुरभिर्नाम तद्वनम् ।
हिरण्यशृङ्गो वसति विद्वान् कौबेरको वशी ।६१
यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः ।
तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः ।६२
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः ।
एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम् ।६३

यह पावनी सरिता का स्रोत भी उन उपर्युक्त सात स्रोतों में से एक भी तोमर देशों का प्लावन करती हुई हूण मार्गों को—समूहकों को और पूर्व देशों का सेवन करती हुई यह प्रायः गिरियों का भेदन करके कर्ण प्रावरणों में पहुँच कर यह अश्व मुखों को चली गयी थी ।५८। यह मेरु पर्वत का सेवन करके फिर विद्याधरों में पहुँच कर मण्डल में नेमि मण्डल कोष्ठ महान् सर में प्रवेश कर गयी है । उन सातों नदियों में से अन्य सैकड़ों और सहस्रों ही नदियाँ तथा उप नदियाँ उप-गमन किया करती हैं । वे ऐसी नदियाँ हैं जिनमें इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं । वंशौक सारा के तट पर सुरभि नाम वाला एक विशाल वन है ।

वहाँ हिरण्यश्रृङ्ग यक्षों विद्वान् कौबेरक निवास किया करता है। वह यक्ष से अनन्त—गुणवान्—अपरिमित वीर्य वाला—सुन्दर भक्तिवान से सम्पन्न है। वहाँ पर अगस्त्यों के द्वारा परिवृत तथा विद्वान् ब्रह्म राक्षसों से परिवृत हैं चार कुबेर के अनुचर हैं जो उसके उपाश्रय में रहा करते इसी प्रकार से पर्वतों में निवास करने वालों की स्थिति समझ लेना चाहिए।५६-६३।

परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ।६४
सरस्वती प्रभवति तस्मात् ज्योतिष्मती तु या ।
अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।६५
सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे ।
यस्मात्तस्मात् प्रभवति गन्धर्वानुकूले च ते ।६६
मेरोः पार्श्वात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान् ।
जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं स्मृतम् ।६७
पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभ्रः पुण्डरीकवान् ।
पुण्डरीकात् पयोदाच्च तस्माद् द्वे सम्प्रसूयताम् ।६८
सरसस्तूत्तरस्तस्मात् स्मृतमुत्तरमानसम् ।
मृग्या च मृगकान्ता च तस्माद्द्वे सम्प्रसूयताम् ।६९
ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः ।
नाम्ना ते वैजयानाम द्वादशोदधिसन्निभाः ।७०

वह स्थिति परस्पर में धर्म-अर्थ और काम से द्विगुण हुआ करती है। हेमकूट के पृष्ठ पर जो सर है वह सर्पों का बताया गया है। उस सर से सरस्वती की उत्पत्ति हुआ करती है और ज्योतिष्मती है उसके दोनों ओर पूर्व सागर और पश्चिम समुद्र है।६४-६५। पर्वतों में सर्वोत्तम गिरि निषध में विष्णु पद नाम वाला सर है जिससे आगे वे गन्धर्वानुकूल प्रसूत होते हैं।६६। मेरु गिरि के पार्श्व भाग से चन्द्रप्रभ

एक महान् ह्रद प्रसूत होता है और परम पुण्यशालिनी जम्बूनदी है जिसे जाम्बूनद कहा गया है ।६७। पयोद नील ह्रद है और वह परम शुभ तथा पुण्डरीकवाला है । पुण्डरीक और पयोद से पैदा होता है ।६८। पद्मन यह सरोवर है और इसको उत्तर मानस कहा गया है । उस सर से सुभा और शुद्ध कान्ता ये दो नदियाँ प्रसूत हुई हैं । पद्मों और मीनों से समाकीर्ण जल वाले देशों में विख्यात हैं । नाम से ये बिन्दु कहे जाते हैं और ये चारु हैं जो उदधि के तुल्य हैं ।६९-७०।

तेभ्यः शान्ती च मध्वी च द्वे नद्यौ सम्प्रसूयताम् ।
किंपुरुषाद्यानि यान्यष्टौ तेषु देवो न वर्षति ।७१
उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः ।
बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च ।७२
विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्ना लवणाम्बुधिम् ।
चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्च शिलोच्चयः ।७३
उदगायता उदीच्यान्तु अवगाढा महोदधिम् ।
चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः ।७४
प्रतीचीमायतास्ते वै प्रविष्टास्ते महोदधिम् ।
जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः ।७५
आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणम्प्रति ।
चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि सद्दक्षिणापथे ।७६
तत्र संवर्तको नामसोऽग्निः पिबति तज्जलम् ।
अग्निः समुद्रवासस्तु और्वोऽसौ वडवामुखः ।७७

इन ह्रदों से शान्ति और मध्वी दो नदियाँ प्रसूत हुई हैं । इनमें किम्पुरुष आदि जो आठ हैं वे ही रक्षा करते हैं और उनमें देव वर्षा नहीं करता है ।७१। ये ऐसे ही स्थल हैं जहाँ पर उदय उद्भिद ही होते हैं सभी । ये बड़ी नदियाँ बहा करती हैं जिनके नाम बलाहक, ऋषभ, चक्र और मैनाक हैं । ये प्रत्येक दिशा में निवेश रूप निविष्ट हैं और लवणां-

आर सागर में निमग्न हो जाते हैं। चन्द्र कान्त—द्रोण और सुमहान् शिलोच्चय उत्तर दिशा में उद्गमन करने वाले हैं तथा महा सागर में अवगाढ़ होते हैं। चक्र—बधिरक और नारद पर्वत ये पूर्व दिशा में आयत हैं और वे महोदधि में प्रविष्ट हैं। जीमूत-द्रावण मैनाक और चन्द्र पर्वत ये महान् विशाल शैल हैं जो अति विस्तृत हैं तथा दक्षिण समुद्र के प्रति रहते हैं और चक्र एवं मैनाक के मध्य में विलपोत में दक्षिणापथ में हैं।७२-७६। यहाँ संवर्तक नाम वाला है और वह अग्नि उसी जल को पी जाया करता है। समुद्र में निवास करने वाला और्व होता है जो कि वड़वामुख नाम वाला है।७७।

इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम्।
छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्।७८
तेषान्तु दृश्यते चन्द्रः शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः।
ते भारतस्य वर्षस्य भेदा येन प्रकीर्तिताः।७९
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र नोदिताः।
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः।८०
आरोग्यायुः प्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः।
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः।८१
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै।
इत्येतद्धारयद्विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता।८२

ये चारों पर्वत लवणोदधि को आविष्ट किए हुए हैं। प्राचीन समय में इन्द्रदेव के द्वारा पर्वतों के पंखों का छेदन कर दिया गया था जिससे उड़कर स्वेच्छया नाना स्थानों में जाने के छिद्यमान होने पर ये इन्द्र के भय के कारण ही समुद्र में समाविष्ट हो गये हैं।७८। उनके चन्द्र ने शुक्ल में और कृष्ण पक्ष में समाप्लुति दिखलायी दिया करती है। ये भारतवर्ष के भेद हैं अतएव प्रकीर्तित नहीं किए हैं।७९। यहाँ

पर उदित के दिखलाई दिया करते हैं और जो अन्य हैं वे अन्य स्थान में प्रतिष्ठित होते हैं। उत्तरोत्तर (आगे से आगे में) इनके यथा गुणों के द्वारा उदित कहे जाते हैं। आरोग्य और आयु के प्रमाणों से धर्म काम और अर्थ से इन वर्षों में भावत: प्राणी समन्वित हुआ करते हैं। इन सब में अनेक प्रकार की जातियाँ निवास किया करती हैं। इन सबको विश्व धारण किया करता है और यह जगत् जो है वही पृथ्वी विख्यात है।८०—८२।

५३—पृथिवी परिमाण वर्णन

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ।१
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तर: ।
विस्तरार्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यत: ।२
पर्याप्तपरिमाणेन चन्द्रादित्यौ प्रकाशत: ।
पर्याप्तपरिमाण्यात्तु बुधैस्तुल्यं दिव: स्मृतम् ।३
ओम् लोकान् प्रतिसामान्यात् सूर्य्यो पात्यभिलम्बत: ।
अचिरात् प्रकाशेन अवनात् रवि: स्मृत: ।४
भूयो भूय: प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्य्ययो: ।
महित्वान्महच्छब्दोह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते ।५
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भात्तुल्यविस्तृतम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निबोधत ।६
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो मण्डलस्य तु ।
विस्तारात्त्रिगुणश्चापि परिणाहोऽत्र मण्डले ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब इससे आगे हम सूर्यदेव और चन्द्रमा की गति का वर्णन करेंगे। ये दोनों सूर्य और चंद्रमा जितनी दूर

तक आलम्बन हुआ करते हैं। सातों द्वीपों के समुद्रों का तथा द्वीपों का महान विस्तार शोभित एवं दीप्त होता है। इस विस्तार का आधा भाग पृथ्वी का आयाम और बाह्य हुआ करता है ।१-२। पर्वतों के परिमाण तथा चन्द्र और सूर्य प्रकाश किया करते हैं। पर्वतों के परिमाण्डल सूर्यों के द्वारा त्रिलोक के तुल्य कहा गया है ।३। पीन आयामवत् बिना विलम्ब किये हुए सूर्य तीन लोकों को गमन करता है। शीघ्र ही प्रकाश देने के कारण से तथा अवन करने से यह रवि कहा गया है ।४। अब इसके आगे चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहूँगा। मांडलत्व होने से महत् यह शब्द इस अर्थ में निगदित किया जाता है ।५। इस भारतवर्ष के विष्कम्भ के तुल्य विस्तृत आयाम वाला मण्डल भास्कर का है। इसके अनन्तर अब योजनों के परिमाण में भी उसका ज्ञान प्राप्त करलो। नौ सहस्र योजन मंडल का विस्तार है और विस्तार से त्रिगुणा परिणाह भी इस मंडल में होता है ।६-७।

विष्कम्भान् मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी।
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः ।८
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु।
इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः ।९
तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतैरभिमानिभिः।
अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।१०
देवैर्येऽतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च।
तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् ।११
दिव्यस्य सन्निवेशं च साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः।
शतार्द्धं कोटि विस्तारा पृथिवी कृत्स्नशः स्मृता ।१२
तस्याश्चार्द्धं प्रमाणञ्च मेरोश्चैवोत्तरम्।
मेरोर्मध्ये प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता ।१३
तथा शतसहस्राणामेकोननवतिः पुनः।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्यर्द्धस्य विस्तरः ।१४

विष्कम्भ और मण्डल से भास्कर से द्विगुणा शशि है। इससे पुनः योजनों के द्वारा पृथिवी के प्रमाण को बतलाऊँगा।७। सात द्वीप और सात समुद्रों वाली इस मंडल का विस्तार यहाँ पर यह इतना ही संख्यात पुराण में परिमाण से किया गया है।८। उसको प्रसंख्यात बतलाऊँगा।९। जो इस समय में अभिमानियों के द्वारा किया गया है। जो अभिमानी गण व्यतीत हो गये हैं वे यहाँ पर इस समय में होने वालों के ही तुल्य हैं।१०। देवगण रूप और नामों से अतीत हो चुके हैं। इसी कारण से इस समय में होने वाले देवों में वसुधा उन को कहलाता है।११। मानवों के द्वारा विश्व का सन्निवेश कृत्स्न नहीं है। पूर्व कल्प से यह पृथ्वी पाप के अर्द्ध कोटि विस्तार वाली पूर्णतया बतलाई गयी है।१२। उस पृथिवी का अर्द्ध प्रमाण पचास कोटि मेरु का ही है। मेरु के मध्य से प्रत्येक दिशा में एक करोड़ यह कही गई है। इस प्रकार से जो सहस्र पचास और फिर पचास सहस्र पृथिवी के अर्ध भाग का विस्तार है।१३-१४।

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोटयस्तु विस्तारात् संख्याताश्च चतुर्दिशम् ।।१५
तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्याः स तु विस्तरः ।।१६
विस्तारं त्रिगुणञ्चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम् ।
गणितं योजनानान्तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ।।१७
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः ।
इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम् ।
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम् ।
पर्याप्तसन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ।।१८
पर्यासपरिमाणञ्च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम् ।

मेरोः प्राच्यां दिशायां तु मानसोत्तरमूर्द्धनि ।१९
वस्वौकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ।
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठतः ।२०
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ।
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्द्धनि ।२१

अब पृथिवी का पूर्ण विस्तार योजनों के द्वारा समझ लो । चारों दिशाओं में विस्तार है तीन करोड़ संख्यान है ।१५। इस भाँति से सात द्वीप समुद्रों वाली पृथिवी का यह विस्तार भी सहस्र संख्याओं कहा जाता है ।१६। पृथिवी का अन्तर मण्डल का विस्तार त्रिगुण है । योजनों का गणित किया गया है जो एकादश करोड़ कहा गया है । इस दीप्ति से भी बहुत और सैकड़ों अधिक ये हैं—इतना ही यह पृथिवी का अन्तर मंडल होता है ।१७। जिस भी नक्षत्रों के सन्निवेश का जितना मंडल है उतना ही पर्वत सन्निवेश वाली भूमिका मंडल है ।१८। दिव का पर्याप्त परिमाण भूमि के ही तुल्य कहा गया है । मेरु के पूर्व दिशा में मानसोत्तर मूर्द्धा में वस्वौक सार वाली पुण्य महेन्द्री हेम से परिष्कृत है । पुनः मेरु के दक्षिण में और मानस के पृष्ठ भाग में संयमन में वैवस्वत यम निवास किया करता है । पुनः मेरु के पश्चिम में और मानस के मूर्द्धा में वरुण देव की पुरी है ।१९-२१।

सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः ।
दिश्युत्तरायां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।२२
तुल्या महेन्द्रपुर्यापि सोमस्यापि विभावरी ।
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।२३
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ।
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।२४
काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिस्तस्य निबोधत ।
दक्षिणोपक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।२५

ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति ।
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ।२६
वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्यः प्रदृश्यते ।
सुषायामर्धरात्रस्तु विभावर्यामस्तमेति च ।२७
वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा ।
सुषायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ।२८

उस श्रीमान् वरुणदेव की पुरी का नाम सुषा है जो परम रम्य है जो मेरु के उत्तर दिशा में और मानस के मूर्धा में है। महेन्द्र की पुरी के तुल्य ही सोम की भी विभावरी है। मानस के उत्तर पृष्ठ में चारों दिशाओं में लोकपाल हैं जो धर्म की व्यवस्था करने के लिए तथा लोकों के संरक्षण करने के लिए ही हैं। इन लोकपालों के ऊपर उत्तर और दक्षिण अयन में सूर्य की गति के विषय में श्रवण प्राप्त करलो ।२२-२४ जहाँ पर दिशाओं में गमन करने वाले भगवान् सूर्यदेव की जो गति होती है उसको समझ लेना चाहिए। दक्षिण के उपक्रम में सूर्य क्षिप्त इषु की ही भाँति प्रसर्पण किया करते हैं ।२५। जिस समय में भगवान भास्करदेव अमरावती के मध्य में गमन करने वाले होते हैं उस समय में समस्त ज्योतिषियों के चक्र को लेकर सतत् परिगमन किया करते हैं ।२६। वैवस्वत संयमन में उदित होते हुए सूर्य दिखलाई दिया करते हैं। सुषा में अर्ध रात्रि भाग है और विभावरी में अस्तता को प्राप्त होता है ।२६-२७। जिस समय में वैवस्वत संयमन में मध्याह्न की वेला में रवि हुआ करते हैं उस समय में वारुणी जो सुषा पुरी है उसमें उदित होते हुए वे दिखलाई दिया करते हैं ।२८।

विभावर्यामर्द्धरात्रं माहेन्द्र्यामस्तमेव च ।
सुषायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ।२९
विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः ।३०

अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ।
स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत् ।३१
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः ।
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणान्तेषु सर्पति ।३२
उदयास्तमये वाऽसावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ।३३
पतत्येकन्तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः ।
उदितो वर्द्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः ।३४
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ।
उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ।३५

विभावरी में अर्द्ध रात्रि का समय होता है और माहेन्द्री में अस्त-गत हो जाया करते हैं जब कि वरुण की पुरी सुखा में मध्याह्न में सूर्य होते हैं ।२९। सोम की पुरी विभावरी में दिवाकर उदित होता है और महेन्द्र देव की अमरावती में दिवाकर अस्त हो जाया करते हैं ।३०। संयमन में अर्द्ध रात्रि होती है तथा वारुणी पुरी में ये अस्तगत हुआ करते हैं। यह भानु एक आलात के चक्र की भाँति (आग-जलती हुई लकड़ी के मण्डल के सदृश) शीघ्र ही परिगमन किया करता है ।३१। भ्रममाण ऋक्षों (नक्षत्रों) के समीप में भ्रमण करता हुआ रवि विचरण किया करता है। इस प्रकार से उन चारों पार्श्वों में दक्षिणा की ओर यह उत्सर्पण किया करता है ।३२। उदय और अस्त के समय में यह पुनः पुनः उत्तिष्ठमान हुआ करता है। पूर्वाह्न (दोपहर के प्रथम भाग) और अपराह्न (दोपहर का पिछला भाग) में वह दो-दो देवालयों में पतन किया करता है ।३३। अपनी प्रभाओं के द्वारा मध्याह्न में एक को पतन करके प्रकाशित किया करता है तथा वर्द्धमान अपनी दीप्तियों (किरणों) के द्वारा वह रवि मध्याह्न की वेला में तपता है ।३४। इसके पश्चात् ह्रास को शनैः शनैः प्राप्त होने वाली किरणों के द्वारा

अस्ताचल भाग को जाया करता है। इसके उदयकाल और अस्तकालों के द्वारा ही पूर्व तथा बताये गये हैं।२५।

यादृक् पुरस्तात्तपति यादृक् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ।
यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषां स उदयः स्मृतः ।२६
प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते ।
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्य दक्षिणे ।२७
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखा गतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ।२८
ऊर्ध्वं शतसहस्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते ।
एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः ।२९
त्रिंशद्भागन्तु मेदिन्या मुहूर्त्तेन स गच्छति ।
योजनानां सहस्रस्य इमां संख्यां निबोधत ।४०
पूर्णं शतसहस्राणां एकत्रिंशच्च सा स्मृता ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि तथान्यान्यधिकानि च ।४१
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ।
एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।४२
परिगच्छति सूर्योऽसौ मासं काष्ठामुदक् दिनात् ।
मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने ।४३

जिस प्रकार का गर्मी तपता है और वैसा पार्श्वों के पृष्ठ भाग में होता है जहाँ पर इसका उदय दिखलाई दिया करता है उनका वह उदय कहा गया है।२६। जहाँ पर यह विनाश को प्राप्त हो जाया करता है उनका वह अस्तकाल कहा जाता है। सब वर्षों के उत्तर में मेरु होता है और लोकालोक पर्वत के दक्षिण के है।२७। इस भूमि से सूर्य के विदूर भाव होने के कारण यह गत हुए की रश्मियों का सेवन किया करते हैं। इसी कारण से दर्शन रात्रि में नहीं हुआ करते हैं। ।२८। यह शत सहस्रांशु ऊर्ध्व भाग में स्थित होता है वहाँ पर दिख-

गमन किया करता है इस रीति से जिस समय में भास्कर पुष्कर के मध्य में होता है वह मेदिनी के त्रिंशत् भाग की मुहूर्त मात्र में चला जाया करता है। यह संख्या सहस्र योजनों की समझ लो।३९-४०। वह सौ सहस्र और इकतीस कही गई है तथा पचास सहस्र और अधिक है।४१। सूर्य की यह गति मौहूर्तिकी की जाती है। इसी क्रम के योग से जिस समय में यह दक्षिण दिशा में परिगमन किया करता है तो वह सूर्य दिन से उत्तर दिशा में एक काष्ठ रहता है और पुष्कर के मध्य द्वारा दक्षिणायन में भ्रमण किया करता है।४२-४३।

मानसोत्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम् ।
सर्वतो दक्षिणायान्तु काष्ठायान्तन्निबोधत ।४४
नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ।
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।४५
अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ।
दक्षिणादिङ् निवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ।४६
क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिश चरन् ।
मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।४७
तिस्रः कोटयस्तु सम्पूर्णा विषुवस्यापि मण्डलम् ।
तथा शतसहस्राणि त्रिंशदेकाधिकानि तु ।४८
श्रावणे चोत्तरा काष्ठा चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
गोमेदस्य परद्वीपे उत्तराञ्च दिशं चरन् ।४९

मानस के उत्तर मेरु का अन्तर त्रिगुण कहा गया है। सब ओर में उसकी दक्षिण दिशा में जानलो।४४। योजनों के द्वारा परिमण्डल नौ करोड़ प्रसंख्यात है। तथा सौ सहस्र और पैंतालीस है।४५। एक अहोरात्र में सूर्य की यह गति कही गयी है। जिस समय में वह रवि दक्षिण दिशा से निवृत्त होकर विषुव में स्थित होता है और सागर के उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ विषुवत् मण्डल में आता है उसकी

की पीठाओं के द्वारा ही समझनी।४६-४७। विषुव का मण्डल सम्पूर्ण तीस करोड़ तथा शत सहस्र और बीस अधिक अधिक है।४८। श्रावण में जिस समय में उत्तर दिशा में जिस भानु होता है तो मानसोत्तर के पर-द्वीप में उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ होता है।४९।

उत्तरायाः प्रमाणन्तु काष्ठाया मण्डलस्य तु।
दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विन्द्याद्यथाक्रमम् ।५०
स्थानं जरद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम्।
वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ।५१
नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा ।
उभे आषाढमूलन्तु अजवीथ्युदयास्त्रयः ।५२
अभिजित् पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युत्तरास्त्रयः।
अश्विनीकृत्तिकायाम्यानागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः ।५३
रोहिण्यार्द्रां मृगशिरो नागवीथिरिति।
पुष्याश्लेषा पुनर्वस्वोर्वीथी चैरावती स्मृता ।५४
तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरोमार्ग उच्यते।
पूर्वोत्तरफाल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी भवेत् ।५५
पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता।
श्रवणञ्च धनिष्ठा च वारुणञ्च जरद्गवम् ।५६

उत्तर दिशा के मंडल का प्रमाण उनको यथाक्रम दक्षिणोत्तर मध्यों को ही जानना चाहिए।५०। मध्य में जरद्गव स्थान है तथा उत्तर में ऐरावत है। यहाँ पर दक्षिण में तत्त्वतः वैश्वानर निर्दिष्ट किया गया है।५१। नागवीथी उत्तर वीथी है और अजवीथि दक्षिणा है। ये दोनों आषाढ़ मूल और अजवीथि आदि तीन हैं।५२। पूर्व में अभिजित्—स्वाति और नागवीथि ये तीन उत्तरा हैं। अश्विनी—कृत्तिका—याम्या तीन नागवीथी कही गयी हैं।५३। रोहिणी—मृगशिरा और आर्द्रा-यह नागवीथी कही गयी है। पुष्य—अश्लेषा और पुनर्वसु की वीथि ऐरावती

कही गयी है ।५४। ये तीनों वीथियाँ उत्तर मार्ग कही जाती हैं । पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी तथा मघा से आर्षभी होती है ।५५। पूर्वा और उत्तरा प्रोष्ठपदा दोनों तथा रेवती गोवीथी कही गयी है । श्रवण धनिष्ठा और जरद्गव हैं ।५६।

एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते ।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती ह्यजवीथिरिति स्मृता ।५७
ज्येष्ठा विशाखा मैत्रञ्च मृगवीथी तथोच्यते ।
मूलं पूर्वोत्तराषाढे वीथी वैश्वानरी भवेत् ।५८
स्मृतास्तिस्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गे वै दक्षिणे पुनः ।
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद् वक्ष्ये योजनैः पुनः ।५९
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम् ।
शतानि त्रीणि चान्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च ।६०
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनानां प्रकीर्तितम् ।
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।६१
ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत ।
एकैकमन्तरं तस्य नियुतान्येकसप्ततिः ।६२
सहस्राण्यतिरिक्तानि ततोऽन्यानि पञ्चविंशतिः ।
लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन् ।६३
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ।
बाह्यतो दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम् ।६४

ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहा जाया करता है । हस्त-चित्रा तथा स्वाती—यह अजवीथी—इस नाम से कही गयी है ।५७। ज्येष्ठा विशाखा और मैत्र इनकी मृगवीथी कही जाती है । मूल-पूर्वा और उत्तरा आषाढ़ा वैश्वानरी वीथी होती है । ये तीनों वीथियाँ दक्षिण मार्ग में बतायी गयी हैं । दिशाओं का जो अन्तर है उसको पुनः योजनों के द्वारा बतलायेंगे । यह अन्तर एक सहस्र इकतीस योजन का कहा

गया है। तीन सौ और अन्य तैंतीस दिशाओं में योजनों का अन्तर कीर्तित किया गया है। दिशाओं में रेखाओं में और दक्षिणोत्तर अयन में जो अन्तर है उसको एकसप्तति करके योजनों के द्वारा समझिए। एक-एक का अन्तर है और उसी की तरह सातों से वे युक्त हैं। एक सहस्र से अतिरिक्त अन्य पचहत्तर योजन बाह्य और आभ्यन्तर रेखाओं और दिशाओं में विचरण करता हुआ वह अभ्यन्तर में मण्डलों को बाह्य करता है। उत्तरायण में बाह्य से और दक्षिण से भी निरन्तर सूर्य मण्डल विचरण किया करता है।५८-६४।

चरन्नसावुदीच्यां तु त्र्यशीत्या मण्डलान् शतम्।
अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु ।६५
प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानां निबोधत।
योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम् ।६६
अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः।
विष्कम्भो मंडलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ।६७
अहस्तु चरतेनाभेः सूर्यो वै मंडलक्रमात्।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा ।६८
दक्षिणे चक्रवत् सूर्यस्तथाशीघ्रं निवर्त्तते।
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति ।६९
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने।
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणां मध्ये चरति मंडलम् ।७०

इस प्रकार से विचरण करता हुआ वह उत्तर में एक सौ अस्सी मण्डलोंमें अन्दर परिवर्तन किया करता है और मण्डलों में भ्रमण करता है।६५। मण्डल का भी प्रमाण योजनों के रूप में समझलो। एक सहस्र अठारह योजन बताये गये हैं और अट्ठावन योजन और भी अधिक पुनः कहे गये हैं। वह मण्डल का विष्कम्भ तिर्यक किया जाता है। ६६-६७। दिन में सूर्य क्रम से नाभि के मण्डल का चरण किया करता।

है। कुलाल (कुम्हार चाक चलाने वाला) के चाक पर्यन्त जिस प्रकार से चलता है उसी भाँति रवि भी होता है। दक्षिण में चक्रकी ही तरह सूर्य इस भाँति शीघ्रता से नियुक्त हुआ करता है कि उत्कृष्ट अर्थात् अति दूर में रहने वाली भी भूमि की भाँति अल्पकाल में भ्रमण किया करता है।६८-६९। यह सूर्य दक्षिणायन में अत्यन्त शीघ्र ही नक्षत्रों के साथ मुहूर्तों में बारह ऋक्षों के मध्य में भ्रमण का कार्य किया करता है।७०।

मुहूर्त्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति ।७१
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमि सोऽल्पां प्रसर्पति ।
सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने ।७२
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः ।
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ।७३
ततो मन्दतरं नाभ्यां चक्रन्तु भ्रमते पुनः ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा ।७४
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मंडलानि तु ।७५
उत्तरप्रक्रमेऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता ।
तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ।७६
दक्षिणप्रक्रमे चापि दिवा शीघ्रं विधीयते ।
गतिः सूर्यस्य वै नक्तं मन्दा चापि विधीयते ।७७
एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु ।
अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकालोकस्य चोत्तरम् ।७८

रात्रि के समय में इन नक्षत्रों को अठारह मुहूर्तों में विचरण करता हुआ कुलाल के चाक के मध्य में स्थित होने की भाँति मन्द प्रस-

क्षेप किया करता है।७८। उत्तर की ओर गमन करने में सूर्य मन्द विक्रम वाला होकर ही गमन किया करता है। इसी मन्दगति होने के कारण से वह बहुत अधिक लम्बे समय में बहुत ही अल्प भूमि का उत्सर्पण किया करता है। उत्तरायण अर्थात् उत्तरायण में दिन को अठारह मुहूर्तों में सूर्य मध्यवर्ती भागों के मध्य में चरण किया करता है और उन्हीं भागों को रात्रि में बारह मुहूर्तों में चरण करता है। इसी से उन दोनों में चक्र अधिक मन्द भ्रमण किया करता है। एक मिट्टी के पिण्ड की भाँति ही मध्यमें स्थित यह ध्रुव की भाँति भ्रमण करता है। तीस मुहूर्तों में एक अहोरात्र में दोनों भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करता है।७०-७५। सूर्य की उत्तर क्रमण के दिन में मन्द गति कही गयी है। उसी सूर्य की फिर रात्रि के समय में शीघ्रता वाली गति हो जाया करती है। दक्षिण के प्रक्रमण करने में भी दिन में शीघ्रता का विधान कहा जाता है और रात्रि में सूर्य की गति मन्द हो जाया करती है। इस प्रकार से रात और दिन की अपनी गति की विशेषता के द्वारा विभाजन करता हुआ दक्षिण अजवीथी में लोकालोक के उत्तर में चरण किया करता है।
।७६-७८।

लोकसन्तानतो ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ।
व्युष्टिर्यावत् प्रभा सौरी पुष्करात् संप्रवर्तते ।७९
पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः ।
योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः ।८०
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः ।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।८१
अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ।
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम् ।८२
लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता ।
लोकालोकौ तु संधत्ते तस्मात्सूर्यः परिभ्रमन् ।८३

तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यदन्तरम् ।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि अहः स्मृतम् ॥८४

लोक संस्थान से यह वैश्वानर पथ से बाहिर होकर भ्रमण करता है। जब तक पुष्टि होती है यह सूर्य की प्रभा पुष्कर से संयुक्त हुआ करती है।८२। पार्श्वों से बाहिर के भाग में लोकालोक नाम वाला महान् पर्वत है। यह गिरि एक सहस्र दश योजन ऊर्ध्व में उच्छ्रित है।८३। यह परिमण्डल पर्वत प्रकाश और अप्रकाश वाला है। नक्षत्र—चन्द्र और सूर्य ग्रह तारा गणों के साथ लोकालोक पर्वत के अभ्यन्तर में ही प्रकाश किया करते हैं। इतना ही लोक होता है उसके आगे शेष तो सब निरालोक अर्थात् प्रकाश रहित ही हुआ करता है। लोकालोकन में धातु है और निरालोक आलोकता है। इसी से सूर्य परिभ्रमण करता हुआ लोक और आलोक दोनों का सन्धान किया करता है। ८४-८५। इसी कारण उसको सन्ध्या—इस नाम से कहते हैं। यथा-काल व्युष्टि से उषा कही जाती है। उषा रात्रि कही गयी है और विप्रों के द्वारा व्युष्टि दिन कहा गया है।८६।

त्रिंशत्कला मुहूर्तस्तु अहस्ते दश पञ्च च ।
ह्रासो वृद्धिरहर्भागैर्दिवसानां यथा तु वै ॥८५
सन्ध्या मुहूर्तमात्रा वै ह्रासवृद्धौ तु सा स्मृता ।
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै ॥८६
प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ।
तस्मात् प्रातर्गतात्कालान्मुहूर्ताः सङ्गवस्त्रयः ॥८७
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालाद्दिनस्य तु ।
तस्मान्मध्यन्दिनात्कालादपराह्ण इति स्मृतः ॥८८
त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एष स्मृतो बुधैः ।
अपराह्णव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते ॥८९
दशपञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तास्त्रय एव च ।
दशपञ्च मुहूर्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम् ॥९०

यथोरस्यतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः ॥९१

तीन कला वाला मुहूर्त और पन्द्रह का दिन होता है। दिवसों के मानों में विषय में ह्रास और वृद्धि भी यथा रीति हुआ करते हैं। मुहूर्त मानमें सन्ध्या होती है और मे ह्रास तथा वृद्धि बताये गये हैं। तीन मुहूर्त प्रमाणगत आदित्य में लेखा प्रभृति होती है। फिर वह काल प्रातः कहा गया है और पाँच भाग कहे गए हैं। उस प्रातःकाल से तीन गत्व मुहूर्त होते हैं। सङ्गवकाल भी होता है वह तीन मुहूर्तों का होता है फिर उस काल के अनन्तर उस मध्य दिन के काल में अपराह्न कहा गयाहै।८८। काल ब्रह्म पंक्ति का कालको तीन ही मुहूर्त बताया है। उस अपराह्न के व्यतीत होने से जो काल होता है उसी को सायाह्न कहा जाता है।८९। पन्द्रह मुहूर्त वाले दिन का तीन मुहूर्त ही सायं होता है। विषुव में वह दिन दश और पाँच मुहूर्त वाला ही कहा गया है।९०। इसी कारण से दक्षिणायन और उत्तरायण में वह दिन बढ़ जाता है और कम भी हो जाया करता है अर्थात् दिन बड़े छोटे हुआ करते हैं। दिन तो रात्रि का ग्रास कर जाता है और रात्रि दिन को ग्रस जाया करती है। तात्पर्य यही है कि दिन छोटे हुआ करते रात्रि बड़ी हो जाती है और रात्रि छोटी होती है तो दिन बड़ा हो जाया करता है।९१।

शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवन्तु विभाव्यते।
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकाच्चालोक उच्यते ॥९२
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम् ॥९३
सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः।
हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः ॥९४
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥९५

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयानः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥९६
तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः ।
लोकस्य सन्तानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ॥९७
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्च विशाम्पते ! ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ॥९८

शरद् और वसन्त के मध्य में विषुव का विधान किया जाता है। यह लोक आलोकान्त कहा गया है और लोक आलोक कहलाया करता है।९२। इस लोकालोक के मध्य में वहाँ पर लोकपाल समवस्थित रहा करते हैं। वे महान् आत्माओं वाले लोकपाल चार हैं जो जब तक भूत-सम्प्लव होता है तब तक वहाँ पर स्थित रहा करते हैं।९३। इन चारों में सुधामा वैराज होता है शंखपाद कर्दम है—हिरण्यरोमा पर्जन्य है और चौथे यह राजस केतुमान् होता है।९४। ये लोकालोक पर्वत में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थिति रक्खा करते हैं। ये चारों ही वहाँ निर्द्वन्द्व अभिमान से रहित—तन्द्रा शून्य और बिना परिग्रह वाले हुआ करते हैं।९५। उत्तर दिशा में जो विचार है जिसका देवगण सेवन किया करते हैं। यह वैश्वानर पथ से बाहिर पितृयान मार्ग बताया गया है।९६। वहाँ पर प्रजा की कामना रखने वाले ऋषिगण रहा करते हैं जो कि अग्निहोत्र करने वाले हुआ करते हैं। ये इस लोक की वृद्धि करने वाले हैं और पितृयान के पथ में स्थित रहा करते हैं।९७। हे विशाम्पते ! ये लोक की कामना रखने वाले भूतों के आरम्भ के लिए किया हुआ कर्म और आशीषों का प्रारम्भ किया करते हैं और उनका पन्था दक्षिण होता है।९८।

चलितास्ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥९९
जायमानास्तु पूर्वे पश्चिमानां गृहेषु ते ।

पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ।१००
एवमावर्तमानास्ते कुर्वन्त्याभूतसंप्लवम् ।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम् ।१०१
सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याभूतसंप्लवम् ।
क्रियावन्तः प्रसंख्याता ये श्मशानानि भेजिरे ।१०२
लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ।१०३
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे ।१०४
प्रजैषिणः सप्तऋषयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।
सन्ततिस्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ।१०५

वे लोग युग-युग में जो धर्म शिथिल हो जाया करता है उस धर्म को पुनः स्थापित किया करते हैं और धर्म की संस्थापना भली भाँति किए हुए उन से—पश्चिमाओं और पूर्वकों द्वारा ही किया करते हैं ।९९। पहिले होने वाले वे पीछे होने वालों के गृहों में उत्पन्न (समुत्पन्न) हुआ करते हैं और जो पश्चिम अर्थात् पीछे होने वाले हैं वे पूर्व पुरुषों के निधन हो जाने पर वहाँ पर जन्म ग्रहण किया करते हैं । इस रीति से आवर्त्तमान होनेवाले अर्थात् एक दूसरेके पीछे इस संसार में जन्म ग्रहण करने को पुनः पुनः आवृत्ति करने वाले वे भूत संप्लव जब होता है तब तक वहाँ पर वर्तमान रहा करते हैं । गृह इन ऋषियों की संख्या जो गृहमेधी हैं अट्ठासी सहस्र है ।१००-१०१। वे सविता के दक्षिण मार्ग का समाश्रय ग्रहण करके ही भूत संप्लव जब होता है तब तक क्रिया वाले रहा करते हैं उनकी संख्या यही है जो उपर्युक्त है । वे श्मशानों का भी सेवन किया करते हैं । लोकों के संव्यवहार के लिए और भूतारम्भ कर्म के द्वारा वे इच्छा तथा द्वेष में भी रति रखने वाले हैं तथा मैथुन का भी उपगम अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया करते हैं । इस रीति से

कामना के होने के कारण से वे विषयों का सेवन किया करते हैं। यही कुछ कारण है जिनके द्वारा पितृगण लोग श्मशानों का सेवन किया करते थे। यहाँ पर प्रजा की इच्छा वाले सात महर्षि द्वापर में समुत्पन्न हुए थे। फिर उन्होंने सन्तति की मिथुन की थी और इसी कारण से उन्होंने मृत्यु को प्राप्त किया था। ।१०२-१०५।

अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसंप्लवम् ।१०६
ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात् ।
इच्छाद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ।१०७
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसंप्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ।१०८
त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मार्गगामिनाम् ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पापपुण्यकृतो विधिः ।१०९
आभूतसंप्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः ।
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रावतिष्ठते ।११०
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधकाः ।१११

अट्ठासी उन सहस्रों महान् ऋषियों ने उत्तर पथ पर्यन्त समाश्रय किया था और यह भी आभूत संप्लव तक ये वहाँ समवस्थित रहे थे। ये लोक के सम्प्रयोग से और मिथुन के वर्जन से तथा इच्छा और द्वेष भाव की निवृत्ति से और भूतों का समारम्भ त्याग देने से इन्हीं कतिपय कारणों के होने से ये परम विशुद्ध हो गये थे और उन्होंने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया था। उनका यह अमृतत्व भी जब तक भूतों का संप्लव हुआ करता है तब तक रहा था। और वे यहाँ पर बराबर स्थित रहा करते थे। जो तीनों लोकों के स्थिति काल के गमन करने

जाते हैं उनका त्रैलोक्य स्थिति काल नहीं होता है क्योंकि ब्रह्म हत्या आदि महापापों से और अश्वमेध आदि पुण्य कर्मों से यह परिपूर्ण हुआ करता है ।१०६-१०८। जिस समय में यह समस्त भूतों का संप्लव होता है तो उसके अन्त में ऊर्ध्वरेता लोग भी लीन हो जाया करते हैं। ऊर्ध्वरेता ऋषियों में यहीं ध्रुव संस्थित होता है। यह विष्णु का स्थान है तृतीय परम भास्वर एवं दिव्य पद है जहाँ पर पहुँच कर उस विष्णु के परम पद को चिन्ता नहीं किया करते हैं और जो लोभ की आकांक्षा रखने वाले हैं वे ध्रुव के ही धर्म में स्थित रहा करते हैं ।१०९-११०।

१२४–ज्योतिष चक्र वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रुवन् लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ।१

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले ।
अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासंकरेण वा ।२

कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ।
एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम ।३

भूतसंमोहनं ह्येतद्वदतो मे निबोध तत् ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् संमोहयति वै प्रजाः ।४

योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ।५

स वै भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ।६

ध्रुवस्य मनसा चासौ भ्रमते ज्योतिषां गणः ।
वाता नीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धः प्रसर्पति ।७

सूतजी ने कहा—इस प्रकार से ग्रहों की स्थिति की कथा का श्रवण करके जो गण विप्रगणों ने फिर सूतजी से बोले—सूर्य चन्द्रमा का भ्रमण और सब ग्रहों का चरण किस प्रकार से हुआ करता है। ये समस्त ज्योतियाँ रवि के मण्डल में किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं? ये सब अलग-२ व्यूह रहित होकर या असङ्कुल भाव से भ्रमण करती हैं उनका कौन कैसे भ्रमण करवाया करता है अथवा ये स्वयं ही भ्रमण किया करती हैं—हम सब यही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। अतएव हे धीमान्! इसका वर्णन कीजिए ।१-२। श्रीसूतजी ने कहा—यह भूतों का संमोहन करने वाला है। इसको आप लोग मेरे द्वारा जान लो! प्रत्यक्ष होते हुए भी यह दृश्य है और निश्चय ही प्रजाओं को संमोहित करता है। जो यह चतुर्दश नक्षत्रों में शिशुमार व्यवस्थित है यह उत्तानपाद का पुत्र है जो दिवलोक में मेढ़ीभूत ध्रुव है ।३-४। वही यह भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्रमा और सूर्य का भ्रमण कराता है। भ्रमण करते हुए उसके पीछे सब नक्षत्र चक्र की भाँति अनुवर्त्तन किया करते हैं। ध्रुव के मन से ज्योतियों का गण भ्रमण करता है। वह वातानीक मय बन्धों से ध्रुव में बद्ध होकर ही प्रसर्पण किया करता है ।५-७।

तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः ।
अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ॥८

विषुवद्ग्रहवर्णाश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम् ।
जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ॥९

द्वितीय आवहो वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः ।
इतो योजनमात्राच्च अध्यर्द्धं विकृताश्रपि ॥१०

वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धाराधाराः प्रकीर्तिताः ।
पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ॥११

शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा ।
कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम् ॥१२
पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः ।
पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः ॥१३
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः ॥१४

उनके भेद—ओज तथा काल का निश्चय—अयन और उदय और नक्षत्र दक्षिणायन और उत्तरायण में होते हैं ।८। त्रिभुवन यह धर्म यह ध्रुव से कहा गया है । ये मेघ आग्नेय नाम वाले हैं कि जिनके बीजों का सम्भव हुआ करता है ।९। दूसरा आवाहन करने वाला है और ये मेघ अभिवर्षित होते हैं वहाँ से एक योजनमात्र से अर्धयोजन भी होते हैं । उनकी वृष्टि का कर्म होता ही और आसार है । पुष्करावर्तक नाम वाले जो पक्ष सम्भव किए कहे गये हैं ।१०-११। अति महान ओज वाले इन्द्रदेव ने स्वेच्छा गमन करने वाले और भूतों के नाश को चाहने वाले समृद्ध पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था । ऐसा जो पक्ष पुष्कर नाम वाले बड़े जल के धारण करने वाले थे । इसी कारण से यहाँ पर वे पुष्करावर्तक नाम से शब्दित किए गये हैं ।१२-१३। ये अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोर स्वर से युक्त—कल्प के अन्त में वृष्टि करने वाले और कल्पान्त की अग्नि के नियामक हैं ।१४।

यास्त्वाधारा बहूनां वै सम्भूताः कल्पसाधकाः ।
अण्डस्यावरणं भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तथा ॥१५
यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः ।
तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ॥१६
तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥१७
गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह ।

कुलमेकं त्रिधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ।१८
पर्जन्या दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवम् ।
तुषारवर्षं वर्षन्ति सुखार्थं सस्यवृद्धये ।१९
वायुः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः ।
योऽसौ बिभर्ति भगवान् ! गङ्गामाकाशगोचराम् ।२०
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम् ।
तस्या विष्यन्दितजलं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।२१
शीकरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ।
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।२२

जल ही सूक्ष्म कालों के आकाश पर ही कक्षा में धारक ब्रह्म किया करते हैं। इस प्रकार में त्रिधा कुल हैं उस अम्ब के जो प्रकृत किये हुए थे ।१५। जिसमें चारों मुखों वाला ब्रह्मा प्रभु स्वयं समुत्पन्न हुआ था। वे ही अपर गन्धर्व सब मेघ कहे गये हैं ।१६। उन सबका अभ्यागन (संतृप्ति) करने वाला धूम जो विशेष जल से होता है। उनमें और पर्जन्य होता है और चार ही दिग्गज हुआ करते हैं ।१७। नागों का—पर्वतों का—मेघों का योनियों के साथ एक ही कुल है जो त्रिधाभूत हो गया है। इन सबकी योनि एक ही जल बतलाई गयी है।१८। पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत समुत्पन्न करने वाले तुषार की वर्षा किया करते हैं और सस्य की विशेष वृद्धि के लिए वे सुख हैं ।१९। हे भगवन्! उनमें परायण आकाश परिवह नाम वाला वायु है जो यह आकाश में गोचर होने वाली गङ्गा का धारण करता है ।२०। यह आकाश गंगा परम दिव्य-अमृत के समान जल वाली—परम पुण्यमयी 'त्रिपथा'—इस नाम से प्रसिद्ध है। उसके विस्यन्दित जल को ये दिग्गज अपने विशाल करों से शीकरों का मुञ्चन किया करते हैं जो 'नीहार' इस नाम से कहा गया है। दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट—इस नाम से कहा गया है ।२१-२२।

उदग्घिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ।।२३
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम् ।
ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्भवम् ।।२४
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।।२५
इहाभ्येत्यततः पश्चादिदं भूतविवृद्धये ।
वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग् वृष्टिविवृद्धये ।।२६
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ।।२७
वर्षं घर्मं हिमं रात्रिः सन्ध्ये चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते ।।२८

हिमवान् पर्वत के उत्तर भाग में पर्वत के दक्षिण और उत्तर में भली भाँति वृष्टि की वृद्धि के लिए पुण्ड्र नाम वाला बताया गया उसमें तुषार से समुद्भूत वर्षा प्रवृत्त हुआ करती है। उसके उपरान्त वायु हिमवान से हिम को जो कि वहीं पर समुद्भूत हुआ है अपने योग से महा गिरि का सेचन करता हुआ ले आया करता है। हिमवान् का अतिक्रमण करके उसके बाद में वृष्टिशेष होता है। उसके पश्चात् इस (भाग) के आगम में यह भूतों की विवृद्धि के लिए दो वर्ष समाख्यात किए गए हैं जो अच्छी तरह वृष्टि की विवृद्धि के लिए होता है।२३-२६। और मेघ आप्यायन (संतृप्ति) होते हैं जो सर्व प्रकीर्तित है। वृष्टियों का सृजन करने वाले भगवान सूर्य ही समुपदिष्ट हुआ करते हैं। वर्ष, घर्म, हिम, रात्रि, दोनों सन्ध्या काल, दिन और यहाँ पर शुभ तथा अशुभ फल सब ध्रुव से प्रवृत्त होते हैं।२७-२८।

ध्रुवेणावष्टब्धास्तापः सूर्यो वै गृह्य तिष्ठति ।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यनुविचलात्मकाः ।।२९

दह्यमानेषु तेजोभिर्जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वतः ।३०
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।
तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम् ।३१
समुद्राद्वायुसंयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः ।
ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्त्तन् दिवाकरः ।३२
निष्ठन्त्यापो मेघेभ्यः शुक्ला: शुक्लैस्तु रश्मिभिः ।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।३३
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायुभिस्तनितंचैव विद्युतस्त्वग्निजाःस्मृताः ।३४
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ते यतो ह्यापस्तस्मादभ्रस्य वै स्थितिः ।
सृष्टाऽसौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ।३५

सूर्य के द्वारा अधिष्ठित जल को पूर्व ग्रहण करके स्थित होता है। समस्त भूतों के शरीरों में जल आश्रित है। उनके जंगम और स्थावरों में दह्यमान् होने पर यह तेज से जल धूमभूत अर्थात् धुँआ होकर सब ओर निकल जाया करते हैं। और उसमें अभ्र उत्पन्न हुआ करते हैं जो कि स्थान अभ्रमय कहा गया है समस्त लोकों के तेज पूर्ण रश्मियों के द्वारा जल का आदान किया करता है।२९-३१। गभस्तियाँ समुद्र से वायु के संयोग से जल का वहन करती हैं। इसके अनन्तर ऋतु के वश में होने के कारण दिवाकर समय पर परिवर्तित होता हुआ मेघों के लिए शुक्ल रश्मियों से शुक्ल ही जल दिया करता है। मेघ में स्थित जल नीचे गिरा करते हैं क्योंकि वे वायु के द्वारा समुदीरित होते हैं इसलिए उपरान्त समस्त भूतों की विवृद्धि के लिये छै मास तक वर्षा करता है। वायु के द्वारा स्तनित और अग्नि से समुत्पन्न विद्युत कहे गये हैं मेहन करने से 'मिहि' — इस धातु से मेघत्व प्रकट किया

करते हैं उनसे नभ से च्युत होकर नीचे पृथ्वी पर गिरा करते हैं ऐसी ही उनकी स्थिति है। ऋषियों के नक्षत्रों की कुण्डलिका-मण्डल रहता यह सभी ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित है।३४-३५।

ध्रुवेणाधिष्ठितश्चासौ वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ।
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम् ।३६
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम् ।
अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते ।३७
स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ।
हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना ।३८
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते ।
द्विगुणा च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः ।३९
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः ।४०
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितः ।
वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः ।४१
तेनासौ चरति व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि ।
अथाङ्गानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च ।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ।४२

ध्रुव से अधिष्ठित वायु पुनः वृष्टि का संहरण किया करता है। सूर्य ग्रह से निकल करके फिर ऋक्ष मण्डल में चरण किया करता है। चार के अन्त में ध्रुव से समधिष्ठित सूर्य में प्रवेश किया करता है। इसलिए सूर्य के रथ का भी सन्निवेश बतलाया जाता है। सूर्य के रथ में एक ही चक्र (पहिया) होता है और उसमें पाँच अरा होते हैं तथा तीन नाभि हुआ करती हैं। वह हिरण्मय अणु और अष्ट चक्र के नाभि वाले चक्र के द्वारा भास्वमान प्रवर्त्तन करने वाले रथ से सूर्य की सहस्र योजन के विस्तार में आयाम वाला कहा जाता है। रथोपस्थ से ईषा दण्ड प्रमाण में द्विगुण है। वह उसका रथ ब्रह्मा के

द्वारा अर्थों के वश पूर्णतः किया गया था जो असङ्गकाञ्चन-दिव्य और गर्वित गामी अश्वों से युक्त था। वेद के अनुसार सप्तविध वाजिरूप छन्दों से संयुत था। यह लक्षणों से वरुण के रथ के ही सदृश था। इसी के द्वारा आकाश में यह भास्वान् प्रतिदिन दिन में चरण किया करता है। इसके अनन्तर सूर्य के अङ्ग और रथ के प्रत्यङ्ग यथाक्रम सम्वत्सर के अवयवों से कल्पित किए गये हैं ।३८-४२।

अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य न स्मृतः ।
अरान् पञ्चर्तवस्तस्य नेम्यः षड् ऋतवः स्मृताः ।४३
राशिर्वरूथो धर्मश्चध्वजश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः ।
अक्षकोट्यो युगान्यस्य आर्तवाहाः कलाः स्मृताः ।४४
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै ।
निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता ।४५
युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ।
सप्ता (सा) श्वरूपाश्छन्दांसि वहन्तेवायुरंहसा ।४६
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप् तथैव च ।
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमः ।४७
चक्रमक्षे निबद्धन्तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः ।
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवम् ।४८
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ।
एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।४९

एक चक्र वाले सूर्य का दिन नाभि है। उसके अरे सम्वत्सर हैं और उसकी नेमियाँ छः ऋतुएँ कही गयी हैं।४३। वरुथ राशि है और ऊर्ध्व में व्यवस्थित ध्वज धर्म है। इसकी अक्ष कोटियाँ युग हैं और आर्तवाह कला कही गयी हैं ।४४। काष्ठायें उसकी घोणा (नासिका) बताई गयी है और क्षण दाँतों की पंक्ति है। निमेष इसका अनुकर्ष है

और इसकी ईषा कला कही गयी है ।४५। उसकी के युगाक्ष कोटी दोनों अर्ध और काम बताये गये हैं । सात रूप वाले छन्द वायु के वेग से वहन किया करते हैं । गायत्री, त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप, पंक्ति, बृहती उष्णिक् ये सात छन्द हैं । चक्र अक्ष में निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित है । चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के सहित वह ध्रुव भ्रमा करता है ।४६-४८। ध्रुव के द्वारा प्रेरित हुआ अक्ष चक्र के साथ ही घूमा करता है । इस प्रकार का अर्थ वश से रथ का सन्निवेश होता है ।४९।

तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः ।
तेनासौ तरणिर्देवो नभसः सर्पते दिवम् ।५०
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुगयोस्तु वै ।५१
मण्डलानि भ्रमे तेऽस्य रथस्य तु ।
कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम् ।५२
युगाक्षकोटि ते तस्य वातोर्मिस्यन्दनस्य तु ।
संकर्षे तौ ध्रुवमहो मण्डले सर्वतोदिशम् ।५३
भ्रमतस्तस्य रश्मी ते मण्डलेषूत्तरायणे ।
वर्द्धते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि ।५४
युगाक्षकोटीसम्बद्धौ द्वौ रश्मी स्यन्दनस्य तौ ।
ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी आकर्षतस्त्विमम् ।५५
आकृष्यते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।५६
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोरन्तरम् ।
ध्रुवेण मुच्यमाने च पुनारश्मियुगेन च ।५७
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन्स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ।५८

इस प्रकार से संयोग के भाग से यह भगवान् भास्कर का रथ सिद्ध हुआ है। उसी रथ के द्वारा यह सूर्य देव आकाश के मध्य में दिव में प्रसर्पण किया करते हैं।५०। उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी दक्षिण में भ्रमण करती हैं और चक्र युगों की वे दोनों रश्मियाँ भ्रमा करती हैं। आकाश में चरण करने वाले इसके रथ के भ्रम में मण्डल हैं और कुम्हार के चाक की भाँति मण्डल सब दिशाओं में घूमता है। उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी चलेयी हैं। मण्डल में पवनों की दिशाओं में वे ध्रुव को संक्रमित किया करती हैं। भ्रमण करते हुए उसकी रश्मियाँ और वे मण्डल उत्तरायण में वर्द्धित हैं। रथ की वे दो रश्मियाँ युगाक्ष कोटियों से सम्बद्ध ध्रुव के द्वारा वे दोनों रश्मियाँ संगृहीत हैं जो रवि को धारण करने वाले ध्रुव के द्वारा आकर्षित किया जाता है। जिस समय में वे ध्रुव के साथ समधिष्ठित होते हैं उस समय में यह सूर्य मण्डलों को अभ्यन्तर में भ्रमण किया करता है। दोनों काष्ठाओं में अस्सी मण्डल शत में चरण करता हुआ रहता है। पुनः ध्रुव के द्वारा मुच्यमान् रश्मि युग से चरण करता है। उसी भाँति बहिर्मण्डल में वह सूर्य मण्डलों को भ्रमण किया करता है। वेग के साथ उद्वेष्टन करता हुआ वह मण्डलों को गमन किया करता है।५१-५८।

— × —

५५—अमावस्या महत्व वर्णन

कथं गच्छत्यमावास्यां मासिमासि दिवं नृप।
ऐलः पुरूरवाः सूत! तर्पयेत कथं पितॄन्।
एतदिच्छामहे श्रोतुं प्रभावन्तस्य धीमतः।१
तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं विस्तरेण तु।
ऐलस्य दिवि संयोगं सोमेन सह धीमता।२

सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितॄणां तर्पणं तथा ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ।३

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च नक्षत्राणां समागतौ ।
अमावास्यां निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले ।४

तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।५

अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति ।
प्रपस्यन्दं ततः सोममर्चयित्वा परिश्रमात् ।६

ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि श्राद्धचिकीर्षया ।
ततः स दिवि सोमं वै ह्युपतस्थे पितॄन्नृपि ।७

ऋषियों ने कहा—हे श्री सूतजी ! पुरूरवा ऐल नृप मास-मास में अर्थात् प्रति मास में अमावस्या में पितृलोक में कैसे जाया करता है और किस प्रकार से पितृगण का तर्पण करता है ? उस धीमान् के इस प्रभाव के श्रवण करने का हम लोगों की इच्छा है । सूतजी ने कहा—मैं अब उसके प्रभाव को विस्तार के साथ बतलाता हूँ । ऐल का दिव लोक में श्रीमान् सोम के साथ संयोग होता है । सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितृगण का तर्पण होता है । सौम्य-बर्हिषद् काव्य और उसी भाँति अग्निष्वात्त हैं ।१-३। जिस समय में चन्द्र और सूर्य नक्षत्रों में समागत होते हैं अमावस्या में एक ही मण्डल में निवास किया करते हैं ।४। उस समय में वह मातामह-दिवाकर निशाकरों को देखने के लिए अमावस्या—अमावस्या में जाया करता है । वहाँ पर वह उन दोनों का अभिवादन करके काल की अपेक्षा करने वाला स्थित हो जाया करता है । इसके उपरान्त वह बड़े ही परिश्रम से सोम का अभ्यर्चन करके पुलकान्वित होता है । महा विद्वान् पुरूरवा ऐल मास में श्राद्ध करने की इच्छा से पितृलोक में सोम का और पितृगण का उप-का उपस्थान किया करता है ।६-७।

द्विलवं कुहुमात्रञ्च तावुभौ तु निशाम्य सः ।
सिनीवाली प्रमाणात्तु कुहुमात्रगतोदये ॥८

कुहुमात्रं पितृभ्यश्च ज्ञात्वा कुहूमुपासते ।
तामुपास्य ततः सोमं कलापेक्षी प्रतीक्षते ॥९

स्वधाऽमृतन्तु सोमाद्वै वसंस्तेषान्तु तृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव स्वधामृतपरिस्रवैः ।
कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्दुह्यते परमांशुभिः ॥१०

सद्योभिक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ।
निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै ॥११
स्वधामृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१२

ऋतुरग्निः स्मृतो विप्रैः ऋतुं संवत्सरं विदुः ।
जज्ञिरे ऋतवस्तस्मादृतुभ्यो ह्यार्तवाभवन् ॥१३

पितरोऽर्त्तवश्चार्द्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनवः ।
पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्दसूनवः ।
प्रपितामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ॥१४

द्विलव और कुहू मात्र इन दोनों को वह देखकर सिनीवाली के प्रमाण से अल्प कुहू मात्र को पितृगण का उद्देश्य जानकर कुहू की ही उपासना किया करता है। उसकी उपासना करके इसके उपरान्त वह कलापेक्षी सोम की प्रतीक्षा किया करता है ॥८-९। वहाँ वास करता हुआ उनकी तृप्ति के लिए सोम से स्वधामृत ग्रहण करता है। दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह स्वधामृत परिस्रवणों से कृष्णपक्ष में भोग करने वालों की प्रीति होती है जो परमांशुओं के द्वारा दोहित की जाती है ॥१०। तुरन्त अभिक्षरण करने वाले उस सौम्य मधु से वह पितृगण के लिए बताई हुई विधि से निवापों के देने पर सौम्य सुधामृत से पितृगण का तर्पण किया किया करता था जो कि सौम्य, बर्हिषद्, काव्य और अग्नि

भाँति अग्निष्वात्त हैं ।११-१२। अग्नि ऋतु कहा गया है और पितरों के द्वारा यत्तु को सम्वत्सर कहा जाया जाता है । ऋतुयें उनसे समुत्पन्न हुए और ऋतुओं में आर्तव हुए थे ।१३। ऋतुओं के पुत्र पितर अर्द्ध मास जानने चाहिए । पितामह ऋतुयें हैं जो अब्दात्मक के मनु हैं प्रपितामह देव कहे गये हैं । पंचाब्द ब्रह्माजी के पुत्र हैं ।१४।

सोमपाबर्हिषदः काव्याः अग्निष्वात्तास्त्रिधा ।
गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्तवाश्च ये ।
स्मृता बर्हिषदस्ते वै पुराणे निश्चयं गताः ।१५
गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्तवाः स्मृताः ।
अष्टका पतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधत ।१६
तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्य्यस्तु परिवत्सरः ।
सोमस्त्विद्वत्सरश्चैव वायुश्चैवानुवत्सरः ।१७
रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दाये युगात्मकाः ।
कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाः स्रवते सुधाम् ।१८
एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चोष्मपा ये ।
तान्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः ।१९
यस्मात्प्रसूयते सोमो मासि मासि विशेषतः ।
ततः स्वधामृतं तद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत्तदमृतं सोमममाप मधु चैव हि ।२०
ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययेत्सुषुम्णेन सोमन्तु सोमपायिनम् ।२१

ये सौम्य—बर्हिषद काव्य और अग्निष्वात्त इस तरह से तीन प्रकार के हैं । जो गृहस्थयज्वा हैं और जो हविर्यज्ञार्तव हैं वे पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए बर्हिषद कहे गये हैं ।१५। गृहमेधी यज्वा अग्निष्वात्तार्तव कहे गये हैं । अष्टका पति काव्य हैं । अब पञ्चाब्दों के

भाँति अग्निष्वात्त हैं ।११-१२। अग्नि ऋतु कहा गया है और पितरों के द्वारा ऋतु को संवत्सर कहा जाता जाता है। ऋतुयें उससे समुत्पन्न हुए और ऋतुओं से आर्त्तव हुए थे ।१३। आर्त्तवों के पुत्र पितर आर्त्तव गण जानने चाहिए। पितामह ऋतु हैं जो पद्मासम्भव के सूनु हैं प्रपितामह देव कहे गये हैं। पंचाब्द ब्रह्मा के पुत्र हैं ।१४।

सोम्यावर्हिषदः काव्याः अग्निष्वात्तास्त्रिधा ।
गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्तवाश्चये ।
स्मृता बर्हिषदस्ते वै पुराणे निश्चयं गताः ।१५
गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्तवाः स्मृताः ।
अष्टका पतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधत ।१६
तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।
सोम इद्वत्सरश्चैव वायुश्चैवानुवत्सरः ।१७
रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः ।
कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाः स्रवते सुधाम् ।१८
एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये ।
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः ।१९
यस्मात्प्रस्रूयते सोमो मासि मासि विशेषतः ।
ततः स्वधामृतं तद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत्तदमृतं सोममवाप मधु चैव हि ।२०
ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययेत् सुषुम्णेन सोमन्तु सोमपायिनम् ।२१

वे सौम्य—बर्हिषद काव्य और अग्निष्वात्त इस तरह से तीन प्रकार के हैं। जो गृहस्थयज्वा हैं और जो हविर्यज्ञार्तव हैं वे पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए बर्हिषद कहे गये हैं ।१५। गृहमेधी यज्वा अग्निष्वात्तार्तव कहे गये हैं। अष्टका पति काव्य हैं। अब पञ्चाब्दों को

विषय में समझ लो ।१६। उनमें संवत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर है। सोम इद्वत्सर है और वायु अनुवत्सर है उनका वत्सर है। वे पंचात्मक युगात्मक हैं। काल से अधिष्ठित कृश चन्द्रमा उनमें सुधा का स्रवण किया करता है ।१७-१८। ये इतने देवकृत्य बताये गये हैं। सोमरस और स्वधा जो हैं उनको वहीं से पुरुरवा जब तक रहता है सृष्टा किया करता है। क्योंकि सोम मास-मास में विशेष रूप से प्रवेश किया करता है। वह स्वधामृत सोमपायी पितृगणों के लिए है। वह सोमजनित और मधु को प्राप्त करता है ।१९-२०। इसके अनन्तर सुधा का पान किये हुए सोम को वह सूर्य एक रश्मि के द्वारा सोमपायी सोम को सुषुम्णा से आप्यायित किया करता है ।२१।

निःशेषितकलाः पूर्वा युगपद्व्यापयन्प्रभुः ।
सुषुम्णाप्यायमानस्य भागं भागमहः क्रमात् ।२२
कलाः क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च ।
एवं स सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।२३
पौर्णमास्यां सदृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेष्वहः क्रमात् ।
देवैः पीतसुधं सोमं पुरापश्चात्पिबेद्रविः ।२४
पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः ।
आप्याय यत्र सुषुम्णेन भागं भागमहः क्रमात् ।२५
सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कलाः ।
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णाः शुक्लाप्याययन्ति च ।२६
एवमाप्यायतो सोमः क्षीयते च पुनः पुनः ।
समृद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।२७
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृतस्तद्वत् सुधात्मकः ।
कान्तः पञ्चदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ।२८

पहिले सम्पूर्ण पूर्व कला एक ही साथ स्थापित हुई थी । सुषुम्णा के द्वारा अध्यक्ष मास का दिन के क्रम से भाग-भाग हो गए । वे कृष्ण कलायें क्षीण हुआ करती हैं और शुक्लपक्ष की कलायें आप्यायन किया करती हैं । इस प्रकार से सूर्य के ही वीर्य से चन्द्रमा का तनु आप्यायित है ।२२-२३। कृष्णपक्ष का सम्पूर्ण मण्डल पूर्णमासी में दिखलाई दिया करता है । इस प्रकार से ही दिनों के क्रम से कृष्णपक्ष में क्षीण आप्यायित होता है । देवों के द्वारा जिसकी सुधा का पान कर लिया गया है उस सोम को पहिले और पीछे रवि पान किया करता है ।२४। पाकर एक रश्मि के द्वारा पन्द्रह दिन तक पीत को अनुक्रम से भाग-भाग करके सुषुम्णा के द्वारा आप्यायन किया करता है । सुषुम्णा के द्वारा आप्यायमान की शुक्ल कलायें बढ़ा करती हैं । इस कारण से कृष्णपक्ष की कलाओं का ह्रास होता है और शुक्ल कलायें आप्यायन किया करती हैं ।२५-२६। इसी भाँति यह सोम पुनः पुनः आप्यायित होता है और क्षीण हुआ करता है । शुक्लपक्षों में इसी प्रकार से सोम की समृद्धि एवं क्षय हुआ करता है ।२७। इस रीति से यह पितृमान सोम बतलाया गया है और इसी प्रकार से यह सुधात्मक है । शुभाशुभ परिकल्पों के द्वारा सम्बद्ध है उसके साथ ही यह कान्त है ।२८।

अतः परं प्रवक्ष्यामि पर्वाणां सन्धयश्च याः ।
यथा ग्रन्थन्ति पर्वाणि अम्बुलाद्गिक्षुवेणुवत् ।२९
तथाब्दमासाः पक्षाश्च शुक्लाः कृष्णास्तु वै स्मृताः ।
पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः सन्धयस्तथा ।३०
अर्द्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च ।
अग्न्याधानक्रिया यस्मान्नीयन्ते पर्वसन्धिषु ।३१
तस्मात्तु पर्वणोह्यादौ प्रतिपद्यादिसन्धिषु ।
सायाह्ने अनुमत्याश्च होतव्यो कालरुध्यतो ।

तस्माद् द्वापरेव राकायां कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ॥२२

प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिके ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ॥२३

व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखायूर्ध्वं युगान्तरम् ।
युगान्तरोदिते चैव चन्द्रे लेखोपरिस्थिते ॥२४

पूर्णमासव्यतीपातौ यदा पश्येत्परस्परम् ।
तौ तु वै प्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ ॥२५

तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा संख्यातुमर्हसि ।
स वै सम्यक्क्रियाकालः षष्ठः कालोऽभिधीयते ॥२६

इसके आगे जो पर्वों की सन्धियाँ होती हैं उनके विषय में वर्णन करते हैं। जिस प्रकार से बाँस के ईख के गाँठ की तरह पर्व ग्रथित हुआ करते हैं। तथा अर्द्ध मास, तथा शुक्ल और कृष्ण कहे गये हैं। पौर्णमासी का जो भेद होता है वे ग्रन्थियाँ हैं (२०-२१)। अर्द्ध मास की द्वितीया प्रभृति जो तिथियाँ हैं। वे ही पर्व हैं जिनके पर्व सन्धियों में अग्न्याधान किया करती जाया करती है उनमें प्रतिपदा आदि तिथियों में पर्व के आदि में होता है। सायाह्न में और अनुमति का सन्धि काल कहा जाया करता है। वो काल ही राका का अपराह्न काल जानना चाहिए (२१-२२)। अपराह्णिक काल के व्यतीत हो जाने पर कृष्ण पक्ष की प्रकृति है। सायाह्न में प्रतिपदा में वह काल पौर्णमासिक होता है (२३)। व्यतीपात में सूर्य के स्थित होने पर लेखा से ऊर्ध्व में युगान्तर होता है। लेखा के ऊपर में स्थित चन्द्रमा के युगान्तर में उदित होने पर पूर्णमास और व्यतीपात जिस समय में परस्पर में देखते हैं। वे दोनों जब तक प्रतिपत् है उस काल में व्यवस्थित होते हैं। वह काल सूर्य का उद्देश करके देखकर संख्या करने के योग्य होता है और वह ही सन्धि का काल है जो कि षष्ठ काल कहा जाता है (२४-२६)।

पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
तस्मादाप्यायते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः ।३७
यदान्योन्यवतीपातौ पूर्णिमां प्रेक्षते दिवा ।
चन्द्रादित्यावपराह्णे तु पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ।३८
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ।३९
अत्यर्थं राजते यस्मात् पौर्णमास्यां निशाकरः ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ।४०
अमावसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्या ततः स्मृता ।४१
उद्दिश्य तामभावास्यां यदा देवौ समागतौ ।
अन्योऽन्यं चन्द्रसूर्यौ तु दर्शनाद्दर्श उच्यते ।४२

पूर्ण पक्ष में पूर्ण इन्दु होता है और रात्रि सन्धियों में पूर्णिमा होती है। इसी से पूर्णमासी में निशाकर आप्यायन प्राप्त किया करता है।३७। जब अन्योन्यवती पूर्णिमाकार प्राप्त करके दिवा में प्रेक्षण करता है और अपराह्न में चन्द्र और आदित्य होते हैं तब पूर्णत्व होने से पूर्णिमा कही गयी है।३८। क्योंकि पितृगण देवताओं के साथ उसको मानते हैं इसी कारण से उसका अनुमन्य मान होने से अनुमति कहा नाम हुआ है और पूर्णत्व होने से पूर्णिमा है।३९। पौर्णमासी में निशाकर बहुत ही अधिक दीप्तिमान् होता है यही कारण है कि चन्द्रमा के रञ्जन होने ही से कविगण उसको राका कहते हैं।४०। जिस समय में चन्द्रमा और दिवाकर दोनों साथ में अमावसित होते हैं वह एक ही पंचदशी रात्रि होती है जिसको अमावस्या की रात्रि कहा गया है।४१। उस अमावस्या का उस अमावस्या को उद्देश्य करके जब दोनों का समागम होता है और चन्द्र तथा सूर्य अन्योन्य को देखते हैं तो दर्शन होने के कारण से ही उसका दर्श यह नाम कहा जाता है।४२।

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां स कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरः कुहुमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ।४३
दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै ।
दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यां तु सूर्यं प्राप्तो तु चन्द्रमाः ।४४
सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै ।४५
समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निपतन्रविः ।
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमा सूर्यमण्डलात् ।४६
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रियाः ।
एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यां तु पार्वणम् ।४७
दिवा पर्व त्वमावास्यां क्षीणेन्दौ धवले तु वै ।
तस्माद्दिवा त्वमावास्यां गृह्यते यो दिवाकरः ।४८
कुह्विति कोकिलेनोक्तं यस्मात् कालात् समाप्यते ।
तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता ।४९

दो-दो लव अमावस्या में हैं वह काल पर्व सन्धियों में द्व्यक्षर और कुहू मात्र है। यह पर्वकाल कहा गया है।४३। जिसमें चन्द्रमा दिखलाई दिया गया हो वह अमावस्या यहाँ पर मध्याह्न प्रभृति है दिवा है उससे ऊर्ध्व में रात्रि में सूर्य के प्राप्त होने पर चन्द्रमा सूर्य के साथ सहसा उदित होवे उसके पश्चात् प्रातःकालीन होता है।४४-४५। दोनों लवों का समागम करके मध्याह्न में रवि निपतित हो रहा हो और सूर्य मंडल से चन्द्रमा निकलाई देवे तब शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् होती है। निर्मुच्यमान उन दोनों मंडलों के मध्य में वह काल जो होता है आहुति काल है और दर्श की वषट् क्रिया का है। अमावस्या में यह ऋतुमुख पार्वण जानना चाहिए।४६-४७। धवल और इन्दु के क्षीण होने पर अमावस्या में दिवा पर्व होता है। इसी से अमावस्या में जो दिवाकर ग्रहण किया जाता है।४८। कुहू यह ध्वनि कोकिल के द्वारा कहा गया जिस

काल के समाप्त किया जाता है उसी काल में उसका नाम कुहू अमा-वस्या कुहू — इस नाम से कही गयी है ।४९।

सिनीवालीप्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता ।५०
अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता ।५१
इत्येष पर्वसन्धीनां कालोवैद्विलवः स्मृतः ।
पर्वणान्तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः ।५२
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे ।
प्रतिपत्प्रतिपन्नस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः ।५३
कालः कुहू सिनीवाल्योः समुद्रो द्विलवः स्मृतः ।
अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकालः कला स्मृता ।५४
यस्मादापूर्यते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ।५५
तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी ।
तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्यां मया क्षयः ।५६

सिनीवाली का प्रमाण तो यही है कि निशाकर क्षीण शेष होता है और अमावस्या अर्क में प्रवेश किया करती है उस समय में यह सिनीवाली कही गयी है ।५०। अनुमति राका—सिनीवाली तथा कुहू इन सबका द्विलव काल होता है । कुहू कही गई है ।५१। पर्व सन्धियों का यह काल ही लव कहा गया है । पर्वों का तुल्य काल तुल्य आहुति वषट् किया जाता है । चन्द्र सूर्य के व्यतीपात में दोनों पूर्णिमायें समान हैं प्रतिपदा में प्रतिपन्न द्विमात्रक पर्वकाल हुआ करता है ।५२-५३। कुहू और सिनीवाली दोनों का समुद्रकाल द्विलव कहा गया है । अर्क निर्मण्डल सोम में पर्व काल कला कही गयी है ।५४। क्योंकि सोम पञ्चदशी में पूरित नहीं होता है । पूर्णिमा पाँच और दस कलाओं से

दिवसों के क्रम से होती है । इसकि में पंचदश सोम में सोलहवीं कला नहीं है । इसलिये हे विप्र ! मैंने सोम का पंचादशी में क्षय कहा है ।५३-५५।

इत्येते पितरोदेवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवोऽब्दाख्या देवास्तान् भावयन्ति हि ।५७
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄन् श्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्चसत्वञ्च प्राप्तिःश्राद्धस्यचैव हि ।५८

न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः ।
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांस चक्षुषा ।५९

अत्र देवान् पितॄंश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
तेषां ते धर्मसामर्थ्यात् स्मृताः सायुज्यगा द्विजः ।६०

यदि आश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् ।
अन्तेवास प्रसीदन्ति श्राद्धयुक्तेषु कर्मसु ।६१
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया श्रुति ।
श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा ।६२
कर्मस्वेतेषु ये सक्तावर्त्तन्त्या देहपातनात् ।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमान उपासते ।६३

ये इतने पितृदेव, सोमपा, सोमवर्द्धन आर्तव—ऋतव हैं । इनके अनन्तर अब्ददेव उनको भावित किया करते हैं ।५७। इसके आगे जो श्राद्धभोगी पितृगण हैं उनको बतलाता हूँ । उनकी गति-सत्व और श्राद्ध की प्राप्ति के विषय में कहता हूँ ।५८। जो मृत हो जाते हैं । उनकी गति तथा पुनरागति जानी नहीं जा सकती है । वह प्रसिद्ध तपके द्वारा भी जब नहीं जानी जाती है तो फिर तो बात ही क्या जो चक्षु से युक्त है ।५९। यहाँ पर देवों को पितरों को बतलाया गया है । ये पितर लौकिक कहे गये हैं । उनमें वे धर्म की सामर्थ्य से द्विजों के द्वारा

सायुज्य में गमन करने वाले बताये गये हैं ।६०। यति या माध्यम धर्म से प्रजालोकों स्वर्गकियों को कहा गया है और वहाँ पर अन्य श्राद्धयुक्त कर्मों से प्रसन्न हुआ करते हैं । ब्रह्मचर्य—तपस्या, यज्ञ, भूलोक में प्रजा, श्राद्ध, विद्या और अन्न के सात प्रकार हैं । इन कर्मों में जो सक्त हैं और देह का पातन जब तक होता है तब तक रहा करते हैं वे देवों—पितृगणों के साथ तथा सोमप और ऊष्मपों के साथ स्वर्गलोक में गये हुए पितृलोक में आनन्द को प्राप्त किया करते हैं और पितृमन्त तथा सत्र किया करते हैं ।६२-६३।

प्रजावतां प्रसिद्धैषा उक्ता श्राद्धकृतां च वै ।
तेषां निवापे दत्तं हि तत्कुलीनैस्तु बान्धवैः ।६४
मासश्राद्धं हि भुञ्जानास्तेऽन्ये वै सोमलौकिकाः ।
एते मनुष्याः पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै ।६५
तेभ्योऽपरे तु येऽन्ये वै सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेषु स्वधास्वाहाविवर्जिताः ।६६
भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः ।६७
दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति त्वितस्ततः ।६८
सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्च सर्वशः ।
परान्नान्यभिकाङ्क्षन्तः काल्यमानाइतस्ततः ।६९
स्थानेषु पच्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै ।
शाल्मल्यां वैतरिण्यां च कुम्भीपाके च वालुके ।७०

जो प्रजा वाले लोग हैं उनके यहाँ पर प्रसिद्ध है और जो श्राद्ध करने वाले हैं उनके यहाँ पर कहा गया है । उनके कुल में होने वाले बान्धवों के द्वारा निवाप में दिया हुआ श्राद्ध अर्थात् मास श्राद्ध का

भोग करने वाले हैं वे भी ये सोम लौकिक हैं। वे मनुष्य पितर हैं जो कि मांस श्राद्ध का भोजन करने वाले हैं।६४-६५। उनमें दूसरे जो अन्य हैं जो सर्व योनियों में संकीर्ण हैं वे आश्रम धर्मों से महान् परिच्युत हैं और स्वाहा तथा स्वधा—इन दोनों से विवर्जित हैं। भिन्न देह में दुर्लभ प्रेतभूत और यमक्षयमें अपने दुष्कर्मों की चिन्ता करते हुए किये हुए कर्मों का दण्ड भोगने का जो स्थान था उस पर लाये गये हैं।६६-६७। दीर्घ-अत्यन्त कृश-रूखी मूँछों वाले—वस्त्रोंसे रहित—भूख और प्यास से सताये हुए वहाँ पर इधर-उधर भागे-भागे फिरते हैं।६८। जल के प्राप्त करने के लिए किसी सरिता, सरोवर, तड़ाग और पुष्करिणियों की यत्न और खोज करते हुए दौड़ लगाते फिरा करते हैं। इधर-उधर कारयमान होते हुए पराकन्न की इच्छा रखते हुए रहा करते हैं किन्तु वे उन यातनाओं भोगने के स्थानों में बरबस पटक दिए जाया करते हैं—नारकीय यातना भोगने के नाम ये हैं—तामसी, वैतरणी, कुम्भीपाक, तप्तवालुक आदि हैं।६९-७०।

असिपत्रवने चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ।
तत्रस्थानान्तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम् ।७१
तेषां लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रतः ।
भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै ।७२
प्राप्तास्तु तर्पयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान् ।
अप्राप्ता यातनास्थानं प्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा ।७३
पश्चाद्ये स्थावरान्तो वै भूतानीके स्वकर्मभिः ।
नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषु मूर्त्तिषु ।७४
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारे श्राद्धं दत्तन्तु प्रीणयेत् ।७५
काले न्यायागतम्पात्रे विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति ।

यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम् ॥८४
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं मनुरब्रवीत् ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ॥८५

अपने ही बुरे कर्मों के द्वारा नारकीय मानव असिपत्र वन नाम वाले नरक में डाल दिए जाते हैं जहाँ पर चारों ओर अग्नि और तलवारें लगी रहा करती हैं । वहाँ पर जो स्थित रहते हैं वे अत्यधिक दुःखित रहा करते हैं और उनके शयन करने तक का कोई भी स्थान नहीं होता है । जैसे अन्य लोकों में स्थित उनके बान्धवों के द्वारा भी नाम और गोत्र का उच्चारण करके अपसव्य हो भूमि में दर्भों पर पिण्ड दिए गए हैं ।८१-८२। उन स्थानों में अवस्थितों को प्राप्त हुए उनको वे पिण्ड तृप्त किया करते हैं । जो यातना के स्थान में अप्राप्त हैं वे पाँच प्रकार होकर पाँच प्रकार से विभक्त होते हैं । पीछे जो अपने कर्मों के द्वारा दशावस्थान में भ्रष्ट हैं वे तिर्यक् योनि वाले मूर्तियों में तथा प्राणियों के नाना रूपों में जिस आहार होते हैं जो उस-उस आहार में दिया हुआ श्राद्ध उनको प्रसन्न एवं तृप्त किया करता है । समय पर न्याय पूर्वक पात्र में विधि के सहित प्रतिपादित एवं प्राप्त अन्न को जहाँ-जहाँ पर अवस्थित होता है प्राप्त करते हैं ।८२-८३। जिस प्रकार से गौओं के प्रनष्ट होने पर वत्स माता को प्राप्त किया करता है उसी प्रकार से श्राद्धों में यह दृष्टान्त है कि मन्त्र उनको प्राप्त कराया करता है ।८४। इसी प्रकार से श्रद्धा से दिया हुआ अविकल श्राद्ध है—ऐसा श्री मनु ने कहा है । अपने दिव्य नेत्रों के द्वारा देखकर भगवान् सनत्कुमार ने कहा है ।८५।

नानागतानां प्रेतानां प्राप्तिः श्राद्धस्य चैव हि ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥८६
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।

अग्नीष्वपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि ।७९
एते तु पितरो देवा मनुष्याः पितरश्च ये ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।८०
इत्येष विषयः प्रोक्तः पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम् ।८१
इत्येष सोमसूर्याभ्यामैलस्य च समागमः ।
अवाप्तिः श्रद्धयानेन पितॄणाञ्चैव तर्पणम् ।८२
पर्वणाञ्चैव यः कालो यातनास्थानमेव च ।
समासात् कीर्तितस्तुभ्यं सर्ग एष सनातनः ।८३
वैरूप्यं येन तत्रार्थे कथितस्त्वेकदेशिकम् ।
अशक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ।८४
स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरितः ।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च भूयः किं कथयामि वः ।८५

देवों के सनातन का लाभ और श्राद्ध की प्राप्ति इसके लिए कृष्ण पक्ष के ही निमित्त और जो शुक्ल पक्ष होता है वह भी उनके शमन के लिए प्राप्ति होती है ।७८। ये हमारे पितर देव हैं—देव पितर हैं । ये अन्तरिक्ष में विचरते हैं और दिव्यलोक में देव पितर हैं ।७९। ये पितृदेव हैं और जो देव पितर हैं तथा मनुष्य पितर हैं एवं पिता-पितामह और प्रपितामह हैं ।८०। यह इतना सोमपायी पितृगणों का विषय बतला दिया गया है । यह पितृगण का महत्व पुराण में निश्चय को प्राप्त हुआ है ।८१। यह सोम और सूर्य का तर्पण तथा पर्वों का काल और यातना भोगने का स्थान यह सभी संक्षेप के साथ तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है । यह सर्ग और सनातन है । जिसके द्वारा वैरूप्य होता है यह सभी एक देशिक कह दिया गया है इसकी परिसंख्या नहीं की जा सकती है । जो भूतिकी इच्छा करने वाला है उसे श्रद्धा करनी चाहिए । स्वायम्भुव देव का यह सर्ग विस्तार के साथ और आनुपूर्वी के सहित

मैंने आपको सब बतला दिया है। अब आगे आप लोगों को मैं क्या बतलाऊँ—यह कहिए ।८५।

५६—चतुर्युग मान वर्णन

चतुर्युगानि यानि स्युः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एषां निसर्गं संख्याञ्च श्रोतुमिच्छाम विस्तरात् ।१
एतच्चतुर्युगं त्वेवं वक्ष्यामि निबोधत ।
तत्प्रमाणं प्रसंख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नशः ।२
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दन्तु मानुषम् ।
तेनाब्देह प्रसंख्याय वक्ष्यामि तु चतुर्युगम् ।३
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तु ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन् मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ।४
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ।५
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।६
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पैत्रो मासः स उच्यते ।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि तु ।
पैत्रः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ।७

ऋषियों ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में जो चतुर्युग हैं। अब हम लोग उनका निसर्ग और उनका संख्या काल श्रवण करना चाहते हैं और पूर्ण विस्तार के साथ इसे सुनना चाहते हैं ।१। श्री सूतजी ने कहा—यह जो चारों युगों की चौकड़ी जिस प्रकार से है उसको मैं बतलाता हूँ उसे भली भाँति समझलो। उसका जो प्रमाण होता है उसको

प्रसंख्यान करके पूर्ण रूप से विस्तार के सहित मैं बतला रहा हूँ ।२। लौकिक प्रमाण के द्वारा मानुष वर्ष का निष्पादन करके उसी के द्वारा यहाँ पर प्रसंख्यान करके मैं सारी युगों का वर्णन करूँगा ।३। पन्द्रह निमेष की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं की एक कला गिनी जाती है । तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र हुआ करता है ।४। सूर्य मानुष लौकिक अहोरात्र में विभक्त होता है । रात्रि का समय प्राणियों के शयन कर निद्रा लेने का होता है और दिन विविध भाँति के कर्मों की चेष्टा करने के लिए हुआ करता है ।५। पितृगण का मास रात्रि और दिन हुआ करता है उन दोनों का प्रतिभाग इसी भाँति हुआ करता है कि उनका कृष्ण पक्ष मासका दिन हुआ करता है और जो मास का शुक्ल पक्ष होता है वही उनकी स्वप्न के लिए होती है ।६। जो ये तीस मानुष मास हैं वह पैत्र्य मास कहा जाया करता है । तीन सौ साठ मासों का पैत्र्य सम्वत्सर होता है जो मानुष के द्वारा विभावित हुआ करता है ।७।

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै ।
दश च द्व्यधिका मासाः पितृसंख्येह कीर्तिताः ।८
लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ।
एतद्दिव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।९
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तु यदुदक् चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम् ।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः ।१०
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु ते ।
तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः ।११
त्रीणि वर्षशतान्येवं षष्टिवर्षास्तथैव च ।

दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।१२
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः ।१३
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि ।
वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसम्वत्सरः स्मृतः ।१४

मानुष मास के मान के द्वारा ही जो वर्षों का एक अनक होता है वे पितृगणके तीन वर्ष संख्यात किए गये हैं । जब अधिक मास होतेहैं वहाँ पर यही पितृसंख्या कीर्तित की गयी है ।९। लौकिक प्रमाण से जो मानुष शब्द कहा गया है—यह दिव्य अहोरात्र होता है इस प्रकार से यही वैदिकी श्रुति है ।९। दिव्य रात्रि और दिन एकवर्ष होता है और इन दोनों का प्रविभाग इसी प्रकार से हुआ करताहै कि जो उत्तरायण है वह दिन होता है और जो दक्षिणायन होता है वही रात्रि होती है । ये ही रात्रि और दिन दिव्य उनके प्रसंख्यान किये गये हैं ।१०। तीस जो वर्ष होते हैं वही दिव्य मास कहा गया है । मनुष्यों के जो सत हैं वे दिव्य मास कहा गया है । मनुष्यों के जो शत हैं वे दिव्य तीन मास होते हैं । इसी भाँति से यह संख्यात हुआ करता है और वही दिव्य विधि बतलाई गयी है ।११। तीन सौ साठ वर्ष का इस प्रकार से एक दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा प्रकीर्तित किया गया है ।१२। मानुष प्रमाण से जो तीन सहस्र वर्ष होते हैं और तीस और होते हैं वही सप्त र्षियों का वत्सर कहलाता है । नौ सहस्र मानुष वर्ष और नब्बे अधिक अर्थात् नौ हजार नब्बे वर्ष का ध्रुव सम्वत्सर कहा जाया करता है । ।१३-१४।

षट् त्रिंशत् सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।
दिव्यं वर्ष सहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ।१५
इत्येतदृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता ।१६

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥१७
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताभिधीयते ।
द्वापरञ्च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत् ॥१८
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥१९
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकपादे निवर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२०
त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदुः ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२१

जो संख्या के वेत्ता पुरुष हैं वे छत्तीस हजार मानुष वर्ष और साठ हजार संख्या के द्वारा जो संख्यात किए गए हैं उनको दिव्यसहस्र वर्ष कहा करते हैं ।१६। हे द्विजगण ! ऋषिगणों के द्वारा दिव्य संख्या से यहाँ बताया गया है और दिव्य प्रमाण के द्वारा ही युग संख्या भी प्रकीर्तित की गयी है । ऋषियों ने भारत वर्षमें चार युग बतलाये हैं । उन चारों युगों के नाम कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग हैं । ये चारों युग क्रम से ही हुआ करते हैं । सबसे पूर्व कृतयुग होता है । उसके पश्चात् त्रेतायुग कहा गया है और फिर द्वापर तथा कलियुग होता है । चार सहस्रवर्षों का कृतयुग होता है । उस कृतयुगकी उतनी ही सौ वाली सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है ।१७-१९। इतर तीनों में सन्ध्या से युक्त और सन्ध्यांश से युक्तों में एक पाद में भी सहस्र निवृत्त हो जाते हैं ।२०। युग संख्या के वेत्ता त्रेता को तीन सहस्र कहा करते हैं । उसकी भी तीन सौ वाली संख्या होती है और संध्या के समान ही संध्यांश होता है ।२१।

द्वे सहस्रे द्वापरन्तु सन्ध्यांशौ तु चतुःशतम् ।
सहस्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तित ।
द्वे शते च तथान्ये च सन्ध्या सन्ध्यांशयोः स्मृते ।२२
एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या तु संज्ञिता ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।२३
तत्र सम्वत्सराः सृष्टा मानुषास्तान्निबोधत ।
नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया ।
अष्टाविंशत्सहस्राणि कृतं युगमथोच्यते ।२४
प्रयुतन्तु तथा पूर्णं द्वे चान्ये नियुते पुनः ।
षण्णवतिसहस्राणि संख्यातानि च संख्यया ।२५
त्रेतायुगस्य संख्यैषा मानुषेण तु संज्ञिता ।
अष्टौ शतसहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां द्वापरं युगम् ।२६
चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलिर्युगम् ।
द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्राणि तु संख्यया ।
एतत्कलियुगं प्रोक्तं मानुषेण प्रमाणतः ।२७
एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता ।
चतुर्युगस्य संख्याता सन्ध्या सन्ध्यांशकैः सह ।२८

दो सहस्र वर्ष द्वापर के बताये गये हैं तथा उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी चार सौ होते हैं । कलियुग का प्रमाण एक सहस्र वर्ष होता है । और उसके भी सन्ध्या तथा सन्ध्यांश दो सौ कहे गये हैं ।२२। इस प्रकार से यह बारह सहस्र वाली युग संख्या मानी होती है । ये चारों युग कृत-त्रेता-द्वापर और कलि इस प्रकार से क्रम से हुआ करते हैं । ।२३। उनमें मानुष सम्वत्सरों का सृजन किया गया है उनको भी आप समझलो । यहाँ पर संख्या के क्रम—दो और पाँच नियुत और अट्ठाईस सहस्र कृतयुग कहा जाता है ।२४। पूर्ण प्रयुत और दो नियुत

तथा छियानबे सहस्र संख्या के द्वारा त्रेतायुग की यह संख्या मानुष प्रमाण से संख्या बतायी गयी है । मानुष वर्ष आठ लाख और चौंसठ हजार वर्षों के प्रमाण वाला द्वापर युग कहा गया है ।२५-२६। चार नियुत और अन्य बत्तीस सहस्र वर्षों की संख्या वाला कलियुग मानुष प्रमाण से कहा गया है ।२७। यह चारों युगों की अवस्था मानुष प्रमाण के द्वारा कीर्तित की गयी है और चारों युगों की संख्या उनकी सन्ध्या और सन्ध्यांश के सहित संख्यात की गयी है ।२८।

एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ।२९
मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधत ।
एकत्रिंशत्तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ।३०
तथा शतसहस्राणि दश चान्यानि भागशः ।
सहस्राणि तु द्वाविंशच्छतान्यष्टाधिकानि च ।३१
अशीतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तु षट् ।
मन्वन्तरस्य संख्येषा मानुषेण प्रकीर्तिता ।३२
दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः ।
सहस्राणां शतान्याहुः सप्त वै परिसंख्यया ।३३
चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते ।
मन्वन्तरस्य कालस्तु युगैः सह प्रकीर्तितः ।३४
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ।३५
एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुस्तु तद्विदः ।
ततस्तु प्रलयः कृत्स्नः स तु संप्रलयो महान् ।३६

इन चारों युगों की साधिका इकहत्तर चौकड़ी जिसमें कृत, त्रेता आदि सभी युग होते हैं एक मनु का अन्तर होता है । अब इसी मन्वन्तर की संख्या मानुष प्रमाण से भी समझ लो । द्विजातियों के द्वारा

संख्या से इकहत्तर करोड़ अड़सठ लाख की गई है। तथा सौ सहस्र और अन्य शेष सहस्र एवं आठ अधिक चालीस सौ वर्ष एवं भी मास से अधिक प्रमाण में यह संख्या मन्वन्तर की कही गयी है।२८-३२। अब मैं द्वितीय प्रमाण से मनु का अन्तर बतलाता हूँ। यह परिसंख्या से भी सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर बतलाता हूँ। यह परि-संख्या से भी सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर कहा जाता है। उसके आधा लोग इसका चौदह गुणा काल कहा करते हैं और मन्वन्तरों का काल युगोंके साथ ही कहा गया है। ये चारों युगों की नाम वाली साधिका इकहत्तर चौकड़ी की होती हैं और क्रम से यह परिवृत्त होती है तो वही मन्वन्तर कहा जाता है। कल्प के बाद पूर्ण प्रलय होता है। यह महान् सम्बन्ध है।३३-३६।

कल्पप्रमाणो द्विगुणो यथा भवति संख्यया ।
चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतत्रेतायुगान्यपि ।३७
त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ।
युगपत्समवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते ।३८
क्रमागतं मयाप्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथा क्रमात् ।३९
प्रोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत ।
अथ त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये ।
श्रौतस्मार्तं तु धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः ।४०
दाराग्निहोत्रसम्बन्धमृग्यजुःसामसंहिताः ।
इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।४१
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम् ।
वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।४२

जिस प्रकार से संख्या से कल्प का प्रमाण द्विगुण होता है। कृत-युग और त्रेतायुग चार युगों की संख्या का व्याख्यान किया गया है।

अब त्रेताकी सृष्टि को बतलाऊँगा । द्वापर और कलियुग को भी बतलाऊँगा । एक ही साथ समवेत रूप से दोनों दो प्रकार से नहीं बतलाये जा सकते हैं । क्रम से प्राप्त इन दोनों युगों को मैं भी आपको नहीं बतलाता हूँ । ऋषियों के वंश के प्रसङ्ग से व्याकुलता होने के कारण तथा क्रम से त्रेतायुग में शेष नहीं बतलाया है । अब शेष बतलाते हैं । भक्ति समस्त थी । इसके अनन्तर त्रेता युग के आदि में मनु और जो सप्तर्षि हैं उनको श्रौत एवं स्मार्त धर्मों को बतलाते हुए ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित किया गया था ।४०-४१। दारा-अग्निहोत्रों का सम्बन्ध ऋक्, यजु और साम संहितायें—इत्यादि बहुलता से श्रौत धर्म सप्तर्षियों ने कहा था । स्मार्तधर्म आचार के लक्षण वाला और वर्णाश्रमों के आचार से युक्त परम्परा के द्वारा आया हुआ धर्म इसको स्वायम्भुव मनु ने बतलाया था ।४१-४२।

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा ।
तेषां सुतप्ततपसामार्षेणानुक्रमेण ह ।४३
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः ।
अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत् पूर्वकमेव च ।४४
अभिवृत्तास्तु ते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः ।
आदिकल्पेतुदेवानां प्रादुर्भूतास्तुतेस्वयम् ।४५
प्रणाशेष्वथ सिद्धानामन्येषाञ्च प्रवर्तते ।
मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रशः ।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिताः ।४६
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणास्तु ये ।
सप्तर्षिभिस्तु ये प्रोक्ताः स्मार्तं तु मनुरब्रवीत् ।४७
त्रेतादौ संहता वेदाः केवलं धर्मसेतवः ।
संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ।
ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयत ।४८
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ।

स्वधर्म्मसंयुक्ताः साङ्गा यथा धर्मं युगे युगे ।
विक्रियन्ते स्वधर्मं तु वेदवादाद्यथायुगम् ॥४९

सत्य से, ब्रह्मचर्य से, श्रुत, तप से और उनके भली भाँति तपे हुए तप से—अनुक्रम मार्ग से बतलाया था ।४३। इसके पश्चात् आदि त्रेता युग में सप्तर्षियों ने और मनु ने अबुद्धि पुरस्सर ही एक बार पहिले ही उसने मन्त्रों को अभियुक्त किया था । ये ही अभियुक्त मन्त्र तारक आदि वर्णों के द्वारा वेदों के आदि काल में स्वयं ही प्रादुर्भूत हो गए थे ।४४-४५। इसके अनन्तर वे सिद्धों के तथा अन्यों के समापणों में प्रवृत्त हुए हैं । इसके पश्चात् बहुतों कल्पों के व्यतीत होने पर यह संक्षेप हो रहा है ।४६। फिर उनके ये मन्त्र प्रतिभा के रूप में उपस्थित हुए थे । ऋचायें—यजु, साम और जो अथर्ववेद के मन्त्र हैं तथा सप्तर्षियों के द्वारा जो मन्त्र कहे गये हैं और स्वायंभुव मनु ने कहा था । त्रेतादि में संहृत हुए वेद केवल धर्म के सेतु थे । फिर आयु के सक्षेप होने से वे ही द्वापर में व्यवस्थित हुए हैं । महर्षिगण तप के द्वारा रात दिन वेदों का अध्ययन किया करते थे ।४७-४८। भगवान् स्वयम्भू ने पूर्व में अनादि निधन अर्थात् आदि-अन्त से रहित दिव्य वेदों को कहा था । वे युग-युग में धर्म के अनुसार ही अङ्गों के सहित स्वधर्म संयुक्त हुए थे । युग के अनुसार वेदवाद से अपने धर्म को विकृत किया करते हैं ।४९।

आरम्भयज्ञाः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशः स्मृताः ।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः ।५०
ततः समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्म्मशालिनः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनश्च वै ।५१
ब्राह्मणैश्च विधीयन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियैर्विशः ।
वैश्यान् शूद्रानुवर्तन्ते शूद्रान् परमनुव्रतान् ।५२
शुभाः प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रयाः ।
सङ्कल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्मणा ।

त्रेतायुगे त्वविकले कर्मारम्भः प्रसिध्यति ।५३
आयुरूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्मशीलता ।
सर्वसाधारणं ह्येतदासीत्त्रेतायुगे तु वै ।५४
वर्णाश्रमव्यवस्थानमेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यं धर्मशीलता ।५५
संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः ।
यज्ञाः प्रवर्तिताश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः ।५६
यामैः शुक्लैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसंभृतैः ।
विश्वसृड्भिस्तथा सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैस्तो यज्ञाः प्राक्प्रवर्तिताः ।५७

आरम्भ यज्ञ सब हवि का, फिर दैवतों के यज्ञ कहे गये हैं । क्षुद्र परिचारक कर्मों वाले थे तथा जप यज्ञ वाले ब्राह्मण हुए थे ।५०। इसके उपरान्त त्रेतायें धर्मशाली वर्णों का समुदय हुआ था । वे सब क्रियाओं से सम्पन्न प्रजाओं वाले और सुख समृद्धि युक्त थे । ब्राह्मणों के द्वारा क्षत्रियों का विधान किया गया था—क्षत्रियों के द्वारा वैश्यों का किया गया था । शूद्र वैश्यों का अनुवर्तन करते थे और शूद्रों पर परम अनुग्रह था । उन सबकी प्रवृत्तियाँ परम शुभ थीं और धर्म भी वर्णों और आश्रमों के समाश्रय वाला था । उस पूर्व त्रेता युग में सङ्कल्पित मनसे वाणी से और हाथों के द्वारा किए हुए कर्म से यह कर्मों का समारम्भ प्रसिद्ध हुआ था ।५१-५३। उस त्रेता युग में आयु, रूप, बल, मेधा, आरोग्य और धर्मशीलता यह सभी कुछ सबके लिए साधारण था । ब्रह्मा जी ने इन सबकी वर्णों और आश्रमोंकी इस प्रकार की व्यवस्था करदी थी कि आरोग्य, धर्मशीलता, मन्त्र और संहिता उसी तरह की थी ।५४-५५। ब्रह्माजी के पुत्र ऋषियों के द्वारा संहितायें और मन्त्र प्रवृत्त किए गए थे । उस समय में ही दैवतों के द्वारा यज्ञ प्रवर्तित किया गया था । सम्पूर्ण साधनों से संभृत याम-शुक्ल-जपों के द्वारा तथा महान्

और सारे देवेन्द्र ने शिष्ट पुरुषों के साथ देवों ने सब धर्म स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले प्रचलित किए थे।५६-५७।

सत्यं जपस्तपो दानं पूर्वं धर्मोऽयमुच्यते ।
यदा धर्म्मस्य ह्रसते शाखा धर्म्मस्य वर्द्धते ।५८
जायन्ते च तदा शूरा आयुष्मन्तो महाबलाः ।
न्यस्तदण्डा महायोगा यज्वानो ब्रह्मवादिनः ।५९
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्षाः सुसंहताः ।
सिंहोरस्का महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ।६०
महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्त्तिनः ।
सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डलाः ।६१
न्यग्रोधौ तु स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ।
व्यामेन तूच्छ्रयो यस्य अत ऊर्ध्वं तु देहिनः ।
समुच्छ्रयो परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ।६२
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजस्तथा ।
प्रोक्तानि सप्तरत्नानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ।६३

सबसे पूर्व सत्य, जप, तप और दान यही धर्म कहा गया था। जिस समय में धर्म का कुछ ह्रास होता है तो अधर्म की शाखा की वृद्धि हुआ करती है।५८। उस समय में शूरों की समुत्पत्ति हुआ करती थी जो शूर आयुष्मान् और महान् बलवान थे। ये शूर न्यस्त दण्ड-महान् योग वाले-यज्वा-ब्रह्मवादी-पद्म पत्र के तुल्य आयत नेत्रों वाले-पृथु वक्ष-सुसंहत-सिंह के समान उरःस्थल वाले-महासत्व तथा मत्त हाथी के सदृश गमन करने वाले थे। उस समय में होने वाले शूर महान् धनुर्धारी थे और त्रेता में चक्रवर्ती हुए थे। ये शूर समस्त लक्षणों से परिपूर्ण एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले थे।५९-६१। दोनों न्यग्रोध दो बाहु कहे जाते हैं और व्याम को न्यग्रोध कहा जाता है जिसका उच्छ्रय व्याम के समान है इसके उपरान्त देहधारी का समुच्छ्रय न्यग्रोध परिमण्डल

वर्तियोंका होता था ।६२। चौदहों स्वायम्भुव मन्वन्तर में चक्र, रथ, मणि, भार्या, निधि, अश्व, गज ये सात रत्न बताये गये हैं ।६३।

विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्त्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै ।६४
भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्त्तिनः ।६५
भद्राणीमानि तेषाञ्च विभाव्यन्ते महीक्षिताम् ।
अत्यद्भुतानि चत्वारि बलं धर्मं सुखं धनम् ।६६
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ।६७
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः ।
श्रुतेन तपसा चैव ऋषींस्तेऽभिभवन्ति हि ।६८
बलेनाभिभवन्त्येते देवदानवमानवान् ।
लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ।६९
केशाः स्थिता ललाटेन जिह्वा च परिमार्जनी ।
व्यामप्रमाणाश्चतुर्दंष्ट्राः श्रीवत्साश्चोर्ध्वरेतसः ।७०

जो व्यतीत हो गये हैं और आने वाले हैं उन सभी मन्वन्तर में इस पृथ्वी मण्डलमें चक्रवर्ती नृप भगवान् विष्णु के अंशसे ही समुत्पन्न हुआ करते हैं।६४। भूत, भव्य और वर्त्तमान जो भी यहाँ पर त्रेतायुग हैं उनमें चक्रवर्ती समुत्पन्न हुआ करते हैं । उन मही के पालक नृपों के बहुत ही भद्र भाव होते हैं और उनके बल, धर्म, सुख और धन ये चार वस्तुयें अत्यन्त ही अद्भुत हुआ करते हैं ।६५-६६। अन्योन्य के परस्पर में विरोध न होनेसे नृपोंके अर्थ, धर्म, काम, यश और विजय समान ही होते हैं वे अणिमा आदि के ऐश्वर्य से प्रभु शक्ति के बल से समन्वित वे नृपतिगण श्रुत एवं तप के द्वारा ऋषियों को भी अभिभूत करनेवाले

हुआ करते थे ।६७-६८। असमानतीय शरीरों में स्थित लक्षणों के द्वारा वे सम्पन्न हुआ करते थे और वे उस बल के द्वारा दानव-मानवों को निरंकुश किया करते थे ।६९। ललाट पर उनके केश स्थित होते थे तथा जिह्वा परिमार्जन करने वाली थी—श्याम उनकी प्रभा थी—चार दंष्ट्राओं वाले—अरुण और ऊर्ध्वरेता होते थे ।७०।

आजानबाहवश्चैव तालहस्तौ वृषाकृती ।
परिणाहप्रमाणाभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिनः ।।७१
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ च हस्तयोः ।
पञ्चाशीति सहस्राणि जीवन्ति ह्यजरामयाः ।।७२
असङ्गा गतयस्तेषां चतुर्धा चक्रवर्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च ।।७३
इज्यादानं तपः सत्यं त्रेताधर्मास्तु वै स्मृताः ।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ।।७४
मर्यादास्थापनार्थञ्च दण्डनीतिः प्रवर्तते ।
हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे आरोगाः पूर्णमानसाः ।।७५
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायान्तु विधिः स्मृतः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्ते तत्र ताः प्रजा ।।७६
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण ताः ।
एष त्रेतायुगे भावस्त्रेतासन्ध्यां निबोधत ।।७७
त्रेतायुगस्वभावेन सन्ध्यापादेन वर्तते ।
सन्ध्यापादः स्वभावाच्च योंऽशः पादेन तिष्ठति ।।७८

उनकी बाहुयें जानु पर्यन्त लम्बी होती थीं—ताल वृक्ष के सदृश हाथ होते थे तथा वृष के तुल्य आकृति हुआ करती । परिणाह और प्रमाण से सिंह के समान स्कन्धों वाले मेधा युक्त थे । उनके चरणों में चक्र तथा मत्स्य के चिन्ह हुआ करते थे एवं हाथों में शंख और पद्म होते थे । वे सब जरा और रोग से रहित होकर पिचासी हजार वर्ष

पर्यन्त जीवित रहा करते थे। उन चक्रवर्तियों की चार मङ्गल सहित गतियाँ हुआ करती थीं—समुद्रों में, अन्तरिक्ष में, पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र गतियाँ रहा करती थीं।७२-७३। इसका धर्म, बल और सत्य ये त्रेतायुग के धर्म बताये गये हैं। उस समय में वर्णों और आश्रमों का विभाग वाला धर्म व्यवस्थित रहा करता था।७४। सांसारिक समस्त कार्यों की यथाविधि स्थापना करने के लिए दण्ड नीति की प्रवृत्ति हुआ करती थी। वह समय ऐसा होता था कि उसमें प्रायः सभी मनुष्य हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण आनन्द वाले रोगों से रहित रहा करते थे। एक वेद और चार पाद थे—यही विधि त्रेता में कही गयी है। उस समय में ये सब प्रजाजन तीन हजार वर्ष तक जीवित रहा करते थे।७५-७६। सभी लोग पुत्रों एवं पौत्रों से समाकीर्ण होने वाले होकर क्रम से ही मृत्यु को प्राप्त हुआ करते थे। तात्पर्य यह है कि बड़ों के रहते हुए छोटों की मृत्यु नहीं हुआ करती थी। यह ही त्रेतायुग का भाव था अब त्रेता की संध्या को भी समझलो।७७। त्रेतायुग के स्वभाव से संध्या का पाद से रहती थी और स्वभाव से सन्ध्या का पाद जो है वह जो अंश है पाद से ही स्थित रहा करता था।७८।

५७—द्वापर और कलियुग वर्णन

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते।१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा वै प्रणश्यति।२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः।
लोभोधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः।३
प्रध्वंसश्चैव वर्णानां कर्म्मणान्तु विपर्ययः।

याञ्चा वधः पणो दण्डो मानो दर्पोऽक्षमाबलम् ।४
तथा रजस्तमोऽभिभूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः ।
आद्ये कृते नाधर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तितः ।५
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलौ पुनः ।
वर्णानां द्वापरे धर्माः सङ्कीर्यन्ते तथाश्रमाः ।६
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतिस्मृतौ ।
द्विधाश्रुतिः स्मृतिश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।७

महामहर्षि सूतजी ने कहा—इसके आगे मैं द्वापर की सिद्धि का वर्णन करूँगा। उस त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न हुआ करता है। प्रजाजनों को जो त्रेतायुग में सिद्धि थी वह द्वापर के आदि काल तक रही थी किन्तु ज्योंही उस युग का परिवर्तन हुआ वैसे ही वह त्रेता युग की सिद्धि नष्ट हो गई थी। उन्हीं प्रजाओं को द्वापर में युग के प्रवृत्त होने पर लोभ—धृति—वाणिज्य और तत्त्वों के विषय में विनिश्चय का अभाव हो गया था।१-३। वर्ण जो ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये चारों का एक सुन्दर क्रम बना आ रहा था उसका ध्वंस हो गया था और जो लोगों के वर्णों के अनुसार सर्वविहित कर्म होते थे उन सबमें विपरीत भाव उत्पन्न हो गया। याञ्चा वध-पणदण्ड—मान—दर्प—अक्षमा—अबल ये सब उस समय में पनप गये थे और द्वापर युग के प्रवृत्त होने पर रजोगुण तथा तमोगुण की विशेषता सजीव होगई थी। आद्य कृतयुग में जो धर्म समझा जाता था वह त्रेता में प्रवृत्त हुआ था किन्तु वही द्वापर में व्याकुल हो गया था और कलियुग में तो वह सर्वथा ही नष्ट होगया था। द्वापर में वर्णों के धर्म तथा आश्रम सब सङ्कीर्ण हो गये थे। इस युग में श्रुति-स्मृति में द्वैध-भाव समुत्पन्न होगया था। दो प्रकार की श्रुति और इसी भाँति स्मृति भी द्वैधभाव वाली थी उनके किसी भी तरह का विशेष निश्चय नहीं होता बराबर संशय रहा करता है।४-७।

अनिश्चयावगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ।
धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते ।८
परस्परं विभिन्नास्ते दृष्टीनां विभ्रमेण तु ।
अतो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतमत्याकुलं त्विदम् ।९

एको वेदश्चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः ।
संक्षेपादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह ।१०
वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।११
ते तु ब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः ।
संहृता ऋग्यजुः साम्नां संहितास्तैर्महर्षिभिः ।१२
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित् क्वचित् ।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ।१३
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः ।१४

जब किसी भी निश्चय का अवगमन नहीं होता है धर्म का तत्त्व विद्यमान नहीं रहा करता है। धर्म के तत्त्व के विज्ञात न होने पर मति में भेद स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाता है ।८। इस तरह दृष्टिकोणों के विभ्रम होने से वे सब परस्पर में विभिन्न हो जाते हैं। अतएव विभिन्न दृष्टि वाले उनके द्वारा यह सब संसार मति से आकुल ही किया करता है ।९। वेद वस्तुतः एक ही है किन्तु उसके चार पाद पुनः पुनः संहृत करके किये गए थे। द्वापर युगमें आयु के संक्षेपसे यह ऐसी व्यवस्था की गयी थी। एक ही वेद के चार भेद द्वापरादि में व्यवस्थित किये गये थे। दृष्टिके विभ्रम वाले ऋषियों के पुत्र के द्वारा फिर वेदों के भेद किए गये थे ।१०-११। ब्राह्मण विन्यास और स्वर क्रम के विपर्ययों से वेद संहृत किये गये हैं और उन महर्षियों के ऋक्-यजु और सामवेदों की संहिताएँ की गयी थीं ।१२। सामान्य और

और बहुत होने के कारण से कहीं-कहीं पर दृष्टियों की भिन्नता वालों के द्वारा ब्राह्मण भाग—कल्पसूत्र—भाष्य विद्या आदि की रचनायें की गयी हैं ।१३। अन्य लोगों ने इनका अनुसरण किया था। कुछ लोगों ने उनका प्रत्याख्यान किया था। द्वापर युग में भिन्न अर्थ वाले अपने दर्शनों से कुछ उन्होंने प्रवृत्ति की थी ।१४।

एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद् द्वैधन्तु तत् पुनः ।
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्राकुलं त्विदम् ।१५
आध्वर्यवञ्च प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतम् ।
तथैवाथर्वणां साम्नां विकल्पैः स्वस्वसंक्षयैः ।१६
व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः ।
द्वापरे सन्निवृत्ते ते वेदा नश्यन्ति वै कलौ ।१७
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ।१८
वाङ्मनः कर्मभिर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ।१९
विचारणायां वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणां दर्शनाच्चैव ज्ञानोत्पत्तिस्तु जायते ।२०
तेषां मेधाविनां पूर्वं मर्त्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पत्स्यन्तीह शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ।२१

पूर्व में एक आध्वर्यव था फिर द्वैधभाव को प्राप्त हो गया था । था । सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र उस समय में शास्त्राकुल हो गया था । बहुधा प्रस्थानों से आध्वर्यव व्याकुलीकृत हो गया ।१६। उसी भाँति से आथर्वणों और सामों के स्वसंक्षय तथा विकल्पों के द्वारा द्वापर में भिन्न दर्शन वालों ने अर्थ को व्याकुल कर दिया था । फिर द्वापर के सन्निवृत्त हो जाने पर कलियुग में वे वेद सब नष्ट हो जाया करते हैं । द्वापर में उनके विपर्यय से पुनः अवृष्टि, मरण, व्याधि और

उत्पन्न समुत्पन्न हो जाते हैं ।१५-१८। इसके पश्चात् वाणी—मन और कर्मों के द्वारा जो दुःख होते हैं उनसे निर्वेद उत्पन्न होता है । जब निर्वेद होता है तो उनको दुःख से मोक्ष प्राप्त करनेकी विचारणा होती है । इस दुःखों से छुटकारा पाने की विचारणा में वैराग्य जो होता है उस वैराग्य से दोषों का दर्शन हुआ करते हैं । जब दोषों पर दृष्टिपातों में वे दोष साफतया दिखलाई दिया करते हैं तो उस दोष दर्शन से ज्ञान की समुत्पत्ति होती है । यह ज्ञान की उत्पत्ति उन्हीं मेधावी पुरुषों को होती है जो पहिले गन्ध स्वायम्भुव अन्तर में थे । द्वापर युग में संसार में शास्त्रों का विरोध करने वाले लोग उत्पन्न हो जाया करते हैं ।१६-२१।

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ।२२

प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम् ।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक् ।२३

द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।
मनसा कर्म्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्त्ता प्रसिध्यति ।२४

द्वापरे सर्वभूतानां कालः क्लेशपरः स्मृतः ।
लोभो धृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।२५

वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ।२६

पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य सन्ध्या तु पादतः ।२७

गुणहीनास्तु तिष्ठन्ति धर्म्मस्य द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्या पादेनांशस्तस्यां प्रतिष्ठितः ।२८

द्वापर में आयुर्वेद विकल्प-ज्योतिष के अङ्गों का—अर्थ शास्त्र विकल्प-हेतुशास्त्र विकल्प-कल्प सूत्रों की प्रक्रिया-भाष्य विद्या विकल्पन-

स्मृति शास्त्र के प्रकार से पृथक्-पृथक् प्रस्थान उस युग में अभिव्यक्त होते हैं और मनुष्यों में मति के भेद हो जाते हैं अर्थात् सभी मनुष्यों की मति विभिन्न हो जाती है और किसी की मति किसी से मेल नहीं खाती है। मन-कर्म और वचन से बहुत ही कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है ।२२-२४। द्वापर-युग का समय ऐसा ही था जो समस्त भूतों के लिए परम क्लेश से परिपूर्ण था। प्राणियों में लोभ की मात्रा अधिक हो गई थी—धृति, वणिग्युद्ध और तत्त्वों का विशेष निश्चय नहीं था। वेदों और शास्त्रों का प्रणयन—वर्णों का सङ्कर दोष—धर्मों और आश्रमों का सर्वतोभाव से नाश—काम वासना और द्वेष सबमें छाया हुआ था ।२५-२६। उस समय में मनुष्यों की परमायु पूरे दो सहस्र वर्ष की थी। द्वापर युग के निःशेष हो जाने पर उसके पादकी उसकी सन्ध्या का काल था। द्वापर युग के अन्त की ऐसी दशा थी कि सब गुणहीन रहा करते थे। उसी प्रकार से उस सन्ध्या में उसका एक पाद से अंश प्रतिष्ठित रहता था ।२७-२८।

द्वापरस्य तु पर्य्यायं पुष्यस्य च निबोधत ।
द्वापरस्यावशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेस्तु ।२९
हिंसास्तेयानृतं माया दम्भश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः ।३०
एष धर्म्मः स्मृतः कृत्स्नो धर्म्मश्च परिहीयते ।
मनसाकर्मणावाचावार्त्ता सिद्धयन्ति वानवा ।३१
कलिः प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम् ।
अनावृष्टिभयञ्चैव देशानाञ्च विपर्ययः ।३२
न प्रमाणे स्थितिर्ह्यस्ति पुष्ये घोरे युगे कलौ ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद् यौवनस्थस्तथापरः ।३३
स्थाविर्ये मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः ।
अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्यधार्म्मिकाः ।३४

उत्सीदन्ति तथा चैव वैश्यैः सार्द्धं तु क्षत्रियाः ॥३८
शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह ।
भवतीह कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनैः ॥३९
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानां प्रवृत्तयः ।
काषायिणश्च निष्कच्छास्तथा कापालिनश्च ह ॥४०
ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्मदूषकाः ।
दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद्वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः ॥४१
एवंविधाश्च ये केचिद्भवन्तीह कलौ युगे ।
अधीयते तदा वेदान् शूद्रा धर्मार्थकोविदाः ॥४२

विप्र अपने कर्मों से कुण्ठित हो गये थे और उनके ही कर्मों के दोषों के कारण प्रजाओं का भय उत्पन्न हो जाया करता है। युग में जन्तुओं में हिंसा-मान-ईर्ष्या-क्रोध-असूया-अक्षमा-अधृति-लोभ और मद और ये मोह ये अवगुण हो जाया करते हैं। इस कलियुग को प्राप्त करके अत्यन्त संक्षोभ जीवों में समुत्पन्न हो जाया करता है।३६-३७। द्विजाति गण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन ही करते हैं तथा क्षत्रिय लोग वैश्यों के साथ ही सब उत्सन्न हो जाते हैं। ।३८। शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ मन्त्र और योनि का सम्बन्ध हो जाता है। इस घोर कलियुग में शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ शयन-आसन और भोजन के द्वारा भी सम्बन्ध हो जाया करता है।३९। राजा लोगों में प्रायः शूद्रों की अधिकता होती है तथा पाखण्डियों की प्रवृत्तियाँ बढ़ी-चढ़ी होती हैं। कषाय और काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले—निष्कच्छ और कापालिक दिखलाई दिया करते हैं। और जो अन्य कोई देवव्रती हैं तथा जो धर्म दूषक हैं एवम् जो कोई दिव्य वृत्त वाले हैं वे भी सब वृत्ति के लिए ही श्रुति लिङ्गों के धारण करने वाले होते हैं अर्थात् सबका लक्ष्य केवल धार्मिक आडम्बर दिखाकर रोजी के कमाने का ही हुआ करता है। इस कलियुग में जो कोई भी होते हैं वे इसी प्रकार

के हुआ करते हैं कलि में शूद्र लोग वेदों का अध्ययन किया करते हैं और वे ही धर्म तथा अर्थ के विद्वान् होते हैं ।४०-४२।

यजन्ति ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः ।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ।४३
उपहृत्य तथान्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः ।
दुःखप्रचुरताल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता ।४४
अधर्माभिनिवृत्तत्वं तमोवृत्तं कलौस्मृतम् ।
भ्रूणहत्या प्रजानाञ्च तथा ह्येव प्रवर्त्तते ।४५
तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौयुगे ।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं नृणाम् ।४६
भूत्वा च न भवन्तीह वेदाः कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः ।४७
एषा कलियुगावस्था सन्ध्यांशौ तु निबोधत ।
युगेयुगे तु हीयन्तेत्रीस्त्रीन् पादांस्तु सिद्धयः ।४८
युगस्वभावाः सन्ध्यास्तु अवतिष्ठन्ति पादतः ।
सन्ध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादेनैवावतस्थिरे ।४९

शूद्र योनि से समुत्पन्न राजा लोग इस कलियुग में अश्वमेध यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं । वे स्त्री-बाल और गौओं का वध करके तथा परस्पर में हनन करते हुये अन्योन्य का अपहरण करके उस समय में प्रजा का साधन किया करते हैं । दुःखों की बहुतायत-आयु का स्वल्प होना—देह का उत्सादन—रोगों से ग्रसित रहना और अधर्माभिनिवृत्तत्व यह सब तामसिक वृत्त है जो कि कलियुग में कहा गया है । प्रजाओं की भ्रूण हत्या (गर्भस्थ बालक को मार डालते हैं) इसी प्रकार से सबकी प्रवृत्तियाँ कलि में होती हैं । इसी कारण से इस कलियुग में आयु, बल और रूप की हीनता हुआ करती है । दुःखों की इतनी अधिकता लोगों की रहा करती है कि ऐसे कलि में दुःखों से अभिप्लुत

मनुष्य की परमायु अर्थात् अधिक उम्र भी घटती ही हुआ करती है । ॥४५-४६॥ इस कलियुग में समस्त वेद होकर भी नहीं हुआ करते हैं अर्थात् होते हुए भी वे सब निष्फल होते हैं । केवल धर्म के हेतु यज्ञ उत्सीदमान हुआ करते हैं । यह ऐसी इस कलियुग की अवस्था होती है । अब इस युग की सन्ध्या और सन्ध्यांशों को भी समझलो । युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद हीन हुआ करती हैं । युग के स्वभाव सन्ध्याओंमें भी पाद से अवस्थित रहा करते हैं । अपने अंशोंमें सन्ध्याओं के भी पाद से अवस्थित रहा करते हैं । अपने अंशों में सन्ध्याके स्वभाव एक पाद से अवस्थित रहा करते हैं ॥४७-४९॥

एवं सन्ध्यांशकेकाले सम्प्राप्ते युगान्तिके ।
तेषामधार्मिणां शास्ता भृगूणाञ्च कुले स्थितः ॥५०
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमतिरुच्यते ।
कलिसन्ध्यांशभागेषु मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५१
समास्त्रिंशत् सम्पूर्णाः पर्यटन्वैवसुन्धराम् ।
आनुकर्षन् स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥५२
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् सर्वान्निजघ्निवान् ॥५३
स हत्वा सर्वशश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनयः ॥५४
पाषण्डान् स तदा सर्वान्निःशेषानकरोत् प्रभुः ॥५५
अधार्मिकाश्च ये केचित्तान् सर्वान् हन्ति सर्वशः ।
औदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ॥५६

इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन अधर्मियों का शासन करने वाला भृगुओंके कुल में स्थित चन्द्रमस गोत्र में प्रमति नाम से प्रसिद्ध कहा जाता है । कलिके सन्ध्यांश भागों में मनु के स्वायम्भुव अन्तर में जब तीस वर्ष पूर्ण हो जाते हैं तो वर्षों तक भ्रमण करता रहा वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए एक विशाल सेना

लेकर निकलता है जिस सेना में हाथी-घोड़े और रथ सभी होते हैं और इसको वह संयुत हुआ करता है। सभी प्रकार के आयुधोंको ग्रहण करने वाला वह हजारों और सैकड़ों विप्रों से परिवृत रहता है। उसने प्राय उस समय में वह परिवृत रहकर समस्त म्लेच्छों का निहनन कर दिया करता है (५०-५३)। वह सभी ओर से जो राजा शूद्र योनि वाले होते हैं उनका हनन कर देता है। उस समय में वह प्रभु सभी पाखण्डियों को निःशेष करके देता था (५४-५५)। जो भी कोई अधार्मिक होते थे उन सबको सभी ओर से मार गिराता है। जो औदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा में रहने वाले हैं—मध्य देश के निवासी हैं तथा पर्वतीय भागों के रहने वाले हैं इन सबका अन्त कर देने वाला वह था।
।५६।

प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।५७

गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनान् शकान् ।
तुषारान् बर्बरान् चीनान् पुलिन्दान् दरदान् खसान् ।५८
लम्पकानान्ध्रकांश्चापि चोरजातीस्तथैव च ।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्शूद्राणामन्तकृद् वशी ।५९
विद्राव्य सर्वभूतानि चचार वसुधामिमाम् ।
मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येह जज्ञिवान् ।६०
पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान् ।
स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।६१
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्तो विंशतिं समाः ।
निघ्नन्सर्वभूतानि मानुषाण्येव सर्वशः ।६२
कृत्वा बीजावशिष्टां तां पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन च ।६३

ब्राह्मण-प्रमोदक तथा विन्ध्य के पृष्ठ वालों, अपरान्तिका, दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशा वाले)—द्रविड़, सिंहल, गान्धार, पारद, पह्लवन, यवन, शक, तुषार, बर्बर, श्वेत, पुलिन्द, दरद, खस, लम्पक, आन्ध्रक तथा चोर जाति वाले समस्त शूद्रों का अन्त कर देने वाला वह भगवान् प्रवृत्त चक्र होकर सुशोभित हुआ था ।५७-५९। सभी भूतों को विद्रावित करके वह इस पृथ्वी पर पर्यटन किया करता था। वह यहाँ पर नृदेव मानव के अंश में समुत्पन्न हुआ था ।६०। पूर्व जन्म में वह विष्णु वीर्यवान् प्रमिति नाम वाला था। पूर्व में वह प्रभु कलियुग में चन्द्रमा के कुल में था। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित होने पर वह प्रक्रान्त हुआ था। जब बीस वर्ष हो गये तो उसने सभी ओर से मानुष सभी भूतों का निहनन कर दिया था। परस्पर में निमित्त आकस्मिक काल के द्वारा क्रूर कर्म से पृथ्वी को अवशिष्टा कर दिया था ।६१-६३।

संस्थिता सह तावद्वै सेना प्रमतिना सह ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये सिद्धिं प्राप्ताः समाधिना ।६४
ततस्तेषु प्रनष्टेषु सन्ध्यांशे क्रूरकर्मसु ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् तेष्वतीतेषु वै तदा ।६५
ततः सन्ध्यांशके काले संप्राप्ते च युगान्तिके ।
स्थिताः स्वल्पावशिष्टास्तु प्रजास्त्विह क्वचित् ।६६
स्वाप्रदानास्तथाहीनै लोभाविष्टास्तु वृन्दशः ।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रलुम्पन्ति परस्परम् ।६७
अराजके युगांशे तु संक्षये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै तदा सर्वाः परस्परभयार्दिताः ।६८
व्याकुलास्ताः परावृत्तास्त्यक्त्वा देवगृहाणि तु ।
स्वान् स्वान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात् सुदुःखिताः ।६९।
नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगाः ।
निर्मर्यादा निरानन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ।७०

सन्तति के साथ वह लिङ्ग आकाश में संस्थित हो गये थी । गङ्गा और यमुना के मध्य में समाधि के द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त हुए थे । इसके पश्चात् मन्वन्तर में उन क्रूर कर्मों वालों के उत्पन्न होने पर उस समय में उनके असील होने पर सभी पापियों का उत्सादन कर दिया था । इसके अनन्तर युग का अन्त करने वाले सन्ध्याकाल कालके उपस्थित होने पर वहाँ संसार में कहीं-कहीं पर प्रजाजनों के अल्प रह जाने पर वे स्थित थे । समूहों के रूप में धन न देने वाले और लोभ से आविष्ट चित्त वाले वे सब परस्पर में प्रलुम्पन करते थे और एक दूसरे का उपद्रवन किया करते थे ।६४-६८। वह युगान्त अराजक जैसा था और समय के समुपस्थित होने पर वह ऐसा समय था जिसमें सम्पूर्ण प्रजाजन परस्पर में भय से व्यथित हो रहे थे । वे सब प्रजायें देव गृहों का परित्याग करके व्याकुल हो गये थे । अपने-अपने प्राणों को देखते हुए निष्कारुण्य भाव से वे सब अच्छी तरह दुःखित हो गये थे ।६९-७४। श्रौत तथा स्मार्त धर्म के नष्ट हो जाने पर सब लोग काम और क्रोध के वश में होकर उनके ही अनुयायी बन गये थे । सब मर्यादा से रहित—आनन्द से शून्य—स्नेह हीन और निर्लज्ज बन गये थे ।७५।

नष्टे धर्मे प्रतिहते ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ।
हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलप्रजाः ॥७६
अनावृष्टिहतास्तेवै वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
नीरकुल्याजिनधरा निष्कुज्ञानिष्परिग्रहाः ॥७७
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कटं घोरमास्थिताः ।
एवं कष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पशेषाः प्रजास्ततः ॥७८
जन्तवश्च क्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् ।
संश्रयन्ति स्म देशांस्तांश्चक्रवत् परिवर्त्तनाः ॥७९
ततः प्रजास्तु ताः सर्वा मांसाहारा भवन्ति हि ।

मृगान् वराहान् वृषभानन्ये चान्ये वनचारिणः ।७५
भक्ष्यांश्चैवाप्यभक्ष्यांश्च सर्वांस्तान् भक्षयन्ति ताः ।
समुद्रं संश्रिता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ताः ।७६
तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः ।
अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगता प्रजाः ।७७

धर्मों के नष्ट होने पर सब परिग्रह-शून्य और धनविहीन हो जाते थे । अपनी स्त्रियों और पुत्रों का त्याग करके सब प्रजा विषाद से व्याकुल थी । अनावृष्टि के कारण हत हुए वे सब वार्ताओं का त्याग करके अत्यन्त दुःखित थे । और तथा कृष्ण अजिन (काला मृगचर्म) को धारण करने वाले—निरुद्र और सब बिना परिग्रह वाले थे । वर्ण और आश्रम से परिभ्रष्ट हुए घोर संकटावस्था में समन्वित थे । इस प्रकार के कष्ट को प्राप्त हुई उन प्रजायें अल्प शेष रह गई थी ।७१-७३। अन्तकाल पाकर मृत्यु में आविष्ट हुए अत्यन्त दुःख से निर्वेद को प्राप्त हो जाते थे । पशु की भाँति परिपालन करने वाले उन देशों का आश्रय किया करते थे । इसके उपरान्त वे समस्त प्रजायें मांस का आहार करने वाली हो गई थीं । कुछ लोग मृगों को खाते थे तो कुछ वाराह-वृषभ और अन्य वनचारियों का भक्षण किया करते थे ।७४-७५। ये सब प्रजायें उस समय में ऐसी हो गई थीं कि चाहे भक्ष्य हो या अभक्ष्य हो सभी का भक्षण किया करते थे । कुछ जनगण समुद्रों में तथा कुछ नदियों का संश्रय किया करते थे वे भी अपने आहार के लिए सर्वत्र मत्स्यों का हरण किया करते थे । अभक्ष्य आहार के करने के दोष से सब प्रजा एक वर्णगत हो गई थी ।७६-७७।

यथा कृतयुगं पूर्वमेकवर्णमभूत्किल ।
तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूताः प्रजास्तथा ।७८
एवं वर्षशतं पूर्णं दिव्यं तेषां न्यवर्तत ।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै ।७९

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
मत्स्याश्चैव हृताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्च सर्वशः ।८०
निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
सन्ध्यांशे प्रतिपन्ने तु निःशेषास्तु तदा कृताः ।८१
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ।८२
वल्कलान्यथ वासांसि अधः शय्या च सर्वशः ।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धर्मशुद्धिमवाप्नुयुः ।८३
एवंक्षयंगमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा ।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ।८४

जिस प्रकार से पूर्व में कृत युग में सभी प्रजायें एक ही वर्ण वाले थे क्योंकि उस आदिकाल में वर्णों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं बनी थी उसी भाँति इस कलियुग के इस अन्तिम काल में सभी लोग शूद्रीभूत हो गए थे क्योंकि वर्णों के कर्म धर्म सभी छोड़कर एक वर्ण वाले बन गये थे । इस प्रकार से पूर्ण दिव्य एक ही वर्ष उनके व्यतीत हो गये थे जो कि मानुष वर्ष छत्तीस हजार होते थे ।७८-७९। इसके अनन्तर बहुत अधिक दीर्घकाल तक भूख से व्याकुल लोगों के द्वारा सभी और समस्त पशु-पक्षी और मत्स्य मार दिए गये थे और खा लिए गये थे ।८०। उस कलियुग के सन्ध्यांश काल में जब कि यह प्रतिपन्न हो गया था सम्पूर्ण पशु-पक्षी-और मत्स्यों के निःशेष हो जाने पर सभी समाप्त हो गये थे । जब कोई भी जीव प्रजाओं के लोगोंको खाने के लिए नहीं थे तो फिर उन्होंने भूमि से कन्द मूलों को खोदने का आरम्भ कर दिया था । सब लोग फल-मूल और कन्दों को खाने वाले और बिना घरों वाले हो गये थे । सबके वस्त्र वृक्षों की छाल के ही थे और सब नीचे भूमि पर शयन करने वाले थे । उन लोगोंमें कुछ भी परिग्रह शेष नहीं रह गया था और सब लोगों ने धर्म की शुद्धि को प्राप्त कर लिया।

से । इसी रीति से कलियुग का क्षय और कृत युग की उत्पत्ति हुई थी ॥८८॥ साम्प्रदायिकता के द्वारा विचार करने में निर्वेद होता है और उस निर्वेद से आत्मा का भली भाँति ज्ञान समुत्पन्न हुआ करता है । जब सम्बोध हो जाता है तो धर्मशीलता का प्रादुर्भाव स्वाभाविक रूपसे हो जाया करता है ॥८९॥ इस रीति से उस कलियुग में जो अवशिष्ट रह जाया करते हैं उनसे पूर्व की भाँति प्रजायें उत्पन्न किया करती हैं फिर भावी अर्थ के वश से कृत युग चलता रहता था । इस संसार में मन्वन्तर में जो भी कोई अतीत और अनागत हैं वे हुआ करते हैं । ये सब युगों के स्वभाव मैंने अत्यन्त संक्षेप के साथ सब बतला दिये हैं । ॥९०-९१॥

विस्तरेणानुपूर्व्याच्च नमस्कृत्य स्वायम्भुवे ।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ॥९२
उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्त्तयुगास्तथा ।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च ॥९३
सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः ॥९४
तैः सिद्धैस्तद्धयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्त्तं विधानतः ॥९५
एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्त्तन्तीह वै कृते ॥९६
श्रौतस्मार्त्ते स्थितानां तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते ।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे ॥९७
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते ।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापरं क्षितौ ॥९८

स्वायम्भुव भगवान् को नमस्कार करके मैंने विस्तार से और आनुपूर्वी से सभी कुछ बतला दिया है । फिर इसके बाद में पुनः उस कृतयुग की प्रवृत्ति हो जाया करती है । उसके प्रवृत्त होने पर जो कलियुग में

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
मत्स्याश्चैव हताः सर्वे क्षुधाविष्टैश्च सर्वशः ।८०
निःशेषेष्वथ शालेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
सन्ध्यांशे प्रतिपन्नेषु निःशेषास्तु तदा कृताः ।८१
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ।८२
वल्कलान्यथ वासांसि अधः शय्याश्च सर्वशः ।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः ।८३
एवं क्षयं गमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा ।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ।८४

जिस प्रकार से पूर्व में कृत युग में सभी प्रजाजन एक ही वर्ण वाले थे क्योंकि उस आदिकाल में वर्णों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं बनी थी उसी भाँति इस कलियुग के इस अन्तिम काल में सभी लोग शूद्रीभूत हो गए थे क्योंकि वर्णों के कर्म धर्म सभी छोड़कर एक वर्ण जैसे बन गये थे । इस प्रकार से पूर्व दिव्य एक सौ वर्ष उसके व्यतीत हो गये थे जो कि मानुष वर्ष छत्तीस हजार होते थे ।७८-७९। इसके अनन्तर बहुत अधिक दीर्घकाल तक भूख से व्याकुल जीवों के द्वारा सभी और समस्त पशु-पक्षी और मत्स्य मार दिए गये थे और खा लिए गये थे ।८०। इस कलियुग के सन्ध्यांश काल में जब कि यह परिसमाप्त हो गया था सम्पूर्ण पशु-पक्षी और मत्स्यों के निःशेष हो जाने पर सभी समाप्त हो गये थे । जब कोई भी जीव प्रजा के लोगों को खाने के लिए रहे थे तो फिर उन्होंने भूमि से कन्द मूलों को खोदने का आरम्भ कर दिया था । सब लोग फल-मूल और कन्दों को खाने वाले और बिना घरों वाले हो गये थे । उनके वस्त्र वृक्षों की छाल के होते थे और सब नीचे भूमि पर शयन करने वाले थे । उन लोगों में कुछ भी परिग्रह शेष नहीं रह गया था और सब लोगों ने धन की शुद्धि को प्राप्त कर लिया ।

था । इस प्रकारसे उस समय में जो भी बहुत थोड़ी-सी प्रजा अवशिष्ट रह गई थी वह क्षय को प्राप्त हो जायगी । इस अल्पतम शेष बचे हुओं के अवहार से वृद्धि अभीष्ट हुआ करती है ।८१-८४।

एवं वर्षशतं दिव्यं सन्ध्यांशस्तस्य वर्त्तते ।
ततो वर्षसहस्रान्ते अल्पशिष्टाः स्त्रियः सुताः ।८५
मिथुनानि तु ताः सर्वा ह्यन्योन्यं संप्रजज्ञिरे ।
नष्टैतास्तु स्थितास्तेषु पूर्वोत्पन्नाः प्रजास्तु याः ।८६
जातमात्रेष्वपत्येषु ततः कृतमवर्त्तत ।
यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम् ।८७
उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु ।
एवं कृतस्य सन्तानः कलेश्चैव क्षयस्तथा ।८८
विचारणात्तु निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा ।
ततश्चैवात्मसम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ।८९
कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्ते पूर्ववत् प्रजाः ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत ।९०
अतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह ! ।
एतेयुगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः ।९१

इस रीति से उस कलियुग का यह सन्ध्यांश काल दिव्य सौ वर्ष का होता है । जब वह सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तब इसके अन्त में बहुत ही थोड़ी स्त्रीजन और उनके सुत अवशिष्ट रह गये थे । उनकी वे मिथुन सब अन्योन्य में समुत्पन्न हुए थे । इसके उपरान्त जो पूर्व में उत्पन्न प्रजायें थीं वे मर जाया करती थीं । फिर सन्तानोंके जात मात्र होने पर कृत युग वर्तमान होने लगा था । जिस तरह देहधारियों के शरीर स्वर्गों में और नरकों में रहा करते हैं ।८५-८७। इस प्रकार से कृत युगादि में देहधारियों के शरीर उपभोग करने में समर्थ हैं । इसी

थे। इसी रीति से कलियुग का क्षय और कृत युग की उत्पत्ति हुई थी ॥८८। साध्यासाध्यात्मा के द्वारा विचार करने से निर्वेद होता है और उस निर्वेद से आत्मा का अच्छी भाँति ज्ञान समुत्पन्न हुआ करता है। जब सम्बोध हो जाता है तो धर्मशीलता का प्रादुर्भाव स्वाभाविक रूप से हो जाया करता है ॥८९। इस रीति से उस कलियुग में जो अवशिष्ट रह जाया करते हैं उनसे पूर्व की भाँति प्रजाओं का ग्रहण किया करती है फिर आगे अर्थ के वश से कृत युग बनता जाता था। इस संसार से मन्वन्तर में जो भी कोई अतीत और अनागत हैं वे हुआ करते हैं। ये सब युगों के स्वभाव मैंने अत्यन्त संक्षेप के साथ सब बतला दिये हैं ॥९०-९१।

विस्तरेणानुपूर्व्याच्च नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ।
प्रवृत्तन्तु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ॥९२
उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्त्तयुगास्तथा ।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरन्ति च ॥९३
सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये इह स्मृताः ॥९४
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्त्तं विधानतः ॥९५
एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्त्तन्तीह वै कृते ॥९६
श्रौतस्मार्त्ते स्थितानान्तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते ।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे ॥९७
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते ।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापरं क्षितौ ॥९८

स्वयम्भू भगवान् को नमस्कार करके मैंने विस्तार से और आनुपूर्वी से सभी कुछ बतला दिया है। फिर इसके बाद में पुनः उस कृतयुग की प्रवृत्ति हो जाया करती है। उसके प्रवृत्त होने पर जो कलियुग में

थोड़े-थोड़े बचे रह जाते हैं उन्हीं से कृतयुग की प्रजायें समुत्पन्न हुआ करती हैं। जो वहाँ पर शिष्टगण स्थित रहा करते हैं वे अदृश्य होते हुए विहार किया करते हैं। सप्तर्षियों के साथ वहाँ पर जो व्यवस्थित रहते हैं वे वहाँ पर बीजार्थ में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र बतलाये गये हैं। इन लोगों को उनके अवशिष्ट रहने वाले श्रौत-स्मार्त के विधान से वर्णों और आश्रमों के आचार से युक्त धर्म को कहा करते हैं। इसी प्रकार से कृतयुग में क्रियावान् प्रजायें ये सब प्रवृत्त हुआ करती हैं।९२-९६। श्रौत और स्मार्त धर्मों में स्थित रहने वालों की सप्तर्षियों के द्वारा प्रदर्शित धर्म में वे वहाँ पर उस कृतयुग में धर्म की व्यवस्था के लिए ही व्यवस्थित रहा करते हैं। वे यथाविधि मन्वन्तरों के अधिकारों में उसी तरह से स्थित रहा करते हैं जैसे आपने स्थिति में दावाग्नि से प्रदग्ध हुए तृणों में वनों की स्थिति हुआ करती है।९७-९८।

वनानां प्रथमं दृष्ट्वा तेषां मूलेषु सम्भवः ।
एवं युगाद्युगानां वै सन्तानस्तु परस्परम् ॥९९
प्रवर्त्तते ह्यविच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ।
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ॥१००
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रयः पादाः क्रमेण तु ।
इत्येषः प्रतिसन्धिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः ॥१०१
चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगाणान्तु गणिता ह्येकसप्ततिः ॥१०२
क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते ।
युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत् ॥१०३
तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ।
सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च ॥१०४
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह ।
आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी ॥१०५

जब कालाग्नि से सभी दग्ध हो जाते हैं तो प्रथम दृष्टिपात करने पर ऐसा मालूम होता है कि यह सभी जलभुन कर भस्मसात् हो गया है और अब कुछ भी अंश शेष नहीं रहा है किन्तु कुछ समय के बाद ही उनके मूल प्रदेशों में अंकुरोत्पत्ति हो जाया करती है। इसी तरह से युग से अर्थात् एक युग से दूसरे युग की सन्तति सत्वर में हुआ करती है और प्रत्यक्ष में उसका मूल विनाश भी दिखलाई नहीं दिया करता है। जिस समय तक मन्वन्तर क्षय नहीं होता है तब तक बराबर अविच्छेद रूप से प्रवृत्ति रहा करती है। एक ही मन्वन्तर में कृतयुग आदि की कितनी ही चौकड़ियाँ समाप्त हो जाया करती हैं। सुख–आयु–बल–रूप–धर्म–अर्थ और काम ये सब युगों में क्षीण हुआ करते हैं। क्रम से तीन पाद होते हैं। हे द्विजगण ! यह ही प्रतिसन्धि हुआ करती है जिस को कि मैंने आपको कह कर बतला दिया है।१९९-२०१। सभी चारों युगों का एक ही प्रमाण हुआ करता है। इन सत्ययुग त्रेता—द्वापर और कलियुग चारों युगों की जो एक चौकड़ी होती है उसी प्रकार का इकहत्तर चौकड़ियों की गणना जब पूरी जाती है और क्रम से वह परिपूर्ण होती है तो एक मनु का अन्तर हुआ करता है। जब सब युगों में यह पूर्ण होती है तो एक मन्वन्तर समाप्त हुआ करता है। यहाँ क्रम से फिर दूसरी युगावस्थाओं में वही मन्वन्तर होता है। सर्ग-सर्गों में जैसे भेद उत्पन्न होते हैं वैसे ही वे होते हैं।२०२-२०४। चौदह मन्वन्तर होते हैं उनमें उतने ही जानने चाहिये। युग-युग में आसुरी—यातुधानी—पैशाची—यक्षी की और राक्षसी की प्रजा उत्पन्न होती हैं।२०५।

युगे युगे तदा काले प्रजा जायन्ति ताः शृणु ।
यथाकल्पं युगैः सार्द्धं भवन्ते तुल्यलक्षणाः ।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै यथाक्रमम् ।२०६

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ।२०७

एते युगस्वभावा वः परिक्रान्ता यथाक्रमम् ।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च ।१०८

प्रत्येक युग में उस समय में जो भी प्रजा होती है उनके विषय में अब श्रवण करो। कल्प के अनुसार युगों के साथ यह प्रजा भी तुल्य लक्षणों वाली होती है। यहाँ युगों का यथाक्रम लक्षण बताया गया है ।१०६। फिर काल में पहुँच अतियुग के स्वभाव मन्वन्तरों के परिवर्तन होते हैं। क्षय और उदय होने के कारण से परिवर्त्तमान यह जीवलोक क्षण भर संस्थित नहीं रहता है। ये युगों के स्वभाव क्रमानुसार हमने आप लोगों को परिक्रान्त कर दिये हैं। इस कल्प में जो भी मन्वन्तर होते हैं उनको भी हम बतलायेंगे ।१०७-१०८।

५८—चतुर्युग गति वर्णन

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन ! ।१
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः ।
स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः ।२
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः ।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः स्थिताः ।३
तदा सत्यञ्च शौचञ्च धर्मश्चैव विवर्धते ।
सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै ।४
एतत् कार्तयुगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव ! ।
प्राणिनामधर्मसञ्ज्ञानामपि वै नीचजन्मनाम् ।५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ।
तस्य तावच्छतीसन्ध्याद्विगुणा परिकीर्त्यते ।६

द्वापरमधर्मः पादाभ्यामिति निर्धर्मोऽव्यवस्थितः ।
यत्र सत्यकृत सत्यैस्तत्त्रेताधर्मो विधीयते ।७

मत्स्य भगवान् ने कहा—चार सहस्र वर्षों का कृत युग कहा जाता है और उस युग की उतने ही सौ वर्ष की सन्ध्या होती है जो द्विगुणा हे रविनन्दन ! हुआ करती है ।१। जिस कृत युग में धर्म के चार पाद पूर्ण होते हैं और अधर्म का विग्रह केवल एक ही पाद होता है । जिस युग में सभी मनुष्य अपने-अपने धर्मों में निरत रहा करते थे। उस समय में सभी विप्रगण धर्म में तत्पर होकर रहा करते थे और क्षत्रियों के वर्ग राजवृत्ति में स्थित रहा करते थे। वैश्य लोग कृषि कर्मों में स्थित थे और शूद्र सेवा कर्मों के करने वाले हुआ करते थे ।२-३। उस समय में सत्य, शौच और धर्म विशेष रूप से वर्धित हुआ करते थे । सत्पुरुषों के द्वारा सत्कर्मों का समाचरण किया जाता था और वही कथन हुआ करता था । हे पार्थिव ! इस प्रकार का नीच जाति में भी जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी भी सब धर्मों को ही समझ रखने वाले विशेष होते थे । यह कृतयुग का समय हुआ था ।४-५। तीन हजार वर्षों की अवधि वाला त्रेता युग कहा जाता है उस युग की उतने ही सौ वर्ष वाली दुगुनी सन्ध्या होती है । इस युग में धर्म के केवल तीन ही चरण होते हैं और अधर्म दो पादों वाला रहा करता है । जिसमें सत्य और सत्य त्रेता का धर्म हुआ करता है ।६-७।

त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेतेन संशयः ।
चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः ।८

एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता ।
द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ।९

द्वापरन्तु सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन ! ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा युगमुच्यते ।१०

तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हताः ।
गर्वे नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन ! ।११

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ।
विपर्ययाच्छनैर्धर्मः क्षयमेति कलौयुगे ।१२

ब्राह्मण्यभावस्य ततो तथौत्सुक्यं व्यशीर्यते ।
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ।१३

तथा वर्षसहस्रन्तु वर्षाणां द्वे शते अपि ।
सन्ध्ययासह संख्याते क्रूरं कलियुगं स्मृतम् ।१४

त्रेता में ये चारों वर्ण विकृति प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। चारों वर्णों की विकृति से चारों आश्रम भी दुर्बलता को प्राप्त हो जाया करते हैं ।८। यही इस त्रेता युग की गति है जो अति विचित्र और देवों के द्वारा निर्मित है। अब द्वापर युग की जो चेष्टायें हैं उन्हें भी आप श्रवण करने के योग्य होते हैं। हे रवि नन्दन ! द्वापर युग की अवधि दो सहस्र वर्षों की होती है और उसमें उतनी ही सौ वर्ष की दुगुनी सन्ध्या है—इस प्रकार से यह युग कहा जाता है ।९-१०। उस युग में सभी प्राणी रजोगुण से हत होते हुए अर्थ परायण हुआ करते हैं। हे रविनन्दन! सभी प्राणी इस युग में नैष्कृतिक और अत्यन्त क्षुद्र होते हैं। धर्म केवल दो ही चरणों वाला स्थित रहता है और अधर्म के तीन पाद समुत्थित होकर रहा करते हैं। कलियुग में बिल्कुल विपर्यय हो जाने धर्म क्षय को शनैः-शनैः प्राप्त हो जाया करता है ।११-१२। फिर ब्राह्मण्य भाव का विनाश और औत्सुक्य भी विशीर्ण हो जाया करता है। द्वापर युग में विपर्यय हो जाने पर व्रत और उपवास आदि सब त्याग दिये जाया करते हैं ।१३। फिर एक सहस्र वर्ष की अवधि वाला तथा दो सौ वर्ष की सन्ध्या के सहित यह महाक्रूर कलि युग संख्यात करके बताया गया है ।१४।

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मः पादविग्रहः ।
कामिनस्तपसा हीना जायन्ते तत्र मानवाः ॥१५
नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ।
नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः ॥१६
अहङ्कारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः ।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे ॥१७
आश्रमाणां विपर्यासः कलौ संपरिवर्तते ।
वर्णानाञ्चैव सन्देहो युगान्ते रविनन्दन ! ॥१८
विज्ञेयं द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम् ।
एवं सहस्रपर्यन्तो तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥१९

जिस कलियुग में अधर्म चारों पादों से युक्त रहा करता है और धर्म का केवल एक ही चरण अवशिष्ट रहता है । उस युग में मानव तप से समन्वित होकर भी उत्पन्न हुआ करते हैं ।१५। इस युग में न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक ही होता है और न कोई भी साधु एवं सत्य वाणी बोलने वाला हुआ करता है । इसमें तो सभी मानव नास्तिक अथवा ब्रह्म भक्त उत्पन्न हुआ करते हैं ।१६। सभी अहङ्कार से जकड़े हुए और क्षीण स्नेह के बन्धनों वाले होते हैं। इस कलियुग में सभी विप्र शूद्र के समान आचरण करने वाले हो जाया करते हैं कलियुग में भली भाँति परिवर्तित होकर आश्रमों का विपर्यास हो जाया करता है । हे रविनन्दन ! इस युग के अन्त में तो वर्णों का भी सन्देह हो जाता करता है । पूर्व में निर्माण की हुई यह युगों की आख्या बारह सहस्र वर्षों की जाननी चाहिए । इस प्रकार से एक सहस्र वर्ष पर्यन्त यह ब्रह्मा का दिन कहा जाया करता है ।१७-१९।

गतेऽहनि गते चास्मिन् सर्वेषामेव जीविनाम् ।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः ॥२०
देवतानाञ्च सर्वासां ब्रह्मादीनां महीपते ! ।

दैत्यानां दानवानाञ्च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ।२१
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानाञ्च पार्थिव ! ।
पर्वतानां नदीनाञ्च पशूनाञ्चैव सत्तम ।२२
तिर्यग्योनिगतानाञ्च सत्वानां कृमिणान्तथा ।
महाभूतपतिः पञ्च हृत्वा भूतानि भूतकृत् ।२३
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ।
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणजालम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान्भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽप्यवर्षत् ।२४

इस ब्रह्मा के एक दिन के समाप्त हो जाने पर सभी जीवधारियों के शरीर की निवृत्ति को देखकर लोकों के संहार की बुद्धि से हे महीपते ! समस्त देवगणों–ब्रह्मर्षियों–दैत्यों–दानवों यक्ष, राक्षस, पक्षियों-गन्धर्वों-अप्सरागणों-हे पार्थिव ! पर्वतों-नदियों—हे श्रेष्ठतम ! पशुओं तिर्यग्योनियों में रहने वाले सत्वों और कृमियों के भूतों के करने वाले महाभूतों के पति पाँचों भूतों का हरण करके जगत् के संहरण करने के लिए महान् वैशस किया करते हैं। सबके चक्षुओं को आदान करने वाले होकर—सब लोकों का निर्दहन करता हुआ वह्नि होकर एवं फिर भव्य मेघ होकर वर्षा किया करता था ।२०-२४।

५६—प्रलयकाल वर्णन

भूत्वा नारायणो योगी सत्वमूर्तिर्विभावसुः ।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ।१
ततः पीत्वार्णवान् सर्वान् नदीः कूपांश्च सर्वशः ।
पर्वतानाञ्च सलिलं सर्वमादाय रश्मिभिः ।२
भित्त्वा गभस्तिभिश्चैव महीं गत्वा रसातलम् ।

पातालजलमादाय पिबत्यु रसमुत्तमम् ।३

मूत्रासृक्क्लेदमन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् ।

तत् सर्वमरविन्दाक्षमादत्ते पुरुषोत्तमः ।४

वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।

प्राणापानसमानाद्यान् वायूनाकर्षते हरिः ।५

ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु ।

गन्धोघ्राणं शरीरञ्च पृथिवी संश्रितगुणाः ।६

जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः ।

रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रितागुणाः ।७

श्रीपराशर भगवान् ने कहा—इसकी मूर्ति योगी नारायण विभावसु होकर अपनी अत्यन्त प्रदीप्त रश्मियों के द्वारा समस्त सागरों का संशोषण किया करते हैं ।१। इसके अनन्तर सब अर्णवों का—नदियों का और सभी ओर कूपों के जल को पीकर तथा रश्मियों के द्वारा सब पर्वतों के सलिल को ग्रहण करके अपनी किरणों से मही का भेदन करके नीचे पहुँच कर रसातल से पाताल के जल का पान करके क्योंकि उत्तम रस को ग्रहण कर लेते हैं मूत्र-असृक् तथा अन्य जो भी क्लेदन करने वाला प्राणियों में होता है निश्चय ही उस सब अरविन्दाक्ष को पुरुषोत्तम ने लिया करते हैं।२-४। समस्त जगत् का विधूनन करने वाला भगवान् वायु होकर फिर श्रीहरि प्राणापान समान आदि वायुओं का समाकर्षण किया करते हैं ।५। इसके अनन्तर सब देवगण और जो सब भूत हैं उनका भी समाकर्षण कर लिया करते हैं । गन्ध घ्राण को तथा शरीर पृथ्वी को सब गुण संश्रित हुआ करते हैं। जिह्वा-रस और स्नेह सलिल में गुण संश्रित होते हैं । रूप, चक्षु और विपाक ज्योति का ही समाश्रय करने वाले गुण हैं ।६-७।

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनेसंश्रितागुणाः ।

शब्दः श्रोत्रञ्च खान्येव गगनेसंश्रितागुणाः ।८

लोकमाया भगवता मुहूर्तेन विनाशिता ।
मनोबुद्धिश्च सर्वेषां शेषमप्येति यः श्रुतः ।।९
तं वरेण्यं परमेष्ठिं हृषीकेशमुपाश्रिताः ।
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ।।१०
वायुनाक्रम्यमाणानां द्रुमशाखाः समाश्रिताः ।
तेषां संघर्षणोद्भूतः पावकः शतशोऽज्वलत् ।।११
अदहत्तं तदा सर्वं भूतः सम्वर्तकोऽनलः ।
सपर्वतान् द्रुमान् गुल्मान् लतावल्लीस्तृणानि च ।।१२
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ।।१३
भस्मीकृत्य ततः सर्वान् लोकान्लोकगुरुर्हरिः ।
भूयो निर्वापयामास युगान्तेन च कर्मणा ।।१४

स्पर्श—वायु और तेजस पवन में स्थित गुण हैं । शब्द—वायु और और आकाश गगन के संश्रय करने वाले गुण हैं । भगवान् ने एक ही मुहूर्त में लोकमाया का विनाश कर दिया था । सबके मन, बुद्धि और जो शेषल सुना जाता है वे सब उस वरेण्य परमेष्ठी हृषीकेश का उपाश्रय करने वाले हुए थे । इसके पश्चात् उन भगवान की रश्मियों से सब परिवारित हो गया था ।९-१०। वायु के द्वारा द्रुमों की शाखाओं के आक्रम्य माण होने पर आश्रित हो गये थे । उनके संघर्ष से समुत्पन्न पावक सैकड़ों रूपों से जलता हुआ हो गया था । उस समय में सबको भूत हुए सम्वर्तक अनल ने जला दिया था । द्रुमों से युक्त पर्वतों को—गुल्मों को—लता वल्ली और तृणों को—दिव्य विमानों को—विविधपुरों को और जो भी आश्रयणीय थे उन सबको उसने जला दिया था ।११-१३। इसके उपरान्त लोकों के गुरु श्री हरि ने सम्पूर्ण लोकों को भस्मीभूत करके फिर युगान्तक कर्म के द्वारा निर्वापित किया था ।१४।

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः ।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ।१५
ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ।
शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत् परम् ।१६
तेन रोषेण संच्छन्ना पयसां वर्षतो धरा ।
एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता ।१७
महाभूतान्यपि विभुं प्रपन्नान्यमितौजसम् ।
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते ।१८
संशोष्यमात्मना कृत्वा समुद्रानपि देहिनः ।
दग्ध्वा संप्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ।१९
पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ।
एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः ।२०
अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि ।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ।२१

महान् यश से सम्पन्न श्रीकृष्ण ने सैकड़ों प्रकार से सहस्र वृष्टि वाले होकर दिव्य तोय हवि के द्वारा इस मेदिनी को तृप्त कर दिया था ।१५। इसके उपरान्त क्षीर-सागर में रहने वाले परम स्वादु से युक्त शिव और पुण्य जल के द्वारा इस मही का परम निर्वाण हो गया था ।१६। फिर रोष से यह मेदिनी सञ्छन्न हुई जलों की वर्षा से एकार्णवी भूत जल पूर्ण हो गई थी और यह सब सत्वों से विवर्जित थी ।१७। सूर्य-पवन और आकाश के नष्ट होने पर सूक्ष्म जगत् का सम्वरण हो जाता है और तब सत्व भी अमित ओज वाले विभु में संस्पृष्ट हो जाया करते हैं ।१८। अपने ही आपकी आत्मा से समस्त समुद्रों का तथा देहधारियों का संशोषण करके सबको दग्ध करके तथा सम्प्लावित करके सनातन प्रभु एक ही उस समय में शयन किया करते हैं ।१९। अमित विक्रम वाले प्रभु पौराण रूप में समास्थित होकर शयन करते हैं और एकार्णव के जल में व्यापक योगी योग का उपाश्रय किया करते हैं

।२१। उस एकमात्र सागर में इस प्रकार से योग निद्रा के आनन्द में शयन करने वाले प्रभु को अनेकों सहस्र युग व्यतीत हो जाया करते हैं। उस अवस्था में इस अच्युत को कोई भी व्यक्त रूप से जानने के योग्य नहीं हुआ करता है ।२२।

कश्चैष पुरुषोनाम किं योगः कश्चयोगवान् ।
असौ कियन्तं कालञ्च एकार्णवविधिंप्रभुः ।२२
करिष्यतीति भगवानिति कश्चन बुध्यते ।
न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः ।२३
तस्य न ज्ञायते किञ्चित्तमृते देवसत्तमम् ।
नभः क्षितिः पवनमपः प्रकाशप्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयमहामुनिं प्रशाम्य भूयःशयनह्यरोचयत्।२४

यह पुरुष नाम वाला कौन है—योग क्या है और कौन इसके करने वाला है—यह विभु भगवान् कितने काल पर्यन्त इस एक मात्र सागर में शयन करने रहने की विधि को करेंगे—इसको कोई भी नहीं जानता है। न तो कोई इसके देखने वाला है—न कोई इसका ज्ञान प्राप्त करने वाला है न कोई ज्ञाता तथा पार्श्व में गमन करने वाला ही होता है ।२२-२३। उस देवों में श्रेष्ठ के बिना उसके विषय में कोई भी कुछ नहीं जानता है। क्षिति, पवन, जल, प्रकाश, प्रजापति, भुवनधर, सुरेश्वर, पितामह—श्रुति के निलय वाले महामुनि को प्रशमित करके वह पुनः शयन करने को चाहते हैं उस प्रभु की सेवा में नमस्कार है। ।२४।

६०—यज्ञावतार वर्णन

एवमेकार्णवे भूते शेते लोके महाद्युतिः।
प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वी हंसो नारायणस्तदा ॥१
महतो रजसो मध्ये महार्णवसरःसु वै।
विरजस्कं महाबाहुमक्षरं ब्रह्म यं विदुः ॥२
आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः।
मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत्सत्यमासत ॥३
यथातथ्यं परं ज्ञानं भूतं तद्ब्रह्मणा पुरा।
रहस्यारण्यकोद्दिष्टं यच्चोपनिषदं स्मृतम् ॥४
पुरुषो यज्ञ इत्येतद् यत्परं परिकीर्तितम्।
यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात् स एष पुरुषोत्तमः ॥५
ये च यज्ञकरा विप्रा ये चर्त्विज इति स्मृताः।
अस्मादेव पुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा ॥६
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम्।
होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार से एकार्णव भूलोक में उस समय में महान् द्युति वाले हंस नारायण सलिल से उर्वी का प्रच्छादन करके शयन किया करते हैं।१। महान् रजोगुण के मध्य में, महार्णवसरों में जो विरजस्क (रजोगुण से रहित) महान् बाहुओं वाला अक्षर है जिसको ब्रह्म जानते हैं।२। अपने रूप के प्रकाश से तम से सम्वृत प्रभु सात्त्विक मन का आधान करके जिसमें रहते हैं वह सत्य है।३। पहिले ब्रह्मा के द्वारा वह यथा तथ्य परम ज्ञान प्राप्त हुआ था जो रहस्यारण्यक उद्दिष्ट था और जो औपनिषद् ज्ञान कहा गया है।४ जो परपुरुष यज्ञ—यह परिकीर्तित किया गया है और जो अन्य है। जिसका नाम पुरुष है वह ही पुरुषोत्तम प्रभु है।५। जो यज्ञों में यज्ञ करने वाले विप्र हैं वे ऋत्विज कहे गये हैं। पहिले इसी से यज्ञों के

कर्मानुष्ठान को करने के लिए श्री गुरु ने उनके विषय में वर्णन करो ।
।७। प्रभु के प्रथम मुख से ब्रह्मा को और उद्गाता सामग को फिर बाहुओं से होता और अध्वर्यु को सृजित किया था ।

ब्रह्मणो ब्राह्मणान्सोऽसि सदस्यांस्तस्य सर्वश: ।
तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्थारमेव च ।८
उदरात् प्रतिहर्तारं होतारञ्चैव पार्थिव ! ।
अच्छावाकमथोरुभ्यां नेष्टारञ्चैव पार्थिव ! ।९
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यञ्च जानुनः ।
ग्रावस्तुतन्तु पादाभ्यामुन्नेतारञ्च याजुषम् ।१०
एवमेव स भगवान् षोडशैव जगत्पतिः ।
प्रवक्तॄन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ।११
तदेव वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंस्थितः ।
वेदाश्चैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषत्क्रियाः ।१२
स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत् पुरा ।
श्रृणु तन्मे तथा विभो ! मार्कण्डेयकुतूहलम् ।१३
गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः ।
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ।१४

उस प्रभु ने ब्रह्म से ब्राह्मणों को और सब सदस्यों का सृजन किया था । दोनों मित्रवरुणों को और प्रति प्रस्थाता को पृष्ठ से सृजित किया गया था । हे पार्थिव ! उदर से प्रतिहर्त्ता और होता का सृजन किया गया था । दोनों ऊरुओं से अच्छावाक तथा नेष्टा की रचना की थी । दोनों हाथों से आग्नीध्र को तथा जानु से सुब्रह्मण्य को रचा था । पादों से ग्रावस्तुत और याजुष उन्नेता को सृजन किया था । इस प्रकार से ही इस जगत् के पति भगवान् ने सोलह ही सम्पूर्ण यज्ञों के प्रवक्ता उत्तम ऋत्विजों का सृजन किया था ।८-११। वही यह वेदमय पुरुष यज्ञों में संस्थित है । इसी से परिपूर्ण सम्पूर्ण वेद हैं तथा अङ्गों के

संहित उपनिषदों की क्रियायें हैं। यह एकार्णव में शयन किया करते हैं जो परिहित महा भारी उपस्थित हुआ था। हे विप्रगण! जिस तरह से मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवण करो। यह मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवणकरो। वह महामुनि उन भगवान की कुक्षि में ही जीर्ण होगए थे। भगवान के तेज से उनकी आयु भी बहुत से सहस्रों वर्षों की हुई थी।१२-१४।

अटन्तीर्थयात्रायां स पृथिवीतीर्थगोचरान् ।
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च ।१५
देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ।
जपहोमपरः शान्तस्तपो घोरं समास्थितः ।१६
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः ।
स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया ।१७
निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत् ।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत ।१८
तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः ।१९
चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत ।
किन्नु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ।२०
व्यक्तमन्यतमो भावस्तेषां सम्भावितो मम ।
नहीदृशो जगत् क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति ।२१

तीर्थों के प्रसङ्ग से पृथिवी में विचरण करता तीर्थों का पर्यटन तथा पुण्यमय आश्रम देवों के आयतन, देश, राष्ट्र, विविध एवं अनेक पुरों का अटन करते हुए जप एवं होम में परायण तथा परम शान्त होकर घोर तपश्चर्या में समास्थित हो गये थे।१५-१६। इसके पश्चात् उनके मुख से शनैः मार्कण्डेय विनिःसृत हो गये थे। वह निष्क्रमण करते हुए देव की माया से अपने आपको भी नहीं जानते थे अर्थात् उनको अपने

स्वरूप का भी ज्ञान नहीं था।१७। मार्कण्डेय मुनि ने उनके मुख से बाहिर निकल कर भी इस सम्पूर्ण जगत् को तम और अन्धकार से समाच्छन्न और एकार्णव शब्दमय देखा था।१८। जब यहाँ पर इस प्रकार जगत् का स्वरूप देखा था तो उनके हृदय में अत्यन्त तीव्र भय समुत्पन्न हो गया था और अपने जीवन के रहने में भी संशय हो गया था। जब देव का दर्शन प्राप्त किया तो उससे वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसे महान् विस्मय समुत्पन्न हो गया था।१९। जल के मध्य में स्थित मार्कण्डेय महर्षि ने चिन्तन करते हुए यह सब कुछ देखा था। अपने हृदय में ऐसा विचार हो गया था कि क्यों ऐसी मेरी चिन्ता हो रही है? क्या यह एक मोह है अथवा स्वप्न का अनुभव किया जा रहा है।२०। क्योंकि उनका अन्तरात्मा भाव पूर्ण सम्भावित हुआ था। यह सारा जगत् इस प्रकार के आतुर क्लेश के योग्य नहीं होता है।२१।

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले ।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः ।२२
ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम् ।
सलिलेऽर्द्ध यथा मग्नं जीमूतमिव सागरे ।२३
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्युक्तमिव भास्करम् ।
शर्वर्यां जाग्रतमिव भासन्तं स्वेन तेजसा ।२४
देवं द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात् ।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः ।२५
सम्प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः ।
तथैव च पुनर्भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम् ।२६
स तथैव यथा पूर्वं स धरामटते पुरा ।
पुण्यतीर्थजलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च ।२७
क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणान् ।
आपश्यद्देवकुक्षिस्थान् याजकान् शतशो द्विजान् ।२८

नाश को प्राप्त हुए चन्द्र—सूर्य और पवन वाले तथा विनष्ट पर्वत एवं भूतल वाले इसमें वह कौन सा लोक होगा—इसी चिन्ता में वह बहुत समय पर्यन्त अवस्थित रहा था ।२२। पर्वत की उपमा वाला अर्थात् महान् विशाल शयन करते हुए एक पुरुषको देखाथा जो उसका सागर से एक जीमूत की भाँति आधा भाग सलिल में मग्न हो रहा था ।२३। जो इतना तेजोमय था कि अग्नि के समान जाज्वल्यमान था—किरणों से युक्त भास्कर के सदृश था और रात्रि में अपने तेज से भास-मान जाग्रत् की भाँति दिखलाई दे रहा था ।२४। बड़े विस्मय से वह ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से कि आप कौन हैं देव का दर्शन प्राप्त करने के लिए यहाँ पर आये थे क्योंकि वह आये थे वैसे ही वह मुनि उसी भाँति कुक्षि में पुनः प्रवेशित हो गए ।२५। पुनः कुक्षि में संप्रविष्ट हुए मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हो गए गये थे । फिर दूसरी बार भी उसी भाँति स्वप्न-दर्शन की वे मानने लगे थे । वह भी पूर्व की ही भाँति धरामण्डल में पर्यटन किया करते हैं । जो यहाँ परम पुण्यमय तीर्थों के जलों से समुपेत थी और इसी भाँति अनेक आश्रमों में भी अवगाहन करते हैं । उस समय में ऋतुओं के द्वारा समाप्त कर दी है । श्रेष्ठ दक्षिणा जिनकी ऐसे यजमानों को और देव की कुक्षि में स्थित सैकड़ों याजक द्विजों को उसने देखा था ।२६-२८।

सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ।
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टास्तथा तथा ।२९

एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
चरतः पृथिवीं सर्वान्न कुक्ष्यन्तः समीक्षितः ।३०

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिस्सृतः ।
सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरैक्षत ।३१
तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृताम्बरे ।

अव्ययः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥३२
स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।
बालमादित्यसङ्काशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥३३
स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।
पूर्वदृष्टमिदं मेने शङ्कितो देवमायया ॥३४
अगाधसलिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः ।
प्लवंस्तथार्तिमगमत् भयात् सन्त्रस्तलोचनः ॥३५

ब्राह्मण जिनमें सर्व प्रथम हैं ऐसे चारों वर्ण वाले लोग कुक्षि (उदर) में समवस्थित थे। ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम भी जैसे पहिले थे उसी प्रकार भली भाँति व्यवस्थित थे। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर संचरण करते हुए धीमान् मार्कण्डेय मुनि को डेढ़ सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु वह फिर भी उस कुक्षि का अन्त नहीं देख पाये थे। इसके उपरान्त फिर किसी समय में पुनः वह मुख से बाहिर निकल गये थे और उन्होंने न्यग्रोध की शाखा में छिपे हुए एक बालक को देखा था। नीहार से समाकुल जिसका अम्बर है ऐसे उस एकार्णव जल में, जहाँ कि सभी प्रकार के भूतों का अभाव था, ऐसे लोक में वह मुनि आश्चर्य से पूर्ण तथा समाविष्ट होकर कौतूहल से संयुत हो गया। वह बालक सूर्य के तुल्य तेज से परिपूर्ण था कि उसको वह देख नहीं सका था ॥३३। उसने चिन्तन करते हुए सलिल की सन्निधि में उसी भाँति एकान्त में स्थित होकर देव की माया से शङ्का वाला होकर इस सबको पूर्व की भाँति देखा हुआ मानने लगता है ॥३४। अत्यन्त विस्मय से संयुत होकर उस अगाध जल में भय से सन्त्रस्त नेत्रों वाला वह मार्कण्डेय मुनि प्लवमान होता हुआ अत्यन्त ही अधिक दुःख को प्राप्त हो गया था ॥३५।

स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान् ।

बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ।२६

मामैर्वत्स ! न भेतव्यमिहैवायाहि मेऽन्तिकम् ।

मार्कण्डेयोमुनिस्त्वाह बालन्तं श्रमपीडितः ।२७

कोऽयान्नाम्ना कीर्तयति वयः परिभवन्मम ।

दिव्यं वर्षसहस्राख्यमायुष्मन्निवमेव यः ।२८

नह्येष वः समाचारो देवेष्वपि ममोचितः ।

मां ब्रह्मापि हि देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ।२९

कस्तपो घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः ।

मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति ।३०

एवमाभाष्य तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।

तथैव भगवान् भूयो बभाषे मधुसूदनः ।३१

यान पीने वाले वह भगवान् उस समय में उन मार्कण्डेय से उनके स्वागत को कहने लगे थे और पुरुषोत्तम प्रभु मेघ के समान गम्भीरस्वर से बोले थे ।२६। पुरुषोत्तम प्रभु ने उससे कहा—हे वत्स! भयभीत मत होओ । डरना तुमको बिल्कुल भी नहीं चाहिए । इस समय तुम मेरे समीप में आ जाओ । इस पुरुषोत्तम के वचन का श्रवण करके श्रम से अत्यन्त पीड़ित होकर वह मार्कण्डेय मुनि उस बालक से बोला था ।२७। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—आप कौन हैं जो दिव्य एक सहस्र वर्ष तक इस प्रकार से धर्षण करते हुए और मेरे तप को तिरस्कृत करते हुए मेरे नाम को कीर्तित कर रहे हैं ?।२८। देवों में भी मेरे साथ आपका यह इस प्रकार का समाचरण करना उचित नहीं है । देवों का ईश्वर ब्रह्मा भी मुझको दीर्घायु कहकर मेरे साथ भाषण किया करते हैं । कौन ऐसा

है तो और तपश्चर्या आरम्भ करके आज मेरे पास आकर जीवित को परित्याग कर रहा है ? तुमको मार्कण्डेय मुनि ने उससे अत्यन्त क्रोध से इस प्रकार कहा था तब उसी भाँति भगवान् मधुसूदन पुनः उससे कहने लगे थे ।३८-४१।

अहं ते जनको वत्स ! हृषीकेशः पिता गुरुः ।
आयुः प्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि ।४२
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसो मुनिः ।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ।४३
ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोत मितौजसम् ।
उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिममितौजसम् ।४४
कः समुत्सहते नान्यो यो न भूतात्मकात्मजः ।
द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगकर्मणा ।४५
ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ।४६
नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः ।
तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत् ।४७

श्री भगवान ने कहा—हे वत्स ! मैं तेरा जनक हूँ । मैं परम पुरातन, हृषीकेश, पिता, गुरु और आयु के प्रदान करने वाला हूँ । क्यों तू मेरे समीप नहीं आ रहा है ? ।४२। पहिले पुत्र की कामना रखने वाले तेरे पिता अङ्गिरस मुनि ने परम तीव्र तपश्चर्या का समाश्रय ग्रहण करके मेरी ही समाराधना की थी ।४३। इसके अनन्तर अत्यन्त घोर तप से

उसने अमित ओज वाले पुरुष की शयन करने का स्थान प्राप्तकर लिया था । इसके पश्चात् मैंने ही अमर विश्व अपरिमित ओज वाले ऋषि से मैं कहा था जो भूतात्मकत्व न हो ऐसा अन्य कौन है जो योग के धर्म से क्रीड़ा करते हुए एकार्णव में गत को देखने का उत्साह किया करता है ? ।४६-४७। इसके पश्चात् प्रकृष्ट मुख वाला-विस्मय से समुत्फुल्ल लोचनों से संयुत मस्तक अञ्जलि पुट को बद्ध करते हुए महान् तपस्वी मार्कण्डेय अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके दीर्घायु और गोत्र पूजित ने उस भगवान् को भक्तिभाव से नमस्कार किया था।४६।४८।

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं त्वयानघ ! ।
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ।४८
किं संज्ञश्चैव भगवन् ! लोके विज्ञायसे प्रभो ! ।
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति ।४९
अहं नारायणो ब्रह्मन् ! सर्वभूः सर्वनाशनः ।
अहं सहस्रशीर्षाख्यैर्यः पदैरभिसंज्ञितः ।५०
आदित्यवर्णः पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मखः ।
अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ।५१
अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सरः ।
अहं योगी युगाख्यश्च युगान्तावर्त एव च ।५२
अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि तु ।
भुजङ्गानामहं शेषो तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम् ।५३
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ।५४

अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः ।

यत्तत् सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥५५॥

अहं सांख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमं पदम् ।

अहमिज्या क्रिया चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥५६॥

मार्कण्डेय महामुनि ने कहा—हे भगवन् ! मैं अब तात्त्विक रूप से आपकी इस देवमाया के ज्ञानको जानने की मैं इच्छा करता हूँ कि जो शान्त रूप वाले आप इस एकार्णव के मध्यमें स्थित होकर शयनकर रहे हैं ॥४८॥ हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप इस लोकमें किस संज्ञा वाले होकर जाने जाते हैं अर्थात् लोक में आपका क्या नाम प्रसिद्ध है । मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि महात्मा आपको कोई अन्य स्थित करने के योग्य होता है ॥४९॥ श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं सबकी उत्पत्ति करने वाला तथा सबका नाश करने वाला नारायण हूँ मैं सहस्र शीर्षा नाम वाले नामों से अभिव्यक्त होता हूँ ॥५०॥ मैं सूर्य के समान वर्ण वाला पुरुष और मख में यज्ञमय रूप हूँ । मैं हव्य का वहन करने वाला अग्नि हूँ तथा मैं अविनाशी यादवों का स्वामी हूँ ॥५१॥ मैं इन्द्र के पद पर स्थित हूँ—वर्षों में परिवत्सर हूँ—मैं युगाख्य योगी हूँ—और युगान्तावर्त हूँ । मैं ही सब सत्त्वों की उत्पत्ति वाला हूँ और समस्त दैवत भी मैं ही हूँ भुजगों में मैं शेष हूँ, तथा सब पक्षियों में मैं तार्क्ष्य अर्थात् गरुड़ का स्वरूप हूँ ॥५२-५३॥ समस्त भूतों का मैं कृतान्त हूँ तथा विश्वेदेवों में मैं कालकी संज्ञा वाला हूँ । मैं सभी आश्रमों में निवास करने वालों का धर्म तथा तप हूँ । जो परम दिव्य सरित् है वह और क्षीरोद महार्णव मेरा ही स्वरूप है । जो वह परम सत्य है वह मैं ही हूँ तथा मैं एक ही प्रजापति हूँ । मैं ही सांख्य तथा योग हूँ और मैं ही वह तत्परम पद हूँ ।

मैं ही रक्षक और स्थित हूँ तथा मुझे ही विद्या का अधिप कहा गया है।५४-५५।

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः।
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ।५७
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः।
क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः ।५८
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः ।
अहं पुराणः परमः सर्वथाहं परायणम् ।५९
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः ।
यत् किञ्चित् पश्यसे विप्र ! यच्छ्रृणोषि च किञ्चन ।६०
यल्लोके चानुभवसि तत् सर्वं मामनुस्मर ।
विश्वसृष्टं मया पूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्य माम् ।६१
युगे युगं च सृजामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् ।
तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ।६२
शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखं मम ।
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह ।६३

मैं ही ज्योति, वायु, भूमि, नभ, आप (जल), समुद्र, नक्षत्र, दश दिशाएँ, वर्ष, सोम, पर्जन्य, रवि हूँ अर्थात् पवनभूमि आदि समस्त मेरा ही एक दूसरा स्वरूप है। क्षीरसागर में मैं विद्यमान हूँ तथा समुद्र में वड़वानल मेरा ही रूप है जो संवर्त के अग्नि होकर जलमय हवि का

पालन करने वाला मैं परम पुरातन एवं परमेश्वर ही हूँ। मैं ही अतीत होने वाले-भव्य (भविष्य) और वर्त्तमान काल को समुत्पन्न करनेवाला हूँ। हे विप्र! इस लोक में जो भी कुछ तुम देखते हो, श्रवण करते हो और जिसका भी कि किञ्चिमात्र अनुभव किया करते हो वह सभी मुझ को ही अर्थात् मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए। मेरे ही द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व पहिले सृजित किया गया है और जो कुछ भी आज भी सृजन करने के योग्य है वह सभी को मुझ ही देख लो।५७-६२। हे मार्कण्डेय! प्रत्येक युग में यह सम्पूर्ण जगत् मैं ही सृजित किया करता हूँ इसीलिए यह सभी कुछ जो भी है मेरा ही स्वरूप है और मुझको ही तुम समझ लो।६३। मेरे धर्मों के श्रवण करने की इच्छा वाले यदि तुम हो तो तुम मेरी ही इस कुक्षि में सुख पूर्वक संचरण करते रहो। यह ब्रह्मा भी मेरे इसी शरीर में स्थित है और सब देवगण भी इसके साथ में विद्यमान रहा करते हैं।६४।

अव्यक्तमव्यक्तयोगं मामवमन्यस्वसुरद्विषम् ।
अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ।६४

परस्त्रिवर्गादोङ्कारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ।
एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ।६५

वक्त्रमाहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो महामुनिः ।६६

स तस्मिन् कुक्षावेकान्ते शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ।
सोऽहमेव विचिन्तयन्नु परिस्थितो महार्णवे व्यपगतजलभास्करे ।
सर्वमव्यक्तं प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजत् जगदखिलमहितमात्मपर्यये ।६७

कमल-समान नेत्र वाला—असुरों का हिंसक मुझको ही समझो। एकाक्षर और तीन अक्षरों वाला तारक मन्त्र भी मेरा ही एक स्वरूप है।६४। जिसमें मैं पद ओंकार और त्रिवर्ग के अर्थका निदर्शन-महामोह आदि पुराणोंने इस प्रकार से महामुनीश्वर मार्कण्डेय ने गाते हुए ही अपना मुख आवृत कर लिया था और इसके उपरान्त वह मुनि श्रेष्ठ उनकी कुक्षि में प्रविष्ट हो गये थे।६५-६६। वह उसमें एकान्त में सुख पूर्वक अविनाशी हंस का चयण करने वाले होकर कुक्षि में संचरण करते हैं। जो यह मैं ही नाना भाँति वाले जन्तुओं का परि-भ्रम करते इस महार्णव में जिसमें सूर्य और चन्द्र आदि सभी स्पष्टतम हैं हंस की संज्ञा वाला प्रभु भी धीरे-धीरे चरण करता हुआ चिरस्थित् काल पर्यन्त में इस जगत् का सृजन मैंने ही किया है।६७।

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र-राज, बीज मन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आध्यात्मिक उत्थान के लिए कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी को अनुभव करते हुए विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा सामग्री निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय बरेली से मँगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके चार अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष ३३००० साधकों द्वारा १५०० करोड़ मन्त्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार स्वरूप, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली (प्रत्येक १) रु० मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक से अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत :

विश्व ओंकार परिवार — चमनलाल गौतम

श्यामाकुञ्ज, बेलनगर, बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)